मेवाड का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन

(18 वी—19 वीं शताब्दी)

डॉ गोपाल व्यास

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

प्रकाशक
राजस्थानी ग्रन्थागार
सोजती गेट के बाहर
जोधपुर

प्रथम संस्करण जून 1989

मूल्य एक सौ पचास रुपये मात्र

मुद्रक
प्रिंटिंग हाउस
जालोरी गेट के बाहर
जोधपुर

विषय सूची

प्राक्कथन

मेवाड़ के क्षेत्रीय इतिहास पर, सर से पूर्ववर्ती कई विद्वानों एवं प्रबुद्ध शोध-कर्त्ताओं ने गहन कार्य किया करवाया है, किन्तु उनके अध्ययन का उद्देश्य मात्र राजनीतिक घटनाओं तथा पर्यावरणों का विवरण प्रस्तुत करना रहा था। यद्यपि डॉ. गोपीनाथ शर्मा (सोशियल लाइफ इन मिडाइवल राजस्थान) डॉ. कालूराम शर्मा (उन्नीसवीं सदी में राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन) व डॉ. गजेन्द्र जोशी (उन्नीसवीं शताब्दी का अजमेर) ने क्षेत्रिय इतिहास लेखन में राजनीतिक घटना-क्रमों से ध्यान हटाने की शुरुआत की, परन्तु इनके द्वारा प्रस्तुत कार्य में परम्पराओं प्रथाओं, लोक धारणाओं, लोगों की मानसिक स्थितियों, भौगोलिक पर्यावरण तथा राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों का समावेश सामाजिक घटनाओं के गति-क्रम में नहीं बांधा गया है। इसके अध्ययनार्थ विभिन्न आख्यान, प्रचलित रीति-रिवाज तथा भाषा मुख्य माध्यम हुआ करते हैं। इन्हीं दृष्टिकोणों को ध्यान रखते हुए इतिहास लेखन हेतु आलोच्यकालीन तथ्यात्मक अध्ययन सामग्री में अभिलेखागार संग्रहित रिकार्डों, समकालीन, पूर्ववर्ती एवं अनुगमकालीन इतिहास ग्रन्थों, पत्र व्यवहारों तथा परवर्ती इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत घटना क्रमों के विश्लेषित विवरणों आदि के साथ-साथ ऐतिह्य-साहित्यिक कृतियों का तथ्यात्मक मूल्यांकन, प्रत्यक्ष क्षेत्रावलोकन[1] एवं क्षेत्रिय वृद्ध एवं बुजुर्ग व्यक्तियों से मौखिक साक्षात्कार आदि का प्रयोग इस शोध प्रबन्ध के लेखन में किया गया है। इस प्रयोग को पुष्ट करने के पृष्ठ में मानव-जीवन की सहज गतिशील प्रवृत्ति और उसकी शीघ्र अपरिवर्तनशीलता की प्रेरणा रही थी क्योंकि राजनीतिक घटनाओं का परिवर्तन आकस्मिक होता है, पर मानव व्यवहार एवं मानसिक स्थितियाँ शनैः शनैः मोड़ लेती है। अतः 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के इतिहास को जानने के लिए साक्षात्कार विधि का भी अपना औचित्य है।

---

1 विल्हेम फोनहुम्बोल्ट (1767-1845 ई.) के कल्पना-विचार, जमन स्कूल ऑफ हिस्ट्री—उपरोक्त पृ 179 से उद्धृत, फ्रीडरीख कार्लफान साविनि (1779-1861 ई.) के इतिहास उद्देश्य एवं लिए प्रस्तुत विचार-इतिहास दर्शन पृ 178

इस शोध-प्रब ध के काल और विषय के निवचन के पाछे मेवाड के राजनातिक इतिहास म बारम्बार पठित् राजनीतिक सक्रमणकालीन अवस्था (18-19 वी सदी) मे सामान्य जन-जीवन की स्थिति तथा उसके विधान व प्रक्रिया को जानने की उत्सुकता मात्र निमित्त रहा था। इसलिए समाज की सस्कृति के मूल तत्त्व 'सामाजिक-आर्थिक अगा का प्रक्रियात्मक स्थितियो द्वारा मानव-समाज का अध्ययन तत्कालीन जीवन की विस्तत और गहन परिधि के कतिपय पक्षों के रूप म मुखरत आठ पक्ष इस शाध म प्रस्तुत किय गये हैं।

प्रथम अध्याय म भौगालिक तथ्या का अवलोकन किया गया है। यद्यपि मानव श्रम साधनो द्वारा भूगोल का परिवतन करता आया है किन्तु कुछ भौगोलिक तथ्य जिनम प्राकृतिक स्थिति भूमि सम्पदा मिट्टी जलवायु एव वनस्पति आदि का परिवतन पारलौकिक शक्ति द्वारा ही सभव होता है। अत यह स्थिति सावभौमिक सत्य के रूप म निरन्तर जीवित रहते हुए मानव के सामाजिक-आर्थिक जीवन का प्रभावित करती रहती है।

द्वितीय अध्याय म सामन्तशाही स्वरूप को लिया गया है। आलोच्यकाल म राज्य और समाज की राजनीतिक और आर्थिक शक्ति का केन्द्र सामन्तगण रहे थे। राज्य म राजनीतिक प्रतिष्ठा पद आर प्रभाव की सयुक्त शक्ति सामन्तो मे निहित रही थी अत इनके सगठन तथा रचना म भिन्न भिन्न स्तरीकरण का विश्लेषण सामन्तशाही पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय तीन म भूमि व्यवस्था क अन्तगत मानव-जीवन को जाविका क प्रमुख तत्त्व भूमि और उसके स्तरीकृत अधिकार जागीरदारी वर्गीकरण क साथ ही आर्थिक दृष्टि से कृषको की स्थिति और राजस्व परम्परा का अध्ययन किया गया है। तत्कालीन लाग बाग का राजस्व स्वरूप निश्चित करने का प्रयास भी इस अध्याय म सम्मिलित किया गया है।

चतुथ अध्याय म आलाच्यकालीन जाति व्यवस्था पर आधारित समाज रचना एव उसम आर्थिक रचिया म सज्जित परम्परागत व्यवसाय एव अर्जित व्यवसाया का विवेचन किया गया है। यह पक्ष सामाजिक आर्थिक जीवन म सामाजिक पद-प्रतिष्ठा और सम्मान क उभय तथा अभय स्थितिया क साथ साथ उनकी आर्थिक अभिक्रियाया के परिचालन का स्पष्ट करता है।

पाचवें अध्याय म समाज की मूल इकाइ पारिवारिक रचना उसक सामाजिक आर्थिक दायित्व तथा समति क मूलाधार विवाह की विविध परम्पराओ के साथ उससे उत्पन्न नारी की सामाजिक स्थितिया का विश्लेषण किया गया है। सामाजिक आर्थिक जावन म रूढ़िया और प्रथाओ क योग-

दान की विवेचना करने में यह पक्ष मानव जीवन की आन्तरिक भावना के बाह्य दर्शन को अभिव्यक्त करता है।

अध्याय छ: में ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों का वर्गीकरण, उनमें जातिगत आवासीय अवस्था, लोगों का सामुदायिक एवं दैनिक जीवन, जातिगत खान-पान, वेष-भूषा आदि सांस्कृतिक स्वरूपों में सामाजिक-आर्थिक नियंत्रण तथा सामाजिक सामंतशाही का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह विवेचन सामाजिक परम्परा और ग्रामीण संस्कृति के जन-जीवन की सामाजिक आर्थिक स्थिति के पक्ष को प्रतिस्थापित करता है।

अध्याय सात में ज्ञान के व्यावहारिक और सैद्धान्तिक माध्यम तथा स्वरूपों के संलग्न ही जन-जीवन की बौद्धिक स्थिति का विश्लेषणात्मक व्याख्या करते हुए समाज में शिक्षा का प्रबन्ध और प्रचलन तथा उसके विकास पक्ष को प्रस्तुत किया गया है।

अन्तिम अध्याय में आलोच्यकालीन उद्योग वाणिज्य एवं व्यापार की स्थिति तथा इसमें आर्थिक जीवन प्रभावी अभिक्रियाओं का व्यापारिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है।

अन्त में उपसंहार के अन्तर्गत आलोच्यकालीन सामाजिक-आर्थिक जीवन की साधारणीकृत स्थितियों, अभिक्रियाओं की प्रवर्तित अभिधारणाओं का संक्षिप्तिकरण द्वारा विषय को प्रबन्ध-विचार के रूप में वेष्ठित किया गया है।

सम्पूर्ण प्रबन्धलेख में पिताश्री मुकुटलालजी व्यास के परलोकवास तथा जीवन क्रम के प्रति निष्काम यौगिक विचारों युक्त उनकी अन्तिम प्रेरणा सन्निध रही है। उनकी अभिलाषा को पूर्ण करने हेतु किये गये प्रयास की प्रथम उपलब्धि को श्रद्धा सुमन उन्हें ही समर्पित है।

इस कार्य में मुझे उदयपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के आचार्य डा. बी. एस. माथुर विभागाध्यक्ष डा. एल. पी. माथुर तथा सहप्राध्यापक डा. आर. के. सक्सेना द्वारा समय-समय पर नितान्त उपयोगी प्रेरणा एवं सदाशिष् प्राप्त होता रहा, इसके लिए मैं इन विद्वज्जनों का सदैव आभारी हूं।

—गोपाल व्यास

मेवाड राज्य कुछ भौगोलिक तथ्य

वतमान मेवाड क्षेत्र भिन्न भिन्न समय मे अलग अलग नामो से जाना जाता रहा है। ईसा से पूव तीसरी शताब्दी के आस पास इसे शिबि जनपद कहा जाता था।[1] 9वीं-10वी शताब्दी से प्राग्वट, मेदपाट और मेवाड नामक तीन नामो का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] किन्तु मेवाड नामक सज्ञा सर्वाधिक प्रचलित रही थी। 19वी शताब्दी से इस प्रदेश को उदयपुर राज्य भी कहा जाने लगा था।[3] यही मवाड क्षत्र वतमान समय म भारतीय गणतन्त्र के राजस्थान राज्य का उदयपुर सभाग कहलाता है। इस सभाग म सम्मिलित तीन जिले यथा—उदयपुर चित्तौड तथा भीलवाडा, प्राचीन मवाड राज्य के मुख्य भाग थे। शेष दो जिले डूगरपुर तथा बांसवाडा मेवाड क्षेत्र की भौगोलिक सीमा म नही आते।

(अ) क्षेत्र एव क्षेत्रफल

मेवाड क्षेत्र का क्षेत्रफल समयान्तर होने वाले बाह्य आक्रमणो तथा राजनीतिक परिस्थितियो के दबाव के फलस्वरूप घटता बढता रहा था। शौयवान शासको के काल म इसका विस्तार उत्तर पूव म बयाना, दक्षिण मे रेवा और माही काठा, पश्चिम म पालनपुर तथा दक्षिण-पूव मे मालवा (उत्तरी मध्यप्रदेश) तक विस्तत रहा था।[4] राणा अमरसिंह प्रथम के समय में ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो गई थी कि मेवाड केवल चावड के पहाडी प्रदश

---

1 डॉ गौरीशकर हीराचंद ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग 1, पृ 1

2 उपरोक्त, पृ 1, जगदीश सिंह गहलोत—राजपूताने का इतिहास, पृ 130, डा चन्द्रशेखर पुरोहित—सस्कृत साहित्य का मेवाड को योगदान (अ प्र शो) पृ 5

3 मवाड रेजीडेसी तथा एजेसी रिकाड मे इसे उदयपुर राज्य कहा जाता था।

4 डॉ गोपीनाथ शर्मा—मेवाड मुगल सम्बन्ध (हिन्दी) पृ 1

जामुनिया और बुड्यु के 60 लाख रुपया वार्षिक उपज वाले परगने होल्कर के रहन रखे थे। किन्तु ऋण राशि चुकता नहीं होने के कारण 1763 ई मे होल्कर द्वारा इन पर स्थाई अधिकार कर लिया गया। इन परगनो का कृषि उत्पादन की दृष्टि से आर्थिक महत्व था। मेवाड राज्य को इन परगनो के चले जाने से भूमि के साथ साथ आर्थिक-लाभ से भी वंचित होना पड़ा था।

(ग) राणा अरिसिंह (1761-1773 ई) का शासनकाल मेवाड मे गृह युद्ध तथा सामन्त विद्रोह का युग रहा था। राणा ने अपना पक्ष प्रबल करने के लिये कोटा के मुसाहिब झाला जालिमसिंह को चितासेड़ा की जागीर तथा जोधपुर के शासक महाराजा विजयसिंह को राज्य के उत्तर पश्चिम मे स्थित 80 लाख रुपया वार्षिक उत्पादन का गोरवाड परगना जागीर मे प्रदान किया था जो कभी मेवाड मे पुन सम्मिलित नहीं किया जा सका था।

(घ) राणा हम्मीर सिंह के शासन काल (1773-1778 ई) मे माधव राव सिंधिया ने 1774 ई म 13725 रु वार्षिक उत्पादन के 48 गांव बेगू जागीर से 31451 रु वार्षिक उत्पादन के 36 गांव सिंगोली परगने से, तथा 3651 रु वार्षिक उत्पादन के 18 गाव भीचोर परगने स ले लिये थे। इसी प्रकार अहिल्या बाई होल्कर ने भी इसी काल म 10 000 रु वार्षिक आय वाले 29 गावो के मोखण तथा नन्दवास नामक दो परगने के साथ निम्बाहेड़ा की चौथ की बकाया राशि के बदले मे स्थाई रूप स अधिकृत कर लिया था।

(ङ) राणा भीमसिंह के राज्यकाल (1778-1828 ई) म सिंधिया ने फौज खर्च के बदले म राज्य के दक्षिण-पूर्व म स्थित जावद व जीरण नामक क्षेत्र 1788 ई म और 1800 ई म अपनी स्वर्गीय पत्नी गगाबाई की छत्री बनाने तथा उसकी व्यवस्था व्यय के बदले मे 10 गांव वाला गगापुर का परगना अपने ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत ले लिया था।[1] इसी प्रकार फौज खर्च के बदले मे झाला जालिमसिंह द्वारा 1802 ई म जहाजपुर का परगना मेवाड से अलग कर दिया गया था जो कि ब्रिटिश मेवाड संधि के पश्चात् तत्कालीन पोलिटीकल एजेन्ट कर्नल टाड ने 1819 ई म पुन मेवाड को दिलवाया था।[2]

(च) राणा स्वरूपसिंह के शासन (1842-1861 ई) काल म राज्य

---

1 एनाल्स भा 1, पृ 505, वरदा, वर्ष 18 अक 2 पृ 1-11

2 डॉ मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास, भा 2 पृ 505

तक सीमित रह गया, किन्तु राणा संग्रामसिंह द्वितीय (1710 1734 ई) तक मेवाड की सीमा पुन बढती रही।[1] इस समय मेवाड राज्य उत्तर पूर्व म देवली, उत्तर म नसीराबाद क पास तक, पश्चिम उत्तर तथा पश्चिम में जोधपुर व सिरोही पश्चिम दक्षिण म ईडर राज्य के कुछ भाग, दक्षिण में डूंगरपुर बांसवाडा और प्रतापगढ राज्य दक्षिण पूर्व और दक्षिण मे भानपुरा बूंदी, कोटा तथा उत्तर पूर्व म जयपुर राज्य की सीमा तक फैला हुआ था। किन्तु 18वीं शती के पूर्वार्द्ध से मेवाड़ पर मराठा के प्रतिक्रमण चौथ तथा सहायता क बदले म प्रदेश के कई गांव एव परगने अन्य राजपूत शासकों व मराठा सरदारो द्वारा अधिकृत कर लिये जाने के कारण परिस्थिति पुन परिवर्तित होने लगी। इस दबाव के परिणामत धन और जन के साथ ही प्रदेश की भूमि की हानि उठानी पडी। इसका विवरण निम्न प्रकार से प्राप्त है।[2]

(क) राणा जगतसिंह द्वितीय (1734-1751 ई) के राज्यकाल म राज्य क पूर्वी पश्चिमी भाग म स्थित रामपुरा का परगना जयपुर शासक सवाई माधोसिंह प्रथम ने मल्हारराव होल्कर को दे दिया था। यह परगना राणा संग्रामसिंह द्वितीय ने 1729 ई म माधवसिंह को जागीर के रूप मे दिया था।[3] किन्तु जयपुर के उत्तराधिकार युद्ध मे होल्कर की सामरिक सहायता के बदले म 8 56 997 रुपया वार्षिक आय वाला यह परगना मेवाड राज्य से जाता रहा था। इस परगने का निश्चित क्षेत्रफल ज्ञातव्य नहीं है।

(ख) राणा जगतसिंह के पौत्र राणा राजसिंह द्वितीय (1754-1761 ई) ने चम्बल नदी के निकट स्थित बगजेडा जारडा हिंगलाजगढ

---

1 रावल बापा खुमाण समरसिंह, राणा कुम्भा और सांगा, मेवाड के शक्तिशाली शासक रहे थे।

2 इस विवरण के आधार हेतु ग्रन्थ द्रष्टव्य—(अ) कर्नल जेम्स टॉड—एनाल्स एण्ड एण्टाक्विटीज, भा 1 (ब) ग्रुण्ड—हिस्ट्री ऑफ मयवार (स) कविराजा श्यामलदास, वीर विनोद भा 1-4 (द) ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास (क) डॉ के एस गुप्ता—मेवाड एण्ड मराठा रिलेशन्स (ख) डा आर पी शास्त्री—झाला जालिमसिंह।

3 माधवसिंह राणा अमरसिंह द्वितीय का दौहित्र तथा सवाई जयसिंह का द्वितीय पुत्र था। राणा संग्रामसिंह ने रामपुरा का परगना अपने भाणेज के रोटी खर्च हेतु जागीर म दिया था—वि वि पृ 980 1241

की उत्तरी सीमा मे रहने वाली मर और मीणा नामक उपद्रवी जातियों की यवस्था और सनिक छावनी की आवश्यकता हेतु अंग्रेज सरकार ने मेवाड का मरवाडा क्षेत्र स्थाइ रूप म अजमेर रेजीडेन्सी के अधीन कर दिया था।

184० ई म मेवाड के मेरवाडा क्षत्र को अजमर म मिलाने के पश्चात् मेवाड राज्य की सीमा 23 49' से 25 28' उत्तर अक्षांश और 73 1' से 75 49' पूव देशान्तर क मध्य फली हुई थी। इसका क्षेत्रफल 12 691 वग मील अथवा 20 304 वग किलामीटर था।[1] इस परिधि के उत्तर में अजमेर मेरवाडा व शाहपुरा (फूलिया) पश्चिम म जोधपुर व सिरोही, दक्षिण-पश्चिम मे ईडर, दक्षिण म डूगरपुर बासवाडा व प्रतापगढ राज्य पूव म नीमच निम्बाहेडा तथा कोटा बूदी राज्य उत्तर पूव म जयपुर राज्य की सीमाओ से लगी हुई थी। राज्य क 10 गावो का गगापुर परगने का भू भाग सिधिया के ग्वालियर राज्य म और 29 गावो का नन्दवास परगने का क्षत्र होलकर के इन्दोर राज्य मे स्थित था।[2]

(आ) प्राकृतिक क्षेत्र

भौगोलिक अवस्था की दृष्टि से मेवाड तीन प्राकृतिक क्षेत्रा म बाटा जा सकता है। (1) पवतीय भूमि (2) पठारीय भूमि और (3) मदानी भूमि।

पवतीय भूमि—अरावली पवत की छोटी और बडी शृखलाएँ मेवाड प्रदश के सम्पूण क्षेत्रफल मे बिखरी हुई हैं। मुख्यत इन्हे दो भागो म विभक्त किया जा सकता है। यह शृखलाएँ राज्य के क्षेत्रफल का कुल 3/4 भाग के लगभग था।

(अ) उत्तर-पश्चिमी अरावली शृखला—अजमर की ओर से दीवेर के निकट मेवाड म प्रवश करने वाली शृखला पश्चिम-दक्षिण मे मारवाड राज्य[3] के किनारे किनारे रेंगती हुई मवाड की दक्षिणी सीमा तक फली हुई है। इसी शृखला मे अरावली की सर्वोच्च चोटी जर्गा का पहाड' स्थित है।[4] श्रेणी के पवता म कई सकरे और तग प्राकृतिक माग स्थित हैं जिन्हे

---

1 मेजर ई डी अमकीन—मेवाड रेजीडेन्सी, भा 2 ए पृ 5, गहलोत—राज इति पृ 130

2 वी वि पृ 100-101, ओझा—उ भा 1 पृ 2

3 आधुनिक जोधपुर सभाग।

4 गोगुन्दा नामक स्थान से 24 किलोमीटर उत्तर म स्थित यह चोटी समुद्रतल स 4315 फुट ऊची है।

स्थानीय भाषा में 'नाल' कहा जाता रहा है। इन नालों मे देसुरी, जीलवाड़ा और हाथीगुडा की नाल, जोधपुर राज्य और मवाड़ के मध्य आवागमन के लिये प्रयोग होती रही थीं। इसी भू भाग से राज्य के केन्द्रीय प्रदेश को उपजाऊ बनाने वाली नदियां निकली हैं। इस पर्वतीय क्षेत्र में अधिकतर राज्य के आदिनिवासी भीलों का निवास रहा है। यह जाति पर्वतीय उपज और कृषि[1] पर अपना जीवन निर्वाह करती आई है। आलोच्यकाल मे इस क्षेत्र का भू प्रबन्ध खालसा एव जागीर के प्रशासनान्तर्गत था। इस क्षेत्र मे कुम्भलगढ सायरा, गोगुन्दा, माडोल इत्यादि स्थान जन जीवन के प्रमुख केन्द्र थे।

(ब) दक्षिणी अरावली शृ खला—यह पर्वतीय भाग खान एवम् खनिज, औषधियो तथा इमारती काष्ठ की दृष्टि स बहुत सम्पन्न रहा है।[2] इस भाग म राज्य के दक्षिणी भाग की ओर बहने वाली नदियों म गोमती, माही तथा वाकल नदी मुख्य है। यह प्रदेश पुन मगरा मेवल तथा छप्पन नामक उप क्षेत्रो मे विभक्त है।[3] मेव, मीणा और भील जैसी आदिवासियो की बस्तियो के साथ इस क्षेत्र मे सलूम्बर, चावड आगना पानरवा, जूडा व जवास ठिकानों क आसपास सभ्य जातियो की बस्तियां भी विद्यमान रही थीं।

उपरोक्त पर्वत शृ खलाए मेवाड राज्य के लिए दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर की ओर सीमा रक्षक का कार्य करती थी। इस ओर स होने वाले शत्रुओ क आक्रमण कभी सफल नहीं हुए थे।[4] इसके साथ ही यह क्षेत्र मेवाडी-जन क लिए सकट के क्षणों मे आश्रय स्थल का कार्य भी करता रहा था। क्षेत्र की दुर्गम तथा बीहड स्थिति के कारण जनसख्यात्मक दृष्टि मे यह क्षेत्र सदैव न्यून आबादी वाला क्षेत्र बना रहा, जिसके चिन्ह आज भी देख जा सकते हैं।

---

1 जगल के सूखे वृक्षो व घास को जला कर खाद बनाना तथा इसी म बीज छिटक कर वर्षा म पकने दना को वालरा (या वल्लर) खेती कहा जाता रहा है—उ ई भा 2 पृ 9 गहलोत—राज इति पृ 135

2 द्रष्टव्य—खान एव खनिज अनुच्छेद।

3 उदयपुर के आसपास वाला क्षेत्र मगरा वाकल नदी के पास वाला भोमट गोमती नदी के पूर्वी भाग म मवल तथा गोमती स माही नदी के मध्य का क्षेत्र छप्पन कहलाता रहा है।

4 गुजरात पर अधिकार हो जाने के पश्चात् भी मराठा लोग इस ओर से आक्रमण की नहीं सोच सके थे।

पठारीय भूमि—मवाड का पठारीय भाग चित्तौड स बेगू, बिजोलिया माडलगढ, जहाजपुर भैंसरोडगढ से कोटा बूदी राज्यों[1] की सीमा तक फला हुआ है। यह क्षत्र स्थानीय बोल चाल म उपरमाल[2] क नाम स जाना जाता है। यह पठार उपज की दृष्टि से मेवाड का सम्पन्न भाग रहा। इस क्षत्र म आर्थिक लाभ वाली अफीम की खेती बहुतायत से होती रही है। क्षेत्रिय सम्पन्नता से आकर्षित होकर मराठों न भा बार बार इसी आर अतिक्रमण किय थे। परन्तु यहा की भूमि की स्थिति के फलत मराठों को यातायात सम्बन्धी कठिनाइया का सामना करना पडा था।

मदानी भूमि—उत्तर म खारी नदी म कोठारी नदी के मध्य प्राकृतिक भूमि तथा बनास नदी से दक्षिणी बन्य प्रदेश तक फैली भूमि मेवाड का मदानी प्रदेश कहलाता है। इस क्षेत्र को मवाड की भाषा मे 'माल' कहा जाता है। मेवाड की घनी आबादी वाली बस्तिया इसी क्षेत्र मे अवस्थित हैं। इन बस्तियो म राजपूत ब्राह्मण तथा महाजन जातियों के साथ कृषि व्यवसायी जातिया म जाट, जणवा, डागी, धाकड आदि अधिक रहत हैं।[3] यही भूमि क्षेत्र मेवाड की आर्थिक सम्पन्नता का प्रतीक था।

(इ) नदिया

मेवाड के प्राकृतिक क्षत्रो म वर्णित पवतीय क्षत्र स कई नदिया निकलती है जि ह बहाव की दृष्टि से दो भागो म विभक्त किया जा सकता है—(अ) दक्षिणी पश्चिमी बहाव वाली नदिया तथा (ब) पूर्वी बहाव वाली नदिया।

दक्षिणी-पश्चिमी बहाव वाली नदियो म मेवाड तथा डूगरपुर राज्य[4] की प्राकृतिक सीमा बनाने वाली सोम नदी मुख्य है। यह नदी मेवाड के दक्षिणा पश्चिमी भाग म बहती हुई माही नदी म विलीन हो जाता है। दक्षिणी अरावली श्रृखलाओ से निकल कर दक्षिण की ओर बहने वाली नदिया म कुवल गोमती सरणी बरस और वमला नामक नदिया इसकी सहायक नदिया रहा हैं।[5] दक्षिण पूव मे छोटी सादडी के पास वाले पवत से जावम नदी एक अन्य महत्वपूण नदी है जिसके आसपास इमारती काष्ठ वाले

---

1 आधुनिक कोटा सभाग की पश्चिमी सीमा।

2 माल>मैदान तथा ऊपर>पहाडी भाग।

3 केप्टन सी ई यर्स—गजेटीयर आफ मवाड भा 3 पृ 44

4 आधुनिक डूगरपुर जिला।

5 मवाड रेजाड्स सी भा 2 ए पृ 8 उ ई भा 2 पृ 4 5

पेड़ तथा बास बहुतायत स होते हैं। इसके तट पर ही धरीयावद का उपजाऊ भाग फला है जिसम सीताफल, टीमरू करमदा, रायना, बोर आदि फलदार वृक्ष बहुत पाये जाते हैं। पश्चिम मे गोगुन्दा के पास वाले पवत से निकल कर राज्य क भोमट प्रदेश को हरा भरा रखने वाली वाकल नदी का प्राकृतिक रूप म महत्वपूर्ण स्थान है। यह नदी भोमट से ईडर राज्य[1] में बहती हुई साबरमती नदी म विलीन हो जाती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से जावम और वाकल का पानी अत्यन्त भारी और अस्वास्थ्यप्रद रहा है।

पूर्वी बहाव की नदियो म मेवाड़ के उत्तरी भाग म स्थित दीवेर की पहाड़ियो से निकल देवगढ़ के पास बहती हुई खारी नदी अजमेर की सीमा पर बनास म विलीन हो जाती है। यह नदी अजमेर तथा मेवाड़ की प्राकृतिक सीमा निश्चित करने म सहायक थी। मेवाड़ के मध्य भागो को प्राकृतिक लाभ प्रदान करने वाली नदियां म कोठारी, बनास तथा बेड़च नदियां प्रमुख रही हैं। तीनो नदियां क्रमश नन्दराय तथा माडलगढ़ के आसपास सयुक्त होती हुई चम्बल म मिलती हैं। इन नदियो के तट पर राज्य के प्रसिद्ध तीर्थ, व्यापारिक एव प्रशासनिक केन्द्र स्थित रहे हैं। बनास की सहायक नदियां मे चन्द्रभागा और बेड़च की सहायक नदियो म गम्भरी तथा मनाल मुख्य रही हैं।

अन्तर्प्रान्तीय नदी चम्बल को छोड़कर मेवाड़ की कोई भी नदी वर्ष पर्यन्त नहीं बहती है। चम्बल नदी के कारण भसरोड़गढ के आसपास का क्षेत्र घने वन से आच्छादित रहता है। इस नदी के भूगर्भीय जल पेटे के कारण राज्य का पूर्वी पठार उपजाऊ बना रहा। इसी प्रकार बनास नदी के जलपेटे की नमी और भूगर्भीय जल द्वारा इसके पास फैले क्षेत्र मे कुओं का जलस्तर वर्ष पर्यन्त सामान्य रहता रहा है। नदियो द्वारा मैदानी तथा पर्वतीय प्राकृतिक लाभ के साथ स्थानीय जागीर एव खालसा भूमि का क्षेत्र निर्धारण, मेवाड़ का अन्य राज्यों से सीमा सम्बन्ध तथा सभ्यता[2] के विकास मे अमूल्य योगदान रहा है। नदियो के किनारे राज्य के प्रमुख धार्मिक स्थानो म श्रीनाथ जी (नाथद्वारा) चारभुजा (राशिम), देवसोमनाथ हरीहर महादेव (बदराना), व्यापारिक केन्द्रो म उदयपुर, चित्तौड़ माडलगढ़, आसींद,

---

1 आधुनिक गुजरात राज्य का हिम्मतनगर जिला तथा राजस्थान राज्य की पालनपुर तहसील (सिरोही जिला)।

2 डा० दशरथ शर्मा (सम्पादन)—राजस्थान थ्रो दी एजज पृ 34-35

गुलाबपुरा, रूपाहेली आदि, तथा प्रशासनिक केन्द्रों में देवगढ़, कोठारिया, कुठाला राश्मी, चित्तौड़ उदयपुर भजा आदि के साथ नदियों के आसपास कई औद्योगिक एवं उपजाऊ गांव तथा बहुत गांव बस हुए रहे हैं। बेड़च नदी राज्य की तीन राजधानियों की सरदार[1] रही है, यहां बनास नदी ने उच्छृंखल बहाव ने मराठा अतिक्रमणों को कई बार वर्षा त रोक रख राज्य को सामरिक सहायता पहुंचाई थी।[2] इन नदियों के जल द्वारा राज्य में साला भरे रहने वाले तालाब विद्यमान रहे हैं जो वष पयन्त कृषि तथा अकाल के समय पेयजल पूर्ति करते रहे थे।

(ई) सिंचाई साधन तथा अन्य जल स्रोत

मेवाड़ राज्य के प्रत्येक गांव में कम से कम एक तालाब या तलाई अवश्य बनी हुई थी।[3] परन्तु इनमें से अधिकांश ग्रीष्मकाल में सूख जाते रहे हैं। वर्षपर्यन्त जलप्लावित रहने वाले सरोवरों में उदयपुर का पीछोला, स्वरूप-सागर उदयसागर, जनासागर (बड़ी का तालाब) मदार का तालाब फतह सागर (देवाली का तालाब) कांकरोली का राजसमन्द, सलूम्बर से 16 कि मी उत्तर में स्थित जयसमन्द मांडल कपासन सरदारगढ़ सलूम्बर भींडर कानोड़ बड़ोसादड़ी आवरीमाता आदि हैं। इन सरोवरों के निर्माण के पृष्ठ में व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के साथ लोक कल्याण की भावना भी निहित थी। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पीछोला उदयसागर राजसमन्द तथा जय-समन्द से सिंचाई के लिये नहरें निकाली गईं किन्तु इनका उपयोग केवल राज्य तथा सावजनिक बागों की सिंचाई के लिये होता था।[4] फिर भी यह तालाब आसपास वाले कुओं और जमीन में पानी तथा नमी बनाये रखने में महत्वपूर्ण थे। इन तड़ागों में सीयालू (खरीफ) और उनालू (रबी) दोनों प्रकार की उपज (फसल उत्पादन) में सहायता मिलती रही थी। आर्थिक रूप में इनके महत्व के साथ इनकी परिधि में फले सघन क्षेत्रों में वन्य पशु पक्षियों का अभयारण्य शिकारियों के लिये शिकार का आनन्द प्रदान करने में

---

1 चित्तौड़ आयड़ व उदयपुर।
2 उदयपुर राज्य का इतिहास पृ 689
3 गटे—मेवाड़, भा 3 पृ 18
4 सन् 1884 ई में राज्य में प्रथम सिंचाई नहर राजसमन्द से निकाली गई थी—एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ मेवाड़ स्टेट सन् 1884 85, 1887 88, 1890, राज इति पृ 133

महत्वपूर्ण था। तालाबो के किनारे बनी शिकार ओदीया इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

तालाबो के पश्चात् धर्मार्थ से प्रेरित परमार्थ चेतना का प्रतीक बावडिया और कुओ का स्थान आता है। 19वी शती की अन्तिम गणना के अनुसार राज्य मे लगभग 1,25,000 कुए विद्यमान रहे थ।[1] इनमें अधिकतर कुए पानी पीने के लिए बने हुए थे। यह कुए पक्के होने के कारण बावडिया कहे जाते थे।[2] कृषि काय म प्रयोग लिये जाने वाले कुओं की सख्या राज्य की पथरीली पवतीय भूमि की विस्ततता तथा उसमें खुदाई का दुसाध्य व्यय-भार के कारण न्यून रही थी।[3] कृषि काय म प्रयुक्त कुओ को खुदाई-व्यय तथा जल भण्डारण के रूप म दो भागो म विभक्त किया हुआ था—(अ) सेजा कुआ और (ब) आकडा कुआ। सेजा कुओं मे पानी 25-30 फुट औसतन गहराई पर प्राप्त होता है जिसके फलस्वरूप आलोच्यकाल के उत्तराद्ध में इसकी खुदाई पर 200 रुपया से 300 रुपया कुल खुदाई खच बठता था। आकडे कुओ मे पानी 45-50 फुट की गहराई क पश्चात् प्राप्त होता था अत इन कुआ की खुदाई म 400 रु से 1000 रु तक खुदाई खच आता था। इस प्रकार वे कुओ से केवल खरीफ फसल की पिलाई हो सकती थी, जबकि सेजा कुओ से दोनो फसल की सिचाई होती थी।[4] वैसे मेवाड के कृषक अपनी फसलो के उत्पादन में वर्षा पर निभर रहने के आदी रहे है अत इस क्षत्र म कुओ की सख्या का अधिक नही होना आश्चयजनक नहीं है। आत्म निभर आर्थिक उत्पादन करना ही यहा के लोगो का मूल लक्ष्य 20वी शती के उत्तराद्ध तक स्थिर रहा था। राज्य में खुदे हुए कुओ तथा बावडियो को पानी के स्वाद की दृष्टि से तीन भागो म विभक्त किया हुआ था—मीठा, खारा एव तुरा पानी, जिनम प्रथम प्रकार के पानी वाले कुए पय जल तथा सिचाई के लिए सर्वोत्तम माने जाते थे। पानी में खनिज तथा लवण की

---

1 मेवाड रेजोन्सी पृ 47

2 धार्मिक उत्सवो अकाल के समय तथा सामाजिक कार्यों के लिए आर्थिक सम्पन्न लोगो द्वारा स्वय तथा जन कल्याणाथ एसी कई बावडिया का निर्माण कराया गया था—वी वि पृ 956 57, 1925, गहलोत—राज इति पृ 133, उ ई भा 2 पृ 622, 639 40 663 64, 805, 833 34

3 मटे—मवाड, पृ 18-19

4 उपरोक्त

मात्रा अधिक होने के कारण पेय दृष्टि से मेवाड़ क्षेत्र का पानी भारी माना जाता रहा है। यह स्थिति क्षेत्र के पूर्वी भाग से ज्यों ज्यों पश्चिम की ओर बढ़ते हैं त्यों त्यों स्पष्ट होने लगती है। यद्यपि प्रदेश के लोग इस पानी के आदी रहे हैं किन्तु विदेशियों और बाह्य आक्रमणकारियों के लिये यह जला-पाथ्य रहा था। आलोच्यकाल की 18वीं शती के मराठा अतिक्रमण अस्थिर रहने के पृष्ठ में यह भी एक कारण था। जलवायु प्रभावित रोगों में तिल्ली बढ़ना तथा अन्य पेट की बीमारियों के साथ चर्मरोग और नेहरू की शिकायत मुख्य है।[1]

(उ) जलवायु

मेवाड़ राज्य का मौसम न अधिक आर्द्र और न अधिक शुष्क रहा था। विभिन्न रिकार्डों के अनुसार मेवाड़ का औसतन तापमान 76°-77° तथा औसतन वर्षा 28 42' अंकित की गई है।[2] कई अवसरों पर जलवायु ने अतिवृष्टि अति शीत ओलावृष्टि तथा अति ग्रीष्म द्वारा अन्न जल तथा तृण का अभाव उत्पन्न कर जन जीवन तथा पशुओं को हानि पहुँचाई थी।

अध्ययनकालीन वर्षों में सन् 1712-13, 1732-34, 1747, 1755, 1764, 1783 (चालिसा काल वि सं 1840) 1790 93 1799-1800 1804-1805 1810-13, 1833-34 1837 1838 1860 1868-70 (सताइसा काल) 1873, 1877 78 1884-1885 1888-1889 1890 1891 एवं 1899-1900 ई (छपनियां काल)वे अकाल वर्ष थे।[3] मराठा लूट खसोट यातायात के साधनों के अभाव तथा राज्य की

---

1 यटे—मेवाड़ पृ 20

2 मेवाड़ प्रदेश मे सर्वाधिक ठण्ड जनवरी माह (59° 61 4 यून ताप-मान) म गर्मी मई माह (89° 89 6° अधिक तापमान) म तथा अधिक वर्षा जुलाई अगस्त माह (10 85 -7) रहती रही है—उपरोक्त, मेवाड़ रेजीन्सी, पृ 11

3 एनाल्स भा 1 पृ 437 497 ज सी ब्रूक—रिपोर्ट आन दी फेमीन इन राजपूताना एण्ड अजमेर मरवाड़ा 1870,रिपोर्ट आफ दी फेमीन इन दा नेटीव स्टेटस आफ राजपूताना 1899 1900 ई वी वि पृ 732, 1740 1868 2083 84 मेवाड़ रेजीन्सी पृ 60-62 टी एच हेन्डल—जनरल मेडीकल हिस्टी आफ राजपूताना (1900) चेप्टर 12, सर जान माल्कम—ए मेमायर आफ सेंट्रल इंडिया भा 2 पृ 35 एच एस श्रीवास्तव—दा हिस्ट्री आफ दी इण्डियन फेमीन्स, पृ 20-21

स्थिति के प्रति उदासीनता के कारण इन प्रकालो की भयकरता का अनुमान निम्न उदाहरणों से प्रस्तुत किया जा सकता है—

(अ) राणा अरिसिंह के काल में एक ओर मराठाओ का अतिक्रमण, दूसरी ओर मेवाड के सामन्तो का उपद्रव तथा इसके साथ ही अनावृष्टि से उत्पन्न अकाल सन् 1755 तथा 1764 ई मे लोग बच्चे बच्चियों को बेचने लगे थे किन्तु खरीददार कोई नही था स्त्रिया उदर पूर्ति हेतु सम्पन्न व्यक्तियो की रखैल बन कर रहने लगी थी।[1]

(ब) 1828 ई में जहाजपुर परगने मे अंग्रेजी प्रशासन के दबाव से तग आकर कृषक जगलो मे चले गये। राणा जवानसिंह ने ब्रिटिश सरकार को इस स्थिति से अवगत कराया कि यह स्थिति राज्य मे अकाल उत्पन्न कर सकती है किन्तु अंग्रेजी प्रशासन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।[2] इसका प्रभाव 1833-34 ई का अकाल पडा जिसमें असख्य लोग खाद्यान्न के अभाव मे मर गये तथा तृणाभाव के कारण पशुओ की सख्या में कमी हुई।[3]

(स) 1868 ई की अनावृष्टि तथा 1869 ई के अतिवृष्टि से औसतन 200 व्यक्ति प्रति दिन मरने लगे थे, लाशो को उठाने वाला कोई नही था। लडके लडकी का क्रय मूल्य 2 रुपया प्रति प्राणी था।[4]

1880 ई मे भारत सरकार द्वारा प्रथम फेमीन कोड बनाया गया जो कि देशी राज्यो म 1883 ई के पश्चात लागू किया गया था।[5] इसके लागू होने के पश्चात् राज्य द्वारा ब्रिटिश सरकार की सहायता से अकाल राहत कायक्रम चलाय जान लगे किन्तु इससे बेगार की समस्या बराबर बनी रही थी। जलवायु में यह दृष्टात देना उचित नहीं है।

---

1 एच एस श्रीवास्तव—उपरोक्त।

2 राणा जवानसिंह का पत्र एजेन्ट टू गवनर जनरल—फारेन पोलीटीकल कन्सलटशन—2 मई, 9 मई 1828 न 1-2

3 रिपोट ऑफ दी फेमीन इन नेटिव स्टेटस आफ राजपूताना फॉर 1899-1900 ई पृ 9

4 रिपोट आफ दी पोलीटीकल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ राजपूताना फॉर 1868-1869 ई पृ 15, मेवाड एजेन्सी रिपोट 1868-1869 पृ 49-50, वी वि पृ 2083-2084

5 एस पी माथुर—रिपन पृ 136

(ऊ) भूमि एव मिट्टी

कृषि का प्रत्यक्ष सम्ब ध भूमि से रहता है, अत भू उपज के अनुसार भूमि चार भागो मे वर्गीकृत रही थी--(अ) कुआ, तालाब या नहर से सिचाई वाली 'पीवल" भूमि, (ब) केवल वर्षा पर आश्रित 'माल" भूमि, (स) पशुओ के घास के लिए काम मे आने वाली 'बर्गोट राकड अथवा काकड" भूमि तथा (द) बाग बगीचो के उपयुक्त वाडी' (नम) भूमि।[1] स्थानीय भाषा म प्रमाणा कही जाने वाली पीवल तथा माल भूमि उपज की दृष्टि से अधिक महत्व रखती थी जिसका औसतन मूल्य 4 रु से 12 रु प्रति बाधा और राकड या काकड का औसत मूल्य 1 रु से 2 रु प्रति बीघा था।[2] वाडी नामक भूमि का स्वामित्व विशेषाधिकार के अन्तगत आता था जा कि राणा अथवा अधिकृत साम त द्वारा प्रदान किया जा सकता था। राज्य की भूमि की उर्वरा शक्ति का स्वरूप निम्न प्रकार रहा था[3] —

	चाही जमीन (पीवल)		बरानी जमीन (बरसाती)		दोना का औसत पैदावार	
	बीज	पदावार	बीज	पदावार	बीज	पदावार
(अ) गेहू	10सर	2मण20सेर	30 सर	8 मण		
(ब) चना	—उपरोक्त—		×	×		
(स) जौ	14 सेर	3 मण	1 मण	11 मण		
(द) अफीम	अनुपलब्ध		1 सर5छटाक	5सर (दाना)		
(क) गन्ना	"		—	10 मण		
(ख) मक्की	,		अनुपलब्ध		10सेर	10मण
(ग) कपास			,		10सेर	8मण

सना का आ तरिक विभाजन कटका, बटका तथा क्यारिया की इकाईयो म विभक्त रहता था।

प्रदेश की सम्पूर्ण भूमि की मिट्टी चार प्रकार की पाई जाती है—(अ) गहरी और हल्के भूरे रग वाला मिट्टी (ब) हल्की लाल मिट्टी (स) लाल तथा काली मिश्रित मिट्टी एव (द) मध्यम काली मिट्टी।[4] इसम भूरी तथा

---

1 मेवाड हान रजि नं 1932—रा रा अ शा उदयपुर।
2 उपराक्त।
3 उपरोक्त।
4 द्रष्टव्य मानचित्र।

काली मिट्टी वाले क्षेत्र कृषि के लिए अधिक उपयुक्त रहे हैं। मेवाड के काली मिट्टी वाले क्षेत्र अफीम और कपास के उत्पादन हेतु अधिक सहायक रहे हैं।

(ए) कृषि एव वनस्पति

मेवाड की मुख्य फसलो म छप्पन क्षेत्र के अ तगत चावल, उपरमाल क्षेत्र म गेहू तथा चना, भटवर से मगनवाड तक के मालेटा क्षेत्र म गहू, चना, मक्का, दाल, तिलहन व जौ, जर्गा की घाटियो म चावल गेहूँ तथा चना अधिक बोया जाता था।[1] राज्य के पूर्वी भागा मे तम्बाकू, अफीम कपास तथा जलप्लावित भागा म ईख (हाटा) अधिक बोया जाता था।[2] जवार की खेती के लिए भूमि उपयुक्त नही होन हुए भी लोग इसकी खेती करत थे।[3] किन्तु कृषक मुख्यत जव तथा मक्का की फसल अधिक बोत रह हैं। मवाड के मनुष्यो का साधारण खाद्य जौ और मक्की तथा पेय पदार्थ छाछ (मट्ठा) रहा था।[4] प्रदेश की कृषि वर्षा पर अधिक निभर होने क कारण खरीफ की फसल का जन जीवन मे अधिक महत्त्व रहा था। मेवाड का कृषक बजारा साख (मिश्रित फसल) के उत्पादन मे अधिक विश्वास रखता था।[6]

वनस्पति आलोच्यकालीन मवाड के वन्य क्षेत्रो म नक्द मूल्य प्रदान करने वाली वन्य वनस्पतिया प्रचुरता से उपलब्ध होती। इनम करमदा, टामरू जामुन खजूर इमली रायना सीताफल करना महुआ क फलदार वृक्ष, सागवान सीसम बड धाक गुलर, खेर पीपल बबूल और बांस जसे इमारती एव घरेलु प्रयोग म आने वाले पड, ईधन काय म प्रयुक्त किय जाने वाले वक्षा म धावड़ा खाखरा (पलाश), रग बनान क लिए समल, हडमच, हल्दू हिंगोटा पलाश आदि, पत्तल दोने बनाने के लिय खाखरा क साथ सुगध एव शृंगार के लिय प्रयुक्त किय जाने वाले वक्ष चन्दन और मेहदी, औषधि

---

1 नणसी की ख्यात, सदर्भ—सो सा मी य पृ 295

2 राजपूताना एज सी रिकॉर्ड्स—सन् 1879 न 107

3 घटे—मवाड, पृ 14

4 यहा क लोक गीतों म मक्की की महत्ता स्पष्ट होती है जिनम 'धनु धनु हे म्हारी मावड माता धनु मका री राबडी' आज भी प्रसिद्ध है।

5 घटे—मवाड, पृ 36 मवाड रेजीडेन्सी पृ 10-11

के लिय ग्रावश्य जसे पड-पौधे प्रकृति द्वारा ही फलते-फूलते थे।[2] समय परिवतन के साथ इन वन क्षत्रो का मानव सहार बहुत ग्रधिक मात्रा मे हुग्रा है। वतमान म वनो का वह रूप प्राप्त नहीं होता जो ग्रालोच्यकालीन वष मे था।

जडी बूटिया सनावरी, ब्राह्मी ग्रोर केर, ग्रहूसा ग्रादि तथा क द म गवारपाठा, मुलेठी व य प्रदेश म प्राप्त होती रही है। गाद एव कत्था के साथ साथ शहद व माम भी ग्रधिक मात्रा मे होता है। यद्यपि उपरोक्त वनस्पति एव जडी बूटिया का उपयोग मेवाड राज्य द्वारा व्यापारिक दृष्टिकोण से नही हो पाया था किन्तु गह ग्रावश्यकता की पूर्ति हेतु जन जीवन द्वारा इनका उपयोग किया जाता रहा था।[3]

शाक म ब्जियो में दॉडी-चन्द्रोई चील की भाजी, ग्रादि फसल के साथ, कीकोडा टीडोरी करेला ग्रादि प्रकृति द्वारा स्वत उत्पन्न किये जाते रहे थे। रसदार फलो म निबू ग्रौर ग्राम के पेड मेवाड मे ग्रधिक बोये जाते थे। फूलदार वक्ष ग्रौर लतिकाग्रो में कनेर, गुलाब रातरानी, चम्पा, चमेली विकसित किये जात रह थ। इन फूलो का उपयोग सामाजिक धार्मिक उत्सवो तथा ग्राभिजात्य वग के शृ गार के लिये किया जाता रहा था। कमल की दण्डियो ग्रौर डोडों का उपयोग सब्जी बनाने म भी किया जाता था।

(ऐ) पशु पक्षी

हिंसक ग्रौर व य प्राणी व पालतू ग्रौर घरेलु उपयोगी पशु-पक्षियो क दो वर्गों म प्रथम प्रकार के पशु-पक्षी मांसाहारी लोगों के लिए ग्राहार एव शिकार-प्रमोद का साधन रहे थे। खेराड व ऊपरमाल के जगलो म शेर एव हुरडा। भीलवाडा चित्तोड व उदयपुर के पहाडों में चीते ग्रधिक पाये जाते थे।[3] इन हिंसक जगली जानवरो के साथ ही राज्य के जगल एव उसके

---

1 मेवाड रेजीडेन्सी—उपरोक्त सेन्सेज ग्राफ इण्डिया, 1961 खण्ड 14 राजस्थान भा 6(बी सी डी)। धावडा का तना डेंगचा, व ग्रोडी बनाने के काम मे लिया जाता रहा है जो कि मकान की छवाई म काम ग्राता है।

2 सेन्सेज ग्राफ इण्डिया—उपरोक्त।

3 वी वि पृ 113-114

आस-पास वाले क्षेत्र जंगली सूअरों से त्रसित थे।[1] पालतु एवं घरेलूपयोगी पशुओं की विशिष्ट नस्ल राज्य में नहीं थी।[2] किंतु गायों की नारकी तथा भीण्डी नामक स्थानीय नस्लमें प्रथम बैल पैदा करने और द्वितीय दूध प्रदान करने में उत्तम मानी जाती रही थी। कृषि कार्य में लगे हुए लोग दुधारु पशुओं में गाय, भैंस, बकरी व भेड के साथ बैल, पाडे (भैंसा) पालते थे। इन पशुओं से दूध तथा उससे बनने वाला पदार्थ, ऊन तथा खाद प्राप्त होता था। मांसाहारी लोगों में भेड, बकरे, सूअर मुर्गे मुर्गी, बतख, तीतर आदि पालने का शौक प्रचलित रहा था। यातायात और सवारी के काम में आने वाले पशुओं में हाथी, घोडे और ऊँट मुख्य रहे थे।[3] राज्य का अधिकांश भाग पर्वतीय होने के कारण माल ढोने का कार्य बैलों, गधों और टट्टुओं से लिया जाता था। बालदीया कही जाने वाली घुमक्कड जातियों में बनजारे बैलों द्वारा ही माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाते थे।[4] सांढ और सांढनियों (ऊँटों) द्वारा चारण तथा रबारी नामक जाति माल लाने और ले जाने का व्यवसाय करती रही थी। धोबी, कुम्हार और आड जाति का व्यवसाय गधों पर ही आधारित था। व्यक्ति द्वारा किये अपराध के लिए सामाजिक दण्ड प्रदान करने में गधे की सवारी का विशेष महत्त्व रहा था।[5] सुंदर और पालतू

---

1 सूअरों को राज्य संरक्षण प्राप्त था (यादें—मेवाड पृ 18) 20वीं शती के पूर्वार्द्ध में इनके संरक्षण के विरुद्ध जन-आन्दोलन किया गया, फलतः इस संरक्षण को कुछ क्षेत्रों तक सीमित कर मेवाड सरकार ने किसानों को राहत पहुंचाई थी।

2 प्रचलित नस्ल में राज्य के उत्तरी भाग के पशु गीर, मध्य भाग के कांकरेज तथा दक्षिणी पूर्वी भाग के मालवी कहलाते थे—टण्डन एवं बी एस गूडिया—इकोनोमिक वेरीबीलीटी आफ फार्मस इन उदयपुर डिस्ट्रिक्ट (1972) पृ 7

3 राज्य में काठियावाडी कच्छी तथा अबलक (अरबी) घोडे विद्यमान थे। हाथी घोडे रखना राजपूत जाति के अन्दर सामाजिक प्रतिष्ठा का चिह्न माना जाता था। अधिक घोडे अधिक समृद्धि के परिचायक होते थे—वी वि पृ 116

4 वणजार>वाणिज्य कार और वन में फिरने वालों से होता है। मेवाड के प्रचलित लोक नृत्य 'गवरी' में लाखा बन्जारा का अभिनय इस जाति की तत्कालीन व्यवसायात्मक स्थिति को स्पष्ट करता है।

5 वी वि पृ 116

पक्षियों मे मोर राज्य के उत्तरी पूर्वी क्षेत्रों म तथा गागरोनी तोता वेगू की ओर अधिक पाये जाते थे जि हें लोग घर म पालना शुभ मानते थे। वेडच और बनास नदियों म पाई जाने वाली 40 सेर की गू छ जाति की मछली के साथ अ य मासाहारी लोग खाने के काम म लाते थे।[1] पालतू पशुओं के मूल्य की दृष्टि स गाय का औसतन मूल्य 25 रुपया बल का 40 रुपया, भस का 35 रुपया पाडे का 20 रुपया पोनीयान रोड (घोडे) बच्छी का मूल्य 20 से 100 रुपया बकरी 3 रुपया, बकरा 2 रुपया 8 आना भेड का 2 रुपया, ऊँट का 55 रुपया और सा नी का 55 प्रचलित रहा था।[2] यद्यपि अकालादि के समय म दुधारु गाय का मूल्य 1 रुपया तथा बल का 5 रुपया तक होने के प्रमाण उपलब्ध होते हैं।[3] कि तु सामा यकाल मे उपरोक्त स्थिति का औसतन मूल्य बना रहा था।

(ओ) खान एव खनिज

अरावली पवतमाला क पेटो मे दबे पडे विभिन्न प्रकार के खनिज तथा खाना न भी प्रदेश के जीवन को आर्थिक दृष्टि से प्रभावित किया था। प्राचीनकाल से 16वीं सदी तक उदयपुर के दक्षिणी और वाली शृ खलाओं म बोडज, अजनी केवडा का नाल उत्तर म देलवाडा तथा रेवाड (गगापुर के पास) तावे की खाना से तावा निकाला जाता रहा था।[4]

लोहे की खानो म सादडी हमीरगढ अमरगढ उदयपुर के दक्षिण मे स्थित वेदावल की पाल तथा अजेनी की खान मुगल आक्रमण काल म ब द हो गई थी कि तु माडलगढ के पास वाली बीगोद गु हली जहाजपुर के पास मनोहरपुरा और बडी सादडी के पास पारसोना नामक स्थाना पर 1836-94 ई तक लोहा निकाला जाता रहा था।[5]

चादी सीसा और जस्त की खानो मे जावरा की खान (जावर माई स), दरीबा और पोटलाना प्रमुख रही थी। पोटलाना और दरीबा खान से 18वी शता दी के पूर्वार्द्ध तक सीसा उत्पादन होता था जिसका वार्षिक उत्पादन

---

1 उपरोक्त—पृ 117

2 गजेटीयर रिपोट आफ मेवाड (ह प्र) पृ 98

3 जे सी ब्रुक—रिपोट आन दी फेमिन इन राजपूताना एण्ड अजमर मेरवाडा 1870 ई पृ 19 20

4 वी वि पृ 109 मेवाड रेजीडे सी पृ 53

5 वी वि —उपरोक्त।

मूल्य 80,000 रुपया के लगभग रहा था।[1] जावर की खान 1812-13 ई. तक बराबर चालू थी किन्तु मराठा पिण्डारी अतिक्रमणों के कारण इसका उत्पादन शनैः शनैः बन्द हो गया। 1766 ई. के विवरण से ज्ञात होता है कि तत्काल इस खान द्वारा लगभग 2 लाख रुपया वार्षिक का माल निकाला जाता था।[2] राणा शम्भुसिंह के काल में एक अंग्रेज भू वैज्ञानिक प्रो. बुशल के निरीक्षण में, इस खान की सफाई का काय किया गया था। किन्तु मुल्क बाजारों में इसके उत्पादन का अधिक लाभ नहीं देखते हुए मेवाड़ सरकार ने इसमें पूंजी लगाना व्यर्थ समझा। अतः यह काय बन्द कर दिया गया।[3]

पत्थर की खानों में चित्तौड़, गोगुन्दा, निम्बाहेड़ा, मालदा, सेंती, डौंकली आदि स्थानों से मकान में छत की पट्टियां निकाली जाती थी। इन पत्थरों में वासथा खान और चित्तौड़ी पत्थर अच्छे माने जाते रहे हैं। ऋषभदेव (काला-जी) के आसपास हरे पत्थर की खानों तथा राजनगर के पास हल्के सगमरमर की खानों से उत्पादित माल का प्रयोग भी इमारतें बनवाने में किया जाता था। अध्ययनकालीन इमारतों में जगविलास और सेरवाड़ा का गिर्जाघर बनवाने में इन्हीं पत्थरों का प्रयोग किया हुआ है।

देवारी तथा डौंकली से शस्त्र साफ करने की सापलियां, अनाज पीसने की पट्टियां (चक्की), मिर्च पीसने के सिलबट्टे के पत्थर प्राप्त होते थे। केवड़ा की नाल, राजनगर आदि स्थानों पर चूने के पत्थर की खानें विद्यमान

---

1 मेवाड़ रेजीडेन्सी। पृ. 53 श्यामलदास ने इसकी आय 3 लाख रुपया वार्षिक लिखी है (वी. वि. पृ. 108) जो कि मूल में राज्य के खालिसा क्षेत्राधीन खानों की वार्षिक आय रही थी।

2 मेवाड़ रेजीडेन्सी—उपरोक्त।

3 यहां लिखते हैं कि राणा की अरुचि के कारण काय स्थगित कर दिया गया था (यट—मेवाड़ पृ. 12) किन्तु इसका मुख्य कारण माल उत्पादन की मात्रा का लाभ नहीं होना था (वी. वि. पृ. 109), इसकी खुदाई में 15000 रुपया मेवाड़ सरकार ने खर्च किया था (मेवाड़ रेजीडेन्सी पृ. 53) 1881-82 ई. में राणा सज्जनसिंह के काल में भू-सर्वेक्षण विभाग के एक अधिकारी मि. हेकेट ने राणा को इसकी खुदाई का परामर्श दिया था, किन्तु यह योजना राज्य में अधिक पैसा नहीं होने के कारण पड़ी रही थी। अंग्रेज सरकार इस खुदाई में एक भी पैसा खर्च नहीं कर इसके लाभ को पट्टे पर प्राप्त करना चाहती थी जो राणा को मंजूर नहीं था।

थी। इनके पास ही चूना पकाने की भट्टियां[1] बनी हुई थी जिनको आधुनिक समय म भी जीर्णावस्था मे देखा जा सकता है।

खान-खनिज का मवाड राज्य क औद्योगिक जीवन मकान निर्माण जन जीवन मे आभूषणो के प्रचलन आदि म देखा जा सकता था।[2] मकान अधिकतर कच्चे तथा मिट्टी के बनाय जात रह थ। केवल उच्च वग एव आर्थिक सम्पन्न लाग ही पत्थर की खाना का लाभ प्राप्त कर सकत थे। इसका परिणाम था कि मवाड मे पत्थर उद्योग अधिक प्रभावशाली नहीं रहा था। गह प्रयोग म आने वाली पत्थर की चक्कियां, आखलिया बनान का हस्तशिल्प उद्योग अवश्य जन साधारण की आवश्यकता एव पूर्ति हतु प्रचलित था। यह उद्योग मीणा एव कालबेलिया के जीवन निर्वाह का मुख्य साधन था। मवाड म उद्योग शैथिल्य का अन्य कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा मवाड को आर्थिक सहायता नही देना मेवाड सरकार का प्रत्यधिक विकास म अरुचि रखना तथा खनिज-खपत क लिय आवश्यक स्रोता का अभाव होना था। इसीलिये मवाड प्रदेश खान खनिज की दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी खनिज उद्योग म पिछडा रहा था। ब्रिटिश सरकार की आर्थिक एकाधिकार स्थापित करने की नीति क फलत 19 वीं सदी क अन्त तक इमारती पत्थर क अतिरिक्त अ य सभी खानें ब द हो गई थी।

(औ) यातायात माग और उनका विकास

मवाड राज्य म पगडण्डी और कच्चे बीहड माग ही यातायात और आवागमन के मुख्य स्रोत थ। 18 वीं शताब्दी के पूव तक मेवाड को अन्य राज्या से जोडने वाल चार प्रमुख माग थे। इनम पहला माग अजमर माडलगढ, चित्तौड होता हुआ मन्दसौर जाता था। यह माग राज्य को मालवा, जाधपुर तथा जयपुर राज्य म सयुक्त करता था। इसी प्रकार मालवा जान क लिये एक अन्य माग चित्तौड से उदयपुर, डूगरपुर बासवाडा होते हुए रतलाम जाता था। गुजरात जाने वाले मार्गों म पहला अजमेर, चित्तौड उदयपुर डूगरपुर से अहमदाबाद तथा दूसरा बूदी से माडलगढ खमनोर गागुदा पानरवा होता हुआ ईडर राज्य जाने वाला मुख्य माग रहा था।[3]

---

1 धातु सफाई करन का कार्य 'धरिया और मिट्टी की भट्टियो स किया जाता था।
2 द्रष्टव्य—आवास निवास रहन सहन प्रकरण।
3 सो ला मा रा पृ 322-326

18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध म मराठो द्वारा भी इन्हीं सभी मार्गों का अनुसरण किया गया था।[1] 19 वीं सदी के प्रथम दो दशक तक मेवाड के प्राचीन और धार्मिक महत्त्व वाले माग मुस्लिम तथा मराठा के निरंतर होने वाले अतिक्रमणा के परिणामस्वरूप नष्टप्राय हो गय थे। किन्तु 19 वीं शताब्दी म आग्ल सरक्षण के पश्चात् मार्गों के सनिक स्वरूप ने सामाजिक एव आर्थिक यातायात का स्वरूप ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया था। 19 वी सदी के पूर्वार्द्ध तक प्रचलित मार्गों का विवरण हम कर्नल टाड तथा विभिन्न राणाओं की धार्मिक यात्राओं से प्राप्त होता है। कोटा बूंदी जाने के लिये उदयपुर से दरोली भटेवर, सेरोदा अमरपुरा मेनार ही ता मोग्रिए तथा निम्बाहेडा होते हुए भैंसरोडगढ से कोटा जाने वाला मार्ग था। इसी प्रकार उदयपुर, माह्नोली, सनवाड राश्मी, हमीरगढ, आकोला, माडलगढ काछोला जहाजपुर से बूंदी का मध्य मार्ग था।[2] उदयपुर से बूंदी के लिए भटेवर, चित्तौड, बेगू बिजोलिया तथा भीलवाडा से जहाजपुर होते हुए भी कच्चा माग जाता था।[3] मारवाड जाने के लिये पलाना, नाथद्वारा उंसरवास समीचा केलवाडा से हाथीगुडा की नाल घाना और देवलीया भीलवाडा, माडल पुर राश्मी आंबड उदयपुर में दो मार्ग विद्यमान थे।[4] बम्बई के बन्दरगाह जाने के लिये गोगुन्दा, पानरवा से ईडर राज्य का पहाडी माग भी लोगो द्वारा प्रयोग मे लिया जाता रहा था किन्तु इस मार्ग म आदिवासियो की लूट मार का खतरा अधिक था। राणाओ की धार्मिक यात्राओ म प्रयुक्त मार्गों म लगभग सभी माग ऊपर वर्णित किये गये हैं किन्तु नीमच (मालवा)

---

1 जसवत राय पचोली द्वारा रावत जगतसिंह को लिखा गया पत्र वि स 1816 (1760 ई)—व्यास सग्रह रजिस्टर न 6 पृ 5, राणा अरिसिंह द्वारा लिखा गया पत्र वि स 1820 (1763 ई)—श्यामलदास कलेक्शन क्रमाक 224 भीम विलास (ह प्र) पृ 61 64, सिलेक्शन फ्राम दी पेशवा दफ्तर जि 14 पत्र 50-51, पूना रजीडेन्सी कॉरसपो डेंस भा 18 पत्र 275, एफ सी कन्स 3 जुलाई 1806 न 6, 17 जुलाई 1806 न 1, 11, फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर भा 2 पृ 191, 196, पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ 164 212-13, 232-33

2 एनाल्स भा 3 पृ 1621-1703, व 1713-1732

3 उपरोक्त पृ 1735-1738, व 1797-1824

4 उपरोक्त भा 2 पृ 760-799, व 903-914

स मवाड का सम्बन्ध जोडने वाले प्रमुख मार्गों म निम्बाहेडा, डूगला, मेनार, भटेवर का माग प्रचलित रहा था।[1] उपरोक्त विवेचन स स्पष्ट होता है कि माग की कोई विशेष सुविधा एव स्पष्टस्थिति नही थी। एक गाँव स दूसरे गाँव म जाने के लिए छोटे-छोटे और कच्च माग थे तथा लम्बे मार्ग भी पथरीले, अव्यवस्थित और धूल-धूसरित थ[2]।

सव प्रथम पक्के और व्यवस्थित मार्गों के निर्माण का काय राणा शम्भु-सिंह के शासन काल म प्रारम्भ हुआ था। सन् 1861-65 ई मे उदयपुर स मगलवाड होते हुए निम्बाहेडा जाने वाली सडक का निर्माण किया गया। इसके एक वष पश्चात् 1866 से 1875 ई के मध्य नसीराबाद से नीमच तक का माग बनाया गया जो कि आधुनिक अजमेर खण्डवा रेल्वे लाईन का प्राचीन रूप रहा था। 1869-78 के काल मे उदयपुर से खेरवाडा होते हुए डूगरपुर जाने वाल माग तथा उदयपुर से एकलिंग जी जाने वाले चीखा की नाल के माग को नाथद्वारा तक बनाया गया था।[3]

राणा सज्जनसिंह के समय म 1864 ई के रेल्वे समझौते[4] को क्रियान्वित किया जा कर बोम्बे बडौदा एण्ड सेन्ट्रल इंडिया रेल्व कम्पनी द्वारा रल-लाईन बनाई गई। परिणामत राज्य के पूर्वी भाग म रेल यातायात प्रारम्भ हुआ किन्तु सव साधारण के लिए यह 1881 ई के पश्चात् ही खोला गया था।[5] इसी समय म उदयपुर चित्तौड रेल लाईन बनाने का सर्वेक्षण कार्य किया गया फलत 1893 ई तक राणा फतहसिंह के काल म यह लाईन चित्तौड स देबारी तक[6] बनाई गई थी। इसे 1895 ई म

---

1 वी वि पृ 1797-1800, 1802 1805, 1958, सहीवाला भा 1 पृ 73

2 एनाल्स भा 3 पृ 1673

3 मेवाड एजे सी रिपोट 1870, 1877-78 1878-79 ई के अनुसार इनके निर्माण म मेवाड सरकार द्वारा लगभग 3 लाख रुपया कल्दार (अंग्रेजी) खच किया गया था। मवाड रेजीडेन्सी पृ 58 उ ई भा 2 प 792

4 राजपूताना एजन्सी रिपाट 1864 ई न 4

5 प्रारम्भ म यह ब्रिटिश सनिक तथा ब्रिटिश भारत सरकार के माल को लान लेजान के प्रयोग म आती थी—सहीवाला भा 2 पृ 35, मेवाड रेजीडेन्सी प 57

6 उदयपुर स 8 मील पूव दक्षिण म।

यात्रियो के लिये खोल दिया गया और 1898 ई म इसे देबारी से बढा कर उदयपुर तक लाया गया।[1]

मार्गों क उपरोक्त विकास के होते हुए भी राज्य के पश्चिमी, उत्तरी तथा दक्षिणी पहाडी भागा म यातायात क लिए कोई व्यवस्थित सडक 20 वी सदी के मध्य दशक तक नही बन पाई थी। इसीलिए सडक एव रेल परिवहन क विकास का प्रभाव केवल राज्य के पूर्वी भाग तथा किंचित् मध्य भाग पर पडा था। इन मार्गों के विकास ने पूर्वी क्षेत्र के वाणिज्य-व्यापार को कुछ घटावा दिया फलत 19 वी शता दी के अन्त तक कपासन और सनवाड जसी नवीन मडियाँ बनी तो भीलवाडा, गुलाबपुरा जसी प्राचीन मडियाँ समद्धि की ओर अग्रसर होन लगी थी। रल मार्गों के निर्माण ने अकाल के समय में अन्नादि लान तथा वितरण यवस्था को बनाय जन जीवन का महत्वपूर्ण कल्याण किया था। 1899 ई के छपनियाँ काल म तो रेल लाईन मेवाड की प्राणदायी लाईन बन गई थी।[2] सडक माग के निर्माण से राज्य की अफीम तथा कपास का निर्यात बढन लगा कि तु इसस स्थानीय उद्योग एव कृषि को हानि भी हुई।[3] राज्य के बनजारे एव गाडूलिया लुहार, जिनका कि काय ही माल ढोना था, यातायात मार्गों के विकास के फलत आर्थिक क्षति लिये हुए बकार होन लग गय।[4] परिणामत इनमे चोरी और लूट की प्रवृत्ति बढन लगी थी। रा य म एक ओर दक्षिण-पश्चिम तथा उत्तरी भाग मार्गों की प्राचान स्थिति के कारण पिछडा बना रहा था तो दूसरी ओर पूर्वी भाग विकसित और समद्धि का ओर बढता चला गया था।

---

1 मवाड रजीडे सी प 57

2 उ ई भा 2 पृ 845

3 द्रष्टव्य—वाणिज्य, व्यापार एव उद्योग प्रकरण।

4 एनाल्स भा 1 पृ 168, भा 3 पृ 1751, पृथ्वीसिंह महता—हमारा राजस्थान पृ 258। आधुनिक समय म भी उदयपुर सभाग के पश्चिमी क्षत्रो मे यह लोग व्यापार वाणिज्य की परिवहन यवस्था के मुख्य साधन है। मेवाड के पूर्वी भागा मे रेल के साथ ही टाडा, गधो घोडो, ऊटों तथा बलगाडियो से परिवहन का काय लिया जाता रहा था। बैल-गाडी तीन प्रकार की थी—मढ्का नामक बलगाडी पत्थर ढान के काम मे कराची—माल ढान, व क्वानीदार या सज गाडी से यात्रा की जाती थी—गजटियर रिपोट आफ मवाड (ह प्र) पृ 149

(अ) राजधानिया व प्रशासनिक केन्द्र

मवाड क्षत्र की परिवर्तित सीमाग्रा क ग्रनुरुप क्षत्र की राजधानिया भी समयानुसार बदलती रही थी। इतिहास प्रसिद्ध दुग चित्तौड के उत्तर म 1½ मील दूर स्थित नगरी नामक स्थान शिबि जनपद की राजधानी था जिसे तत्कालीन समय मे मज्झिमिका के नाम से जाना जाता था।[1] जनपद क नष्ट होने के पश्चात् 7वी शताब्दी तक प्रामाणिक विवरणा के अभाव में इस प्रदेश की राजनीतिक अवस्था का विवरण ज्ञात नही होता है, किन्तु बप्पा रावल द्वारा शासन अधिकृत करने के समय स 13वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक तक एकलिंग, देलवाडा नागद्राह, चावा और अघाटपुर (अथवा आयड) मवाड राज्य की राजधानी और प्रशासनिक केन्द्र रहे थ।[2] 14वी शताब्दी स 15वां शती तक राजधानी के केन्द्र चित्तौड व कुम्भलगढ थे किन्तु 16वी शती के मध्य मुगल शासक अकबर द्वारा चित्तौड अधिकृत किये जाने के उपरान्त तत्कालीन राणा उदयसिह ने पीछोली नामक गाव को अपनी राजधानी बनाया जो 17वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे उदयपुर नगर के नाम से प्रसिद्ध होने लगा था।[3] राणा प्रताप (1572-1597 ई) तथा उसके पुत्र राणा अमरसिह प्रथम (1597-1620 ई) ने मवाड मुगल सघर्ष काल म गोगुन्दा व चावड नामक स्थानो पर सघर्षकालीन राजधानिया स्थापित की किन्तु राणा कर्णसिह (1620 1628 ई) के पश्चात् से मवाड राज्य के सयुक्त राजस्थान म विलय होने तक[4] उदयपुर नगर ही प्रदेश की स्थाई राजधानी रहा। वर्तमान समय में उदयपुर नगर उदयपुर सभाग का प्रमुख मुख्यालय है।

---

1 डॉ प्रभुदयाल अग्निहोत्री—पातजली कालीन भारत प 97-98

2 रावल जत्रसिह (1213-1250 ई) से समय म मेवाड की राजधानी नागद्रह (अथवा नागदा) थी परन्तु सुल्तान अल्तमश के आक्रमण मे यह नष्ट हो गई थी। अत रावल द्वारा अघाटपुर म नवीन राजधानी का निर्माण किया गया था। उसके पुत्र रावल तेजसिह के (1250-1273 ई) काल म चित्तौड के सामरिक महत्त्व को देखते हुए राजधानी को परिवर्तित कर चित्तौड ल जाया गया था।

3 सुल्तान अल्लाउद्दीन के चित्तौड आक्रमण (1302-1303 ई) के समय मवाड की राजधानी चित्तौड ही थी। राणा कुम्भा (1433-1468 ई) द्वारा कुम्भलगढ राणा सांगा (1509 1528 ई) द्वारा चित्तौड व राणा उदयसिह (1540 1572 ई) ने उदयपुर को राज्य की राजधानी बनाया था।

4 18 अप्रैल 1948 ई को राणा भूपालसिंह द्वारा मेवाड राज्य का विलय सयुक्त राजस्थान म होना स्वीकार किया था।

अध्याय 2

सामन्तशाही संगठन

यद्यपि वर्तमान समाज के बदलते हुए परिवेशों में सामन्तशाही समाज का वह स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता जो पिछले युग में दिखाई देता था फिर भी इस समाज संगठन के अपने लक्षण थे। समाजशास्त्रीय विवेचनाएँ इस संदर्भ में कुछ तथ्य प्रस्तुत करती हैं। मैक्स वैबर[1] ने अधिकृतियों के तीन प्रमुख विभाजनों (तार्किक वैधानिक परंपरागत तथा चमत्कृत) में सामंतशाही संगठन की पृष्ठभूमि में परंपरागत तथा चमत्कृत शक्तियों को स्वीकार किया है। अनुवांशिक चरित्र से अलग मैक्स वैबर ने सामन्तशाही समाज को जागीर का प्रतिरूप माना है। मैक्स वैबर का विश्वास था कि सामन्तशाही अधिकृति के दो प्रधान स्वरूप हो सकते हैं—या तो जागीरी प्रवृत्ति अथवा राजकीय वृत्ति। शेष समस्त स्वरूप अनुवांशिक लक्षणों से सम्बन्धित हैं। मैक्स वैबर की यह सम्पूर्ण विवेचना अधिकृतियों एवं शक्तियों के विवेचन के संदर्भ की है। सामन्तशाही समाज के प्रतिरूप को लाक्षणिक दृष्टि से सम्भवतः जोसफ आर स्ट्रेयर एवं कोलबोर्न[2] ने अधिक स्पष्ट करने की चेष्टा की है। लेखक द्वय के अनुसार सामन्तवाद शासन की वह व्यवस्था है जिसमें वास्तविक सम्बन्ध शासक और प्रजा अथवा राज्य और नागरिक का नहीं अपितु मालिक और मातहत का है। राजनीतिक कार्यों का किया जाना कुछ चुने हुए सीमित संख्या में व्यक्तियों के साथ व्यक्तिगत समझौते के साथ निबद्ध है। अधिकांश सामन्तशाही समाजों में विशेष रूप से प्रारम्भिक दौर में सैनिक कार्य महत्त्वपूर्ण रहे हैं और श्रेष्ठ जन की सेवा में तत्पर व्यक्तिगत सेनाएँ इस बात का सूचक हैं कि सामन्तशाही समाज स्थित है। सम्पूर्ण विकसित सामन्तशाही समाज में जागीर एवं मातहती दोनों का सम्पूर्ण विकास होता है लाक्षणिक दृष्टि से

---

1 मैक्स वैबर द थ्योरी ऑफ सोशियल एण्ड इकोनोमिक आर्गेनाईजेशन (1968) पृ 373-381

2 जोसफ आर स्ट्रेयर एवं कोलबोर्न फ्यूडलिज्म इन हिस्टरी (1956) पृ 20-30

दोना ही विवेचन साम तवादी समाज का चित्रण एव एसे रूप म प्रस्तुत करते हैं जहा सम्पूर्ण राजनीतिक यवस्था एक हाथ मे केन्द्रित हो, कुछ हाथा म बिखर जाती है पर सम्ब घ स्वामिक और मातहतो के बने रहते हैं चाहे वह जागीरो और राजा के बीच हो अथवा राजा जागीर मातहतो के बीच।

यद्यपि राजस्थान का आधुनिकतम स्वरुप सामाय जन के अधिकाधिक राजनीतिक हिस्सेदारी के साथ बदल रहा है पर आलोच्यकाल आज का व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न था। राजपूताना के राया म अधिकृति सम्बध 'सकीण परतत्र राजनीतिक सस्कृति' (Parochial subject political culture)[1] का प्रतीक थे। किसी भी राजनीतिक गतिविधि म भाग लने क अधिकार मात्र राजनीतिक अधिकृति के वशज, उनके प्रतिनिधियो अथवा उन उच्च जातीय नगरीय समूहो के यक्तियों को था जिहे राज्य ने धार्मिक अथवा प्रशासकीय कार्यों के लिए नियुक्त किया हो। टाड[2] की मा यता थी की राजस्थान का राजनीतिक सगठन निश्चित ही साम तशाही था जिसम सम्पूर्ण राजनीतिक शक्ति भूमिपतियों के एक वग के हाथो निहित थी, पर एल्फ्रेड लयाल[3] का विचार था कि टाड सभवत अट्ठारहवी शतादी के उत्तरार्द्ध म पुराने समाजों के इतिहास लेखन की अवधारणात्मक विचारो से प्रभावित था। लयाल का विचार था कि जागीरो और केन्द्रीय सत्ता का यह सगठन राजपूत जाति एव उसके गोत्र सगठना पर अधिक आश्रित था। गोत्र का प्रमुख राजा एव अय प्रमुख लोग राजा के अधिकार से शासक—यही स्वरूप था। अधिकार के सम्ब घ म कोई भी झगडा गोत्र आधार पर निबटा लिया जाता था। जे सदरलैंड[4] जो एक ब्रिटिश प्रशासक था और इस क्षत्र स परिचित था का विचार था कि राजा की इच्छाओ पर शक्तिशाला परपरागत सरदारों का निर्देशन एव नियत्रण था। इन सरदारा को राजा से अलग

---

1 ग्रेब्रियल आलमोन्ड एण्ड सिडनी वर्बा द सिविल कल्चर पोलिटिकल एटीटयूड एण्ड डेमोक्रेसी इन फाइव नेशन्स (1963)

2 एनाल्स—भा 1 पृ 133 150

3 सर अल्फ्रेड लयाल—एशियाटिक स्टडीज रिलीजियन्स एण्ड साशियल (1882) पृ 207-219

4 जे सदरलैंड स्केचेज आफ दी रिलेशन सबसिस्टिंग बिटवीन दी ब्रिटिश गवनमेन्ट इन इण्डिया एण्ड दी डिफरे ट नेटिव स्टेटस (1837)—पृ 179

प्रकार के अधिकार थे। बहुत से राज्यीय आन्तरिक संघर्ष इस बात का प्रमाण हैं।

उपर्युक्त सभी विवेचनाएँ राजस्थान मे सामन्तवादी समाज मे राजनीतिक सत्ता, अधिकार एवं सम्बन्धो की विशेष अवस्थाओं के सूचक हैं। प्रस्तुत *अध्याय मेवाड राज्य की इन्हीं अवस्थाओं का विवेचन है —*

मेवाड राज्य की स्थापना (8वी शताब्दी) काल से[1] राज्य की शक्ति पर राजपूत जाति के गुहिल शाखा और उनके रक्त बान्धव सिसोदिया शाखा के सदस्यो का अधिकार रहा था। यह अधिकारी राज्य में श्री जी कहलाते थे।[2] राणा इनकी उपाधि थी, एवं इनके आदेशों को श्रीमुख आदेश कहा जाता था।[3] अधिकारी राज्य की दैविक शक्ति का उपभोग करते हुए स्वयं को दीवाण (राज्य का प्रधान) तथा अपने इष्टदेव एकलिंग (शिव) को राज्य का अधिष्ठाता मानते थे।[4] इस प्रकार राज्य की शासन प्रणाली में धार्मिक राजनीति भी प्रभावशाली थी। समाज में राणा की आण (शपथ) सर्वोपरि तथा ईश्वर तुल्य मानी जाती थी। राज्य का काम व्यापार राणा के नाम पर चलता था। किन्तु इस व्यवस्था और प्रबन्ध को चलाने के लिये राणा द्वारा अपने सगोत्री, बान्धव, सम्बन्धी तथा कुल के लोगों से सहायता प्राप्त की जाती रही थी।[5] इसका मुख्य कारण था कि एक ही कुल एवं जाति के सदस्य होने के फलस्वरूप वे अपने शासक राणा का नेतृत्व स्वीकार करने तथा शासकीय नीतियों को प्रभावी बनाने के लिये सदैव तत्पर रहते थे। कुलीय भावना से प्रेरित राजनीतिक प्रशासकों का यह जातिवादी संगठन राज्य का प्रमुख सामन्त वर्ग था। इस वर्ग के लोग शासक प्रदत्त अथवा स्वाधिकृत क्षेत्र मे शान्ति व्यवस्था और प्रशासनिक प्रबन्ध बनाये रखने के साथ-साथ राणा को

---

1 गोपाल व्यास—पूर्व मध्यकालीन मेवाड एम ए (इति) परीक्षा हेतु प्रस्तुत शो नि पृ 15

2 वी वि पृ 76, 1225, सहीवाला भा 1 पृ 7

3 जी एन शर्मा—मेवाड एण्ड दी मुगल एम्परस पृ 161। इसके अतिरिक्त दीवाण जी आदेशातु' का प्रयोग भी किया जाता रहा था सहीवाला भा 1 पृ 9-10

4 उ ई भा 1 पृ 32 गोपीनाथ शर्मा—राज इति भा 1 पृ 502

5 एस सी दत्त—राजपूत पालीटी (दी गार्जीयन, अगस्त 22, 1931 से उद्धृत) वी वि पृ 297, 305-9, उ ई भा 1 पृ 243, 259-70

स य सहायता प्रदान करने के नतिक क्त व्या का पालन करते थे।[1] नतिक क्त व्य की यह भावना सामुदायी राजनीतिक-प्रधिकारो का राज्य-व्यवस्था क कारण जागत रहती थी। इस व्यवस्था मे शासक की राजपूत जाति म स्थिति "बराबर म प्रथम' के समान थी। शासन के प्रत्येक क्रिया-कलाप म इन साम ता का परामश आवश्यक था क्योंकि राज्य म इनकी हिस्सेदारी मानी जाती थी।[2] इन साम ता के प्रतिरिक्त राज्य समाज की धार्मिक सवाम्रो को प्रतिपादित करने वाले साम त थे जिनका काम राज्य की धर्माचरण व्यवस्थाम्रो को बनाये रखने म शासक को सहयोग देना था।[3]

16वी शताब्दी के पश्चात् मुगल साम त व्यवस्था की जागीरदारी प्रथा मेवाड की साम तशाही को प्रभावित किया।[4] फलत राणा अमरसिंह प्रथम ने भोमिया और ग्रासिया नामक जागीरदारी वर्गों का निर्माण किया था। भोम जागीर का जागीर क्षेत्र परिवर्तित नही किया जाता था एव ग्रास जागीर का जागीर क्षेत्र प्रत्येक तीन वष पश्चात् बदल दिया जाता था।[5]

---

1 भक्त प्रसाद मजूमदार —सोशियो इकोनामिक हिस्ट्री आफ नादन इण्डिया पृ 5 राम शरण शर्मा—भारतीय साम तवाद पृ 102-103

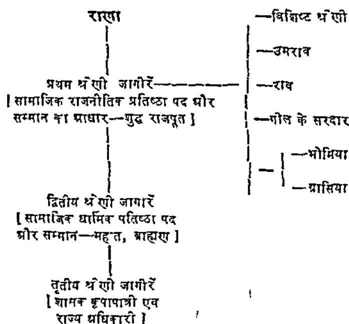
2 गापीनाथ शर्मा—राजस्थान का इतिहास भा 1 पृ 476

3 धार्मिक अनुदान प्राप्त धर्माथ जमीन भागी लोग जो कि ब्राह्मण जाति के होते थे।

4 यह काय राणा अमरसिंह प्रथम के शासनकाल (1597 1620 ई) के पश्चात् सम्पन्न हुआ था, जी एन शर्मा—मेवाड एण्ड दी मुगल एम्परस, पृ 122 123

5 यद्यपि प्रमाणाभाव म तत्कालीन साम तशाही स्थिति स्पष्ट नही होती है कि तु प्रा त में प्रचलित लौकिक अर्थों म भोम का अथ बलिदान व भूमि से है एव ग्रास का अथ खाद्याश से लिया जाता है। यदि इन अर्थो मे प्रचलित भोम का अथ प्रयुक्त किया जाय तो युद्धकालीन अपूव सेवा प्रदर्शित करने भोम जागीर तथा भाई भाग क रूप म ग्रास जागीर दी जाती रही होगी। मुण्डकटी के रूप म भोम प्रदान करन की परम्परा मारवाड राज्य के प्रमाणो से पुष्ट होती है (जी डी शर्मा—राजपूत पोलीटी पृ 126) *ग्रास नामक जागीर के साम त को काला पट्टायत भी कहा* जाता था—वी वि पृ 136, उ ई भा 1 पृ 20। वश परम्परागत भूमि को भोम कहा जाता था, जिस पर किसी प्रकार का कर नही लिया जाता था। ओझा के अनुसार बडी बडी जागीरो के रहत हुए भी सरदार भोम कायम रखन के प्रति उत्सुक रहते थ, उ ई भा 2 पृ 735

प्रथम वर्ग का जागीर का पट्टा सैनिक सेवा करते रहने तक स्थाई तौर पर प्रदान किया जाता था जबकि द्वितीय वर्ग का पट्टा सैनिक सेवा के बदले में जीविका हेतु दिया जाता था। इसके पश्चात् धर्मार्थ जागीर की परम्परा मे कोई परिवर्तन नही किया गया था। इस व्यवस्था मे समय के साथ-साथ स्वेच्छाचारी सामन्तिक प्रवृत्ति के दोष उत्पन्न होने लग थे। स्थाई जागीरदार एक ही स्थान के प्रशासन को चलाते रहने के फलत अपनी शक्ति बढा लेते थे और जब चाहे स्वामी शासक के प्रति विद्रोह कर सकते थे। इसके साथ ही जागीर हस्तांतरण ने राजस्व निर्धारण एव सग्रहण उत्तरदायित्व के साथ-साथ राजस्व अनुपात पर प्रदान की जाने वाली सैनिक सेवाओ मे वाद विवाद व सशय उत्पन्न करना भी प्रारम्भ कर दिया था। अत 18वी शती के प्रारम्भ मे राणा अमरसिंह द्वितीय द्वारा जागीर सगठन का पुनर्गठित किया गया।



आलोच्यकालीन सामन्तशाही

राणा अमरसिंह द्वितीय ने पूर्ववर्ती जागीर सगठन का सामाजिक आर्थिक स्थिति के अनुसार नवीनीकरण किया। इस स्थिति म सामाजिक-राजनीतिक

आर्थिक स्तरगत स्थापित कर तीन प्रकार के सामन्त स्तर बनाये गये। प्रथम स्तर में सामाजिक राजनीतिक प्रतिष्ठा पद और सम्मान के क्रम में शुद्ध राजपूत सामन्त सम्मिलित किये गये। द्वितीय स्तर पर सामाजिक धार्मिक प्रतिष्ठा, पद और सम्मान के क्रम में महन्त ब्राह्मण, चारण आदि अन्य जाति के सामन्त तथा तृतीय स्तर पर शासक कृपापात्री एवं राज्य अधिकारी सम्मिलित किये गये थे। यह सभी स्तर पुनः विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किये गये थे।

सामन्तों की श्रेणियां

प्रथम स्तर के जागीरदारों में पांच श्रेणियां विद्यमान रही थी—

(अ) उमराव—इस श्रेणी के सामन्त राजनीतिक सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आर्थिक स्थिति में राणा के पश्चात् स्थान रखते थे। इनमें महाराणा अरिसिंह के शासनकाल तक बड़ी सादड़ी देलवाड़ा और गोगुन्दा ठिकाने के तीन सरदार झाला, बाजोलियां ठिकाने का एक सरदार पंवार, सरदारगढ़ ठिकाने का एक डोडीया सरदार बेदला कोठारिया और पारसोली ठिकाने के तीन चौहान सरदार गोडवाड़ तथा बदनोर के दो राठौड़ सरदार थे। इन दस ठिकानों के ठिकानेदार सामन्त राणा वंशज नहीं थे। राणा वंशज सामन्तों में सात चूण्डावत दो शक्तावत क्रमशः सलुम्बर देवगढ़ बेगू, आमेट, भसरोड़गढ़ कुराबड़ कानोड़ भीण्डर एवं बान्सी के ठिकानेदार थे।[1] 18वीं शताब्दी के मध्य तक मराठा उपद्रव में गोडवाड़ जागीर जोधपुर राज्य में चली गई थी। 19वीं शताब्दी में राणा जवानसिंह एवं राणा शम्भूसिंह द्वारा आसींद तथा मेजा नामक दो ठिकाने बना कर दो चूण्डावत सरदारों को प्रथम श्रेणी की जागीरदारी में सम्मिलित किया गया था।[2] इस प्रकार आलोच्यकाल के अन्त तक इस श्रेणी में 9 चूण्डावत, 3 शक्तावत उमराव राणा के वंशज थे जबकि अन्य 9 वंशज बाह्य रहे थे। इस स्थिति के अनुसार चूण्डावत सामन्त सदैव शक्तिशाली रहे थे। इस समूह का नेता सलुम्बर ठिकाने का रावत रहा था और इसलिए सलुम्बर ठिकाने को राज्य में विशेषाधिकार प्राप्त थे। इन अधिकारों में राज्य की भांजगड़ (मुख्य परामर्शदाता) हरवल प्रमुख (मुख्य सेनाधिपति) राणा (अपराध संरक्षण)

---

1 एनाल्स भा 1 पृ 586, वी वि पृ 138-141, मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध पृ 12-13

2 मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध—उपरोक्त।

तथा उत्तराधिकार मनोनयन का मुख्य परामर्शदाता व अधिकारों के साथ राज्यादेश को प्रथम स्वीकृति प्रदान करने का अधिकार सम्मिलित था।[1] चूण्डावतों में देवगढ़ वाले ठिकानेदार को भी शरण का अधिकार प्राप्त था। शक्तावत सरदारों ने 18वीं शताब्दी मे राज्यादेशो पर सही (स्वीकृति) के अधिकार की मांग करते हुए राणा अमरसिंह द्वितीय पर राजनीतिक दबाव डाला था परिणामत राज्यादेश स्वीकृति का अधिकार सलूम्बर व चूण्डावत सरदार तथा भीण्डर के शक्तावत सरदार मे बाट दिया गया। राज्यादेश अंकित भाले का चिन्ह बनाने का अधिकार सलूम्बर को तथा उसके साथ अंकुश का चिन्ह बनाने के लिए भीण्डर को अधिकृत किया गया था।[2] सलूम्बर रावत को अपनी जागीर म जागीर का सिक्का चलाने की विशेष अनुमति परम्परा द्वारा मिली हुई थी।[3] इन उमरावो को सोलह के सरदार कहा जाता था यद्यपि इनकी सख्या सोलह स अधिक राणा की इच्छानुसार घटाई-बढाई जा सकती थी कि तु राणा अमरसिंह द्वितीय द्वारा निर्धारित दरबार म सोलह बैठक क अनुसार राज्य मत्रणा और परामर्श हेतु सोलह को ही आमन्त्रित किया जाता था।[4] यह आमन्त्रण प्रदान करना शासक की इच्छा पर निर्भर होता था।

इस श्रेणी क सामन्तो की राजनीतिक शक्ति राणा प्रतापसिंह द्वितीय के पश्चात् शासकीय दुर्बलता एव मराठा अतिक्रमणा के फलस्वरूप दिनो दिन बढ़ती गई थी। राणा भीमसिंह के शासनकाल तक चूण्डावत शक्तावत सामन्तो के पारस्परिक सघर्षों न राज्य की आर्थिक व्यवस्था को गहरी चोट पहुचाई थी। इन राजनीतिक परिस्थितियो के फलत मवाड राज्य द्वारा ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का राजनीतिक सरक्षण प्राप्त कर 1818 ई को सधि करनी पडी थी।[5]

(आ) राव—इस श्रेणी के सामन्तो को सेना सहित राजधानी मे उपस्थित रहना पडता था। फौजदार कोतवाल तथा सना के अधिकारी इस

---

1 ट्रीटीज, एगेजमेन्ट खण्ड 3 पृ 49-54, धारा 17, वी वि पृ 1919, 2057-58, उ ई भा 2 पृ 736

2 सहीवाला भा 1 पृ 13-14, उ ई भा 1 पृ 266

3 1870 ई तक पदमशाही और सलूम्बरी ढींगला चलते रहे थे। द्रष्टव्य —उद्योग वाणिज्य और व्यापार प्रकरण।

4 एनाल्स भा 1 पृ 167, वी वि पृ 138-141

5 के आर शास्त्री—इण्डियन स्टेटस, पृ 19

श्रेणी क सरदारो से ही नियुक्त किये जाते रहे थे।[1] राणा अमरसिंह द्वारा इनकी सख्या बत्तीस नियुक्त की गइ थी इसीलिये इन्हे बत्तीसा सरदार कहा जाता था। यह जागीरें भी राणा की इच्छानुसार घटाई और बढाई जा सकती थीं किन्तु अध्ययनकाल म निम्बाहेडा की जागीर टोंक राज्य में लिये जाने के पश्चात् निम्न इक्तीस जागीरें 19वीं शती के अन्त तक विद्यमान रही थी[2]—(1) हमीरगढ (2) चावड, (3) भदेसर, (4) बोहेडा, (5) भूणास, (6) पीपल्या, (7) बेमाली (8) ताणा, (9) रामपुरा, (10) खेराबाद (11) महुवा, (12) लूणदा, (13) थाणा (14) जरखाणा (धनेर्या), (15) केलवा (16) बडी रूपाहेली (17) भगवानपुरा (18) नेतावल, (19) पीलाधर, (20) बाठरडा (21) बबारी (22) सनवाड (23) करेडा (24) अमरगढ, (25) लसाणी (26) धरियावद (27) फलोचडा, (28) सग्रामगढ, (29) विजयपुर (30) बस्सी तथा (31) रूपनगर।

इन जागीरो के सरदारो म शासक वशज 9 राणावत+5 चूण्डावत+4 शक्तावत+2 सागावत तथा+1 कान्हावत[3] का योग 21 रहा था। अन्य राजपूत वशजो मे 1 झाला+2 चौहान+4 राठौड+1 पवार और+2 चावडा सरदार बत्तीसा म सम्मिलित रहे थे जिनका की योग 10 था।[4] इस स्थिति के अनुसार राजनीतिक शक्ति के रूप म राणा वशज बत्तीसा प्रमुख रहे थे। पुन इसमे चूण्डावत शाखा का अधिक प्राबल्य स्थापित था।

(इ) गोल के सरदार—यह सामन्तो की तृतीय श्रेणी राणा अमरसिंह द्वारा स्थाई सनिक सेवा प्राप्त करने के लिये बनाई गई थी। यह सामन्त राणा के लिय सर्वाधिक लाभदायक रह थे। सोलह अथवा बत्तीस सामन्तो के विद्रोह मे राणा की सैन्य शक्ति इन पर निर्भर करती थी।[5] इनकी सख्या भी घटाई बढाई जा सकती थी अथवा अच्छी सेवाओ के पुरस्कार स्वरूप उपरोक्त दोनो श्रेणियो म स किसी मे भी प्रतिष्ठित किया जा सकता था। किन्तु इस प्रकार की श्रेणी स्थानान्तर के प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। इन

---

1 एनाल्स भा 1 प 117 गहलोत—रा ई भा 1 प 343 उ ई भा 2 प 942-973

2 उपरोक्त।

3 सागावत एव कान्हावत मूलत चूण्डावत शाखा की उपशाखाएँ थी अत चूण्डावतो की सख्या 8 रही थी।

4 गहलोत—रा इ भा 1 प 343 उ ई उपरोक्त।

5 एनाल्स भा 1 पृ 167, मेवाड का राज्य प्रबन्ध प 13-14

जागीरदारो को ग्राम या ग्राम की खण्ड भूमि सेवाथ प्रदान की जाती थी, जिनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत नही कर हम वशगत स्थिति के अनुसार सख्यात्मक सरदारा को लेंगे।

इस श्रेणी में 50 सरदार चूण्डावत+38 शक्तावत+71 राणावत+7 सांगावत+13 काहावत+3 लूणावत+16 पूरावत+5 दुलावत+1 माजावत+3 भाकरोत+2 सोजावत+2 कुम्भावत सरदार शासक वशज रह थे। इन सरदारा की कुल सख्या 211 रही थी। इसके अतिरिक्त 19 चौहान+4 देवडा चौहान+2 हाडा चौहान+53 राठौड+9 सोलकी+5 झाला+4 पवार+1 पडिहार+1 यादव (जादव)+10 भाटी (यादव) सरदार अन्य राजपूत वशज थे जिनकी सख्या 108 रही थी। 18वी शताब्दी के उत्तराद्ध मे मराठा अतिक्रमण कालीन सनिक सेवाम्रो के फलस्वरूप 1 सिंधी मुसलमान को भी गोल का सरदार बनाया गया था। इस प्रकार अध्ययनकाल के अतिम समय तक गोल म सरदारा की कुल सख्या 320 थी।[1]

इन सरदारों ने सर्वाधिक सख्यात्मक शक्तिधारक चूण्डावत तथा उसकी उपशाखा के सरदार तथा इसके पश्चात् राणा जगतसिंह द्वितीय के वशज राणावत रह थे। उपरोक्त सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट करती है कि आलोच्यकाल की प्रमुख सामन्त सत्ता चूण्डावतो के अधीन रही थी। इसी का परिणाम था कि चूण्डावत राज्य अधिकार के प्रमुख उपभोक्ता भी रहे थ।[2]

(ई) भोमिया और ग्रासिया—चौथी श्रेणी के यह जागीरदार सामन्त भी राज्य सैनिक सेवा के लिय बाधित रहते थे। किन्तु इनका अन्तर इनके अधिकारा से नापा जा सकता है। भोमिया सामन्तो मे सीमान्त रक्षा करने तथा दुगम स्थानों पर राज्य व्यवस्था को बनाये रखने तथा शासक एव राज्य हेतु अपना बलिदान करने वाल सरदार सम्मिलित थे। इन जागीरदारो मे आगना पानरवा जूडा, जवास, मादडी पहाडा, थाना एव उमेरिया के प्रमुख ठिकाने थे। ग्रासीया जागीरदारो को रोटी खच के लिये भूमि प्रदान की जाती थी जो कि सेवा पूण नही करने पर अधिग्रहित की जा सकती थी। इस प्रकार एक जागीर पैतक अधिकारा से युक्त थी तो दूसरी अस्थाई जमींदारी

---

1 गहलात—रा इ भा 1 प 343-349

2 लोकोक्ति में 'पाट (राज्य) रा धणी (स्वामी) राणा अेर टाठ (राज्य प्रब घ) रा धणी चूण्डा हा' कहा जाता था।

थी ।[1] उपयु क्त साम त मराठा के अतिक्रमण काल में राज्य सुरक्षा करने मे प्रमुख कार्यकारी रहे थे ।

(उ) विशिष्ट श्रेणी—इस श्रे णी को मेवाड की लोकभाषा म भाई बाबा कहा जाता था । इन सामता म भी दो उपश्रे णिया रही थी । प्रथम उपश्रे णी में बनेडा और शाहपुरा-फूलिया ठिकाना के ठिकानेदार सामन्त तथा द्वितीय उपश्रे णी म बागोर, करजाली शिवरती, कारोई और बावलास के ठिकानेदार थ ।[2] बनेडा और शाहपुरा मुगल साम्राज्य के अ तगत स्वत त्र राज्य रहे थे । कि तु साम्रा य की शक्ति क्षीणावस्था के काल मे यहां के राजा उदयपुर शासक क भाई बा धव होने के कारण स्वेच्छापूवक मवाड रा य के सरक्षण म आ गय थे । मेवाड रा य की ओर से दोनों ठिकाना के ठिकानेदारा को विशिष्ट साम त के रूप म स्वीकार कर प्रथम स्थान बनेडा को तथा द्वितीय स्थान शाहपुरा को दिया गया था ।[3]

इन ठिकाना के अतिरिक्त डू गरपुर बासवाडा तथा देवलिया प्रतापगढ के राज्य भी मेवाड के करद साम त माने जात रहे थे ।[4] इन रा यो को प्रतिवष निश्चित खिराज एव नवीन उत्तराधिकार का टीका दस्तूर भेजना पडता था ।[5] कि तु मरहठा उपद्रव काल म यह राशि नियमित नहीं रही थी अत शक्तिशाली राणाओ द्वारा यदा कदा अपनी शक्ति द्वारा वसूल किया जाता रहा था ।[6] 1818 ई म ईस्ट इ डिया कम्पनी न राज्यो का स्वत त्र सत्ता स्वीकार करते हुए इनसे अलग मत्रा-समझौता किया गया था । तब स यह मेवाड के अतिथि सामन्ता म स्वीकार किय जाने लगे थे ।

---

1 नाथूलाल व्यास कलेक्शन—रजि न 9 प 52, जमनेश ओझा—मेवाड का इति (अ प्र) प 532

2 एनाल्स भा 1 प 167-168 गहलोत—रा इ भा 1 प 323, नारायण श्यामराव चितामबरे—बनेडा रा य का इतिहास प 273

3 बनेडा राज्य का इतिहास—उपरोक्त । बनेडा ठिकाने में 76 गाव थे जबकि शाहपुरा के राजाधिराज का 90 गावो युक्त काछोला परगना मेवाड से मिला हुआ रहा था ।

4 वी वि प 730, उ ई भा 2 प 596 684

5 उपरोक्त, टीका दस्तूर की राशि 3 लाख रुपया रही थी कि तु खिराज का विवरण प्राप्त नही होता है ।

6 उपरोक्त पृ 1717-1718 एव उपरोक्त प 684

द्वितीय एव तृतीय स्तर के सामन्तो मे राणा की मन्त्रणा परिषद् मे बैठने का अधिकार राणा की इच्छा पर निभर था। इन्हें केवल धार्मिक एव व्यवस्थापन मामलो के लिये यदा कदा आमन्त्रित किया जाता था। इसीलिए सामन्तशाही के सामाजिक-राजनीतिक स्वरूप मे केवल प्रथम स्तर धारक सामन्तो का विशेष महत्त्व रहा था। जबकि सामाजिक-आर्थिक दृष्टि स तीना ही प्रकार के स्तरो की भिन्न भिन्न आर्थिक श्रेणिया विद्यमान थी, इन श्रेणियों का विवचन भूमि-व्यवस्था के अन्तगत करेंगे। पद एव जागीर के अनुरूप दरबारी सम्मानो में इनके प्रथम द्वितीय एव तृतीय वग विद्यमान रह थ। इन वर्गों के अनुसार ही इनका सम्मान किया जाता था।

सामन्तिक पद एव स्थान —

सामन्तो के पद शासकीय सम्बोधनो एव पत्र व्यवहारो द्वारा प्रकट होते थे। शासक की 5 पीढी दूरी तक के रक्त सम्ब धी बाबा' कहे जात थे।[1] एक दो पीढी दूरी वाले 'काकाजी' तथा इसके पश्चात् ग्रासिया' कहलाने थे।[2] शासक के कुँवरो को राज कहा जाता था। इन सभी सम्बन्धियो की दरबारी बठक शासक-आसन क सामन होती थी। अपने सग सम्बन्धियो के अतिरिक्त अन्य जाति के लोगो को भी काकाजी का पद प्रदान किया जाता था।[3] इसी प्रकार परम्परागत पदो म चूण्डावत सरदारो को रावत, झाला सरदारों को राजराणा शक्तावतो को महाराज और चौहानो का राव कहा जाता था।[4] राणावत सरदारा म बागार करजाली और शिवरती के ठाकुर महाराज, बनेडा के राजा और शाहपुरा के राजाधिराज कहलाते थे।[5]

---

1 वी वि पृ 1537, सहीवाला भा 2 पृ 26

2 उपरोक्त पृ 1915 कोठारी पृ 15 सो ला मी रा पृ 85-86

3 राणा स्वरूपसिंह द्वारा मेहता रामसिंह को काकाजी' का पदेन नाजिम (माच 6 1844 ई) तथा सहीवाला अर्जुनसिंह को काकाजी पुकारा जाना इसके उदाहरण थे—वी वि पृ 1923 सहीवाला भा 2 पृ 48-50

4 एनाल्स भा 1 पृ 586, वी वि पृ 138 141, मेवाड रजीडेन्सी पृ 89 123

5 वी वि पृ 141, बनेडा के ठाकुर को राणा भूपालसिंह द्वारा वि स 1993 (1918 ई) म राजाधिराज की पदवी दी गई थी—बनेडा राज्य का इतिहास पृ 212

सामंत सरदारों की बैठक के स्थान शासक के दोनों ओर सीधी पंक्ति में बड़ी ओल तथा छोटी ओल (छोटी पंक्ति) में बटे हुए रहते थे। बड़ी ओल में सरदारों की निश्चित क्रम में बैठक रहती थी।[1] इस बायी पंक्ति की बैठक के नीचे कुंवरों की ओल होती थी।[2] प्रतिथि सामंतों का बठक स्थान राणा के समक्ष नीचे रहता था। कुंवर और भाई-बान्धव सामंतों के पीछे द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के सामंतों की बठकें हुआ करती थीं।[3] गोल के सरदारों में शासक द्वारा स्वीकृत सरदार के अतिरिक्त अन्य खड़े रहते थे।

मान सम्मान

सामंत स्तरीकरण के अनुसार प्रत्येक वर्ग के लिये इज्जत अथवा मान-सम्मान भी वर्गीकृत था। प्रथम श्रेणी में उमरावों को जुहार,[4] ताजीम,[5]

---

1 क्रमानुसार पहला स्थान—बड़ी सादड़ी दूसरा स्थान—बेदला तीसरा स्थान—कोठारिया चौथा स्थान—सलूम्बर, पांचवा स्थान—बीजोलिया छठा स्थान—देवगढ़ आदि का रहा था—पुरोहित देवनाथ डायरी (अ प्र), वी वि पृ 138-141

2 वी वि पृ 130 व 142

3 उपरोक्त पृ 142

4 जुहु>होम का अग्नि+आर>मगल, आय लोग दनिक क्रिया के प्रारम्भ म अग्नि से कुशल पूछते थे। इसी रीति के अनुसार जब कोई ताजीमी सरदार राणा से सलाम करता था तो छडीदार बुलन्द स्वर मे पुकारता था कि करे जुहार अमुक राजा ठाकुर राव रावत आदि—वी वि उपरोक्त।

5 चोबदार या डोढीदार (डंडधर) अथवा छड़ीदार जब सरदारों के विरुद (प्रशस्ति) या सलामती (जिसमें सरदारों के पूवजों द्वारा किये गये उत्सर्ग कार्यों व स्वामी भक्ति से पूर्व वंशगौरव का प्रशंसा का वर्णन होता) बोलता था तब राणा उठकर उसका स्वागत करता था और विदा होते समय अपने हाथों से इत्र लगाते थ—सर सुखदेव प्रसाद—मेवाड अण्डर महाराणा भूपालसिंह पृ 26, शोध पत्रिका पाट 2 न 1, सितम्बर 1959, पृ 65

बांहपसाव [1] सोना, मांझा [2] बीडा[3] के साधारण सम्मान प्राप्त थे। राजपूत सामन्तों के अतिरिक्त अन्य द्विज जाति के लोगों का भी राणा द्वारा प्रथम श्रेणी के सामन्त नहीं होते हुए भी प्रथम श्रेणी के सम्मान प्रदान किये जाते थे।[4] इसके अतिरिक्त कई विशेष एवं विशिष्ट श्रेणी के सम्मान महत्वपूर्ण राजनीतिक-धार्मिक सेवा अथवा राज्य-कृपा स्वरूप राणाओं द्वारा समय समय पर प्रदान किये जाते थे उदाहरणार्थ—बडी सादडी के राजराणा को सवारी में छत्र और चँवर रखने का अधिकार तथा बनेडा राजा हम्मीरसिंह के काल में राणा भीमसिंह द्वारा नालकी रखने का सम्मान, राणा अरिसिंह द्वारा अब्दुल रहीम बेग को बडी पोल तक नक्कारे की सवारी के साथ आने का सम्मान दिया गया था।[5]

द्वितीय श्रेणी के सरदारों को भी जुहार, ताजीम, सोना अथवा चांदी को पैरों में पहिनने का मान, मांझा और बीडा के सम्मान[6] और तृतीय श्रेणी को केवल बडी ओल में बैठक तथा पान के बीड़े की इज्जत दी जाती थी।[7] विशिष्ट सैन्य सेवा प्रदर्शित करने वाले सामन्तों का अमर बलेणा

---

1 बांहपसाव का अर्थ छाती से लगाना या गले मिलन से है।

2 मांझा पगडी में लगाने का कीमती डोरा था। यह रुपहरी और सुनहरी दो प्रकार का होता था।

3 बीडे से तात्पर्य पान से है जो राणा द्वारा स्वयं हाथ से दिया जाता था, इसमें भी प्रथम द्वितीय क्रम रहता था—बनेडा राज्य का इतिहास, पृ 152

4 वी वि पृ 2144 सहीवाला भा 2 पृ 43 कोठारी पृ 15-16 211

5 राजा हमीरसिंह द्वारा कुँवर भीमसिंह को लिखा पर्वाना—ज्येष्ठ वि स 1855 (1798 ई), बनेडा फोट आर्काइव्ज पुरोहित देवनाथ की डायरी, एनाल्स भा 1 पृ 233 उ ई भा 1 पृ 376, बनेडा राज्य का इतिहास पृ 152

6 जिम जुहार ताजीम, पाय ल्गर हिम पटके।
पूरण बांह पसाव खत्ता अदवा मन खटके॥
जाहर छडी जेलेव, छाप कागस बड छापण।
मांझो पाग मझार, धर बीडो जस थापण॥
—मरमुरजाद कवित्त, कोठारी—पृ 211

7 वी वि पृ 130 एवं 142 उ ई भा 1 पृ 22

घोडा[1] एव सोन का छडी और घोटा रखने का मान दिया जाता था।

इसी प्रकार राज्य क प्रधान को भी प्रथम श्रेणी के सम्मान स्वरूप साधारणत सोने की दवात पट्टा बही गुनहरा पट्ट का मगा मोतियो की कठो, सिरपच, मोती चोकडा, हाथी, स्वण पालकी सहित अमर बलणा सान चांदी की छडी घोटे, पावा में सान क तोडे नाव म बठने की छतरी क मोडे, पीछ की बठक आदि प्रदान किये जाते रहे थ।[2]

धर्माय जागार के जागीरदारो म प्रथम श्रेणी क पुजारी, महत आदि को राणा के सामन गद्दी पर बठने का सम्मान दिया जाता था। राणा इनके सम्मुख दोवटी (एक प्रकार का घास) पर बठने स पूव दह डहोत (दण्डवत प्रणाम) करके भेंट देता था। राणा की उपस्थिति म भी इस श्रेणी को चवर का सम्मान प्रदान किया हुआ था। द्वितीय श्रेणी के पुजारियो को बठने के लिये दरबार म बानात का आसन मिलता था एव राणा द्वारा उन्ह ताजीम दी जाती थी। ततीय श्रेणी वाले राणा को आशीर्वाद देकर फश पर बैठते थ। इसी प्रकार राज्य अधीनस्थ उच्च सेवादारो व इस्तमरारदारो म भी प्रथम श्रेणी वालो को पैरो म सुवर्णाभूषण, मांझा, छडी आदि द्वितीय श्रेणी को केवल ताजीम और छडी तथा तृतीय श्रेणी को दरबार मे बैठक तथा राणा के हाथ से पान के बीडे का सम्मान दिया जाता था।[3]

सामन्त विरुद

दरबार म प्रवेश करने क पूव प्रत्येक व्यक्ति को डोढीदार म स्वाकृति लनी होती थी। डोढीदार व्यक्ति की श्रेणी तथा उसकी पोशाक आदि का जाच करन के पश्चात् प्रवेशोच्छ व्यक्ति की ओर स दरबार के दरोगा को उस व्यक्ति क प्रवेश के लिय निवेदन करता था। प्रवश स्वीकृति क रूप म पान का बीडा दिया जाता था। दरबार म प्रवेश करते समय श्रेणी एव पद के अनुसार चोबदार सलामती (जुहार) बोलता था, उदाहरणाथ— महाराजा सलामत रावत/राजा/राव सिंग जा को मुजरो लीजो।'

1 अमर बलणा घोडा देने का अथ था कि प्रदत्त घोडे की मत्यु के पश्चात् दूसरा घोडा और उसके पश्चात् तीसरा दिया जाता था उ ई भा 2 पृ 712
2 कोठारी कलेक्शन—प्रधानगी मुरजाद के कागजात, कोठारी—प 15
3 वी वि पृ 141 142

तत्पश्चात् सामन्तो के चारण उनके विरद बोलते थे। यह विरुद प्रत्येक वंश और पद के लिये अलग-अलग रहे थे।[1] उदाहरणार्थ—

(अ) चूण्डावतो के—रावतां पाट रावत दस सहस मवाड रा भड खेमड

(आ) शक्तावतो के—दूना दातार, चौगुना जुभार, खुरसान मुल्तान रो आगल

(इ) झालो के—छोगाला छत्र, पयार रा पातशा

(ई) चौहानो के—साभरी नरेश, पूरब खण्ड रा छत्र

(उ) राठोडो के—नर समन्द, शासन समन्द, हस्त बारीस, करोड बारीस

(ए) पवारो के—पैंतीस साख रा सगार

(ऐ) भाटी और सोलकियो के—मध रा छत्र, मध रा पातशा और सरनायन साधर, चानक राई

(ओ) राणावतो व राणा बाघवो के—सरनायन साधर, सासन समन्द, हस्त बारीस, करोड बारीस

(औ) पचोली, कायस्थ जो कि दीवान इत्यादि रहे थे या होते थे—वीर गद्दी रखपान

(अं) मेहता कोठारी तथा अन्य महाजन वैश्य (जो कि मेवाड राज्य के उच्चाधिकारी होते थे)—राजभर समरथ आदि

उपरोक्त विरुदो से उनके यश प्रशस्तिगान के साथ साथ दरबार में जाते-जाते उसकी श्रेणी एवं पद की स्थिति शासक को स्पष्ट हो जाती थी। सामन्त द्वारा शासक के सम्मुख पहुचने पर झुक झुक कर खम्मा, खम्मागणी बोलने के बाद अपना स्थान ग्रहण करता था। विभिन्न जातियो द्वारा राणा को विभिन्न रूपो से सम्बोधित किया जाता था। राजपूत लोग उन्हे अन्नदाता कहते थे ब्राह्मण गऊ प्रतिपालक, तो महाजन वैश्य हुजूर कहते थे। इसी क्रम में राजकीय चारणो द्वारा राणा की वीरुदावली दो प्रकार की बोलते थे—

(अ) राणा की व्यस्तता के समय में दो पक्ति का वीरुद— 'हिन्दुस्तान रा छत्र हिन्दुआ रा सूरज महाराणा के पुत्र महाराणा अन्नदाता पृथ्वाराज रा छत्र कायम

तथा (ब) कलकिया राय केदार, पापिया राय प्रयाग। हथियारा राय वाराणसी, मधावन राय राजान गगा॥ सुरताण ग्रहण मोचण, सुरताण

---

1 एनाल्स भा 1 पृ 271 एव 284, शोध पत्रिका (सित 1959) पृ 65 68

मान मन्न । सुरताण सरणाई साधार, सुरताण दल जैतवार ॥ हिन्दुम रा दिनेस, एकलिंग रा अवतार पृथ्वीनाथ री छत्र कायम ।

प्रथम श्रेणी के सरदारों से वार्तालाप के समय राणा हाथ जोड़कर बात करते थे उसी प्रकार सरदार सामन्त भी राणा से हाथ जोड़कर बात करते थे । ताजीमी सामन्त की नजर (भेंट) राणा खड़े होकर स्वयं लेते थे, जबकि अन्य की नजरें दरबार का दरोगा राणा की स्वीकृति से लेता था ।[1] बनेड़ा एवं शाहपुरा के सामन्तों के दरबार में आने के पूर्व राणा इन्हें लेने के लिये क्रमशः चम्पाबाग तथा हजारेश्वर के मन्दिर तक जाता था । वहां आगन्तुक सामन्तों द्वारा राणा को एक स्वर्ण मुहर एवं पांच रुपया "नजर" तथा पांच रुपया "न्यौछावर" किया जाता था । सामन्तों के साथ यदि कुंवर होते तो वह भी 'नजर' करते थे किन्तु राणा द्वारा उसमें अपनी ओर से दुगना मिला कर कुंवरों को लौटा दिया जाता था ।[2] तत्पश्चात् वाहनसाव कर औपचारिकताओं का निर्वाह करते थे । दूसरे दिन सामन्त अपनी हवेलियों से अपने-अपने पद श्रेणी तथा प्राप्त मान-सम्मानों के अनुसार सवारी के साथ महल में जाते थे, जहां उपरोक्त दरबारी प्रविष्टियों की औपचारिकता के बाद दरबार में प्रवेश कर अपना स्थान ग्रहण करते थे ।[3] दोनों सामन्त जब तक उदयपुर में रहते थे तब तक उनकी जागीर का घड़ी घंटा बजाने का अधिकार उन्हें प्रदान किया हुआ था ।[4]

मर्यादाएँ और कर्तव्य

सामन्तों के मान सम्मानों से उनकी सामाजिक राजनीतिक प्रतिष्ठा और प्रभाव दिखाई देता था । किन्तु इसके साथ उन्हें कई राजनीतिक आर्थिक मर्यादाओं का निर्वाह करना पड़ता था । इन मर्यादाओं में शासक द्वारा प्रेषित निमंत्रण लेजाने वाले अधिकारियों एवं सेवकों का सामन्त द्वारा सत्कार करना तथा उन्हें विदाई पर इनाम और सिरोपाव देना, सामन्त द्वारा शादी विवाह का राणा से परामर्श लेना उनको घर पर अतिथि करना, शासकागमन पर उनके सम्पूर्ण खर्च का निर्वाह करना आदि सामान्य

---

1 शोध पत्रिका—उपरोक्त ।

2 पुरोहित देवनाथ डायरी बनेड़ा राज्य का इतिहास पृ 273-274

3 उपरोक्त, शाहपुरा राज्य की ख्यात (अ प्र) खण्ड 2 पृ 40-41

4 शाहपुरा राज्य की ख्यात—उपरोक्त पृ 40, बनेड़ा राज्य का इतिहास —उपरोक्त पृ 275

मर्यादाएँ रही थी।[1] इनके अतिरिक्त अन्य सामन्तिक मर्यादाओं मे नजराना नेग तथा मृत की परम्परा का पालन करना मुख्य था।[2]

(क) नजराना—यह परम्परा जहा राणा की शक्ति का प्रतीक रही थी वहा सामन्तों की राजभक्ति का परिचय थी।[3] एक प्रकार स राणा और सामन्तों के सामाजिक आर्थिक सम्बन्धो को बनाय रखन मे यह प्रक्रिया तत्कालीन सामन्तशाही का मुख्याधार रही थी। सामन्त की मृत्यु के पश्चात् नवीन उत्तराधिकार की पुष्टि हेतु नवीन सामन्त द्वारा राणा को नजराना देना पडता था।[4] नजराना दो प्रकार से दिया जाता था—कैद नजराना तथा तलवार बधाई नजराना। कैद नजराना देने वाले सामन्त के उत्तराधिकार की पुष्टि के पूव उसकी भोम (पैतक) जागीर को छोड कर शेष जागीर पर राज्य का प्रत्यक्ष अधिकार हो जाता था। इस प्रथा को जब्ती' कहा जाता था।[5] शोक-निवृत्ति के पश्चात् नवीन सामन्त, राणा के सम्मुख उपस्थित होकर अपनी जागीर की एक वष की आय जिसे कि कैद के रुपय कहा जाता था, राणा को भेंट करता था।[6] तब राणा आम दरबार म अमर बलेणा घोडा, सिरोपाव दुशाला और अन्य बहुमूल्य वस्तुए प्रदान कर मान-सम्मान के साथ उसे जागीर का अधिकार प्रदान कर सामन्त की कमर मे एक तलवार बाधता था। इस प्रथा को खड्ग बधी या तलवार-बधी कहत थे।[7] इस प्रक्रिया के पश्चात् जागीर से जब्ती समाप्त कर दी जाती थी।

---

1 वी वि पृ 1805, 1943-44, 2109 2112, बनडा राज्य का इतिहास प 162, 273, कोठारी—पृ 15-16 20 62

2 नेग का अथ परम्पराई 'कर' से था जो कि सामाजिक कार्यों पर लिया जाता था और नृत से तात्पय अधिकारिक निमन्त्रण एव उसके उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने से रहा था। विस्तत द्रष्टव्य—ब रि पट्टा बहिया (18 19वी शती) बस्ता 1, 2 मेहता स क —फाईल 146-150 260 61 बस्ता 7 15, नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 9

3 एनाल्स भा 1 प 184

4 उपरोक्त इण्डियन कल्चर खण्ड 13 न 2 पृ 76

5 उपरोक्त—प 185

6 उपरोक्त—पृ 184, ब रि बही कद नजराना वि स 1950 1963 (1893-1906 ई) बस्ता 6

7 एनाल्स भा 1 पृ 185 देवनाथ पुरोहित डायरी ब रि बही कैद-नजराना—उपरोक्त। बनडा राज्य का इतिहास प 276

बनेडा, शाहपुरा सलूम्बर देवगढ ग्रामेट गोगुन्दा तलवार बधाई नजराना ग्रौर शेष कैद नजराना देते थे। बनेडा एव सलुम्बर को इस परम्परा म विशिष्ट छूट प्राप्त रही थी। बनेडा के सामन्त के लिये राणा द्वारा पूव म ही तलवार भेज दा जाती थी तत्पश्चात् सामन्त राजधानी मे पहुचकर नजराना देता था।[1] शाहपुरा के राजा की तलवार बधाई एक स्वतन्त्र राज्य होने क कारण मुगल-सम्राट तथा बाद म ब्रिटिश-भारत सरकार द्वारा होती थी, ग्रत काछोला जागीर के सामन्त की धति के ग्रनुसार वह इसका नजराना भेज देता था ग्रौर कभी भी उपस्थित हो पगडी बधाई की प्रथा का निर्वाह कर लेता था।[2] सलुम्बर रावत नजरान से मुक्त था। उसे लेने के लिय राणा ग्रथवा राजकुमार को सलूम्बर जागीर म जाना पडता था जहा खडग बधी का दस्तूर करने के पश्चात् उसे राजधानी म लकर ग्राता था।[3] नजराना की राशि का प्रतिशत सभी सामन्तो पर 18वीं शती तक निश्चित नहीं था किन्तु 1854 ई म शासक सामन्त समभौते के पश्चात् एक वष की ग्राय के स्थान पर जागीर ग्राय का 3/4 भाग निश्चित कर दिया था। जिन सामन्तों से कद नही ली जाती थी उनसे 80 रुपया प्रति हजार वार्षिक ग्राय लिया जाना प्रारम्भ किया गया था।[4]

(ख) ग्रार्थिक सहायता—यह परम्परा भी सामन्त मर्यादाग्रा ग्रौर ग्रग्रज मे प्रति सामाजिक ग्रार्थिक सम्ब धो की द्योतक रही थी। इन सम्ब धो म प्रजा द्वारा प्रदत्त ग्रार्थिक सहायता[5] म स्वामी भक्ति की भावना[6] निहित रहती थी। राणा के राज्यारोहण पर सामन्ता द्वारा उपहार राणा ग्रथवा उसके सम्बन्धियो क विवाह पर सामन्त ग्रौर प्रजा की भेंट जागीरदार की तलवार-बन्दी पर प्रजा द्वारा नेग चढाना ग्रादि सामाजिक कतव्य रहे हैं।[7]

---

1 बनडा राज्य का इतिहास—उपरोक्त।
2 गहलोत—राजपूताने का इतिहास प 324 25
3 बी वि पृ 2001-2006 2075, उ ई भा 2 प 793
4 ट्रीटीज एगेजमेन्ट, खण्ड 3 प 30 ब रि नम्बर बहा वि स 1901 बस्ता 1 बनडा राज्य का इतिहास प 159
5 एनाल्स भा 1 प 187-188 इंडियन कल्चर—उपरोक्त प 77
6 इंडियन कल्चर—उपरोक्त।
7 प्रजा भी स्वामी भक्ति की भावना से प्रेरित होकर इन कतव्यों का पालन प्रसन्नता पूवक करती थी। कन्या विवाह म धार्मिक यात्रा मे ग्रार्थिक सहायता करना परमाथ का काय माना जाता था (एनाल्स भा 1 पृ 187-188) ग्राधुनिक समय मे भी उदयपुर सभाग म कन्या विवाह ग्रौर धार्मिक यात्राग्रो पर जाने वाले स्वजनो का ग्रार्थिक विनिमय देखा जा सकता है।

दुःख सुख में एक दूसरे के भागीदार बने रहने की सामुदायिक भावना के फलस्वरूप राणा द्वारा जागीरदार सामन्तों की, जागीरदारों द्वारा राणा की प्रजा द्वारा राणा एवं सामन्तों की तथा सामन्तों द्वारा प्रजा की पारस्परिक आर्थिक सहायता करना सामन्तशाही जीवन के सामाजिक-आर्थिक आदर्शों का स्वरूप निश्चित करता था। किन्तु मराठा अतिक्रमण काल में सामन्त-आदर्श का यह प्रतिदर्शन धूमिल होने लगा था। सामन्त और प्रजा के नैतिक कर्तव्यों पर अधिकारिक शोषण की भावना प्रारम्भ हो गई थी। परिणामतः यह आर्थिक सहायता शक्ति द्वारा अर्जित की जाने वाली लागत बन गई थी। 19 वीं शताब्दी में विभिन्न लागतों का नियमन कर राणा के राज्यारोहण, उसके व उसके उत्तराधिकारी के प्रथम विवाह पर प्रथम श्रेणी के सामन्तों से 500 रुपया तथा 2 घोड़े तथा अन्य श्रेणी के सामन्तों से उनकी आय का 2% लिया जाना प्रारम्भ किया गया था।[1] इसी प्रकार राणा की बहिन-बेटियों के विवाह पर प्रति रुपया आय पर 2 आना 2 पैसे तथा राणा की तीर्थ यात्रा पर सामन्तों की कुल आय का 8% या प्रति रुपया 1 आना 1 पैसा नेग निश्चित किया गया था।[2]

(ग) जागीर प्रथा—मेवाड़ राज्य में सेवा अथवा वतन के स्थान पर भूमि प्रदान करने का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा था। प्रासाद निर्माता चित्रकार चिकित्सक, दूत अधिकारी मंत्री एवं सामन्त सभी वेतन के स्थान पर भूमि प्राप्त करना सम्मान समझते थे।[3] यह भूमि अहिता सामन्त अथवा अन्य सरदार की जागीर कहलाती थी। सामन्तों को राज्य की भूमि का जो भाग दिया जाता था उसके बदले में उनको देश रक्षार्थ शत्रुओं से युद्ध लड़ना पड़ता था।[4] इसके साथ ही अपने क्षेत्र में शांति और व्यवस्थाएँ बनाये रखने के अतिरिक्त शासक के आमन्त्रण पर राजधानी में उपस्थित होकर व्यक्तिगत सेवा करनी पड़ती थी।[5] यदि सामन्त प्रदत्त जागीर के प्रति कर्त्तव्यों के पालन करने में असमर्थ हो जाते अथवा राजद्रोह द्वारा देश और स्वामीभक्ति के लौकिक आदर्श के विरोध में कार्य करने लग जाते तो राणा

---

1 बही रि जमा बहिया (19 वीं शताब्दी), बस्ता 4 9 16 ट्रीटीज, ऐंगेजमेन्ट खण्ड 3 पृ 32
2 उपरोक्त।
3 एनाल्स भा 1 पृ 165-166
4 उपरोक्त पृ 166
5 उपरोक्त पृ 172-173

का अधिकार होता था कि एसे कर्त्तव्यच्युत भ्रष्ट सामन्तों से उनकी जागीर छीन लें।[1] मराठा अतिक्रमण काल में इस व्यवस्था के अनियमन ने सामन्त उपद्रवों को बढ़ावा दिया था किन्तु कोई भी जागीर छीनी नहीं गई थी। परिणामतः 19 वीं शताब्दी के शान्तिकाल में ब्रिटिश संरक्षण के पश्चात् इस व्यवस्था को व्यवस्थापन यथावत किये जाने का प्रयत्न निरन्तर चलता रहा। गलूण्डर जागीरदार सामन्त के अतिरिक्त आलोच्यकाल के अन्तिम समय तक सभी सामन्त राज्य नियमन और स्वामीभक्त हो गये थे।

(घ) राज्य मन्त्रणा—प्रत्येक सामन्त के लिए अपने स्वामी राणा को परामर्श देने अथवा लेने के कर्त्तव्य का पालन करना आवश्यक रहा था।[2] राज्य में किसी भी प्रकार के गम्भीर सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विषयों पर राणा द्वारा सामन्तों को परामर्श के लिये बुलाया जाता था। इनके परामर्श के बगैर अथवा निर्णयों के विरुद्ध राणा को कोई भी कार्य-सम्पादन का अधिकार नहीं था। इसी प्रकार बगैर राणा की सम्मति और आज्ञा के सामन्त भी स्वतन्त्र नहीं थे।[3] इस प्रकार पारस्परिक मन्त्रणा की व्यवस्था मेवाड़ सामन्तशाही की प्रमुख विशेषता रही थी। इस व्यवस्था का परिपालन सामन्त क्षेत्राधीन उप सामन्तों एवं जागीर प्रजा के मध्य भी किया जाता था।[4] इसी व्यवस्था का परिणाम था कि कोई भी सामन्त राणा और अपने उप सामन्तों के परामर्श और स्वीकृति के बगैर जागीर का हस्तान्तरण नहीं कर सकता था।[5] धर्म के निमित्त कुछ बातों में यह व्यवस्था लागू नहीं होती थी।[6] कोई भी सामन्त अपनी जागीर से धार्मिक अनुदान देने में तथा भूम (पतक) अधिकार की भूमि से भाई बांट का हिस्सा देने में परामर्श का उत्तरदायी नहीं था।[7] इसका प्रतिफल शनैः शनैः यह हुआ कि

---

1 एनाल्स भा 1 पृ 166 एवं 174
2 उपरोक्त पृ 172
3 उपरोक्त।
4 उपरोक्त।
5 एनाल्स भा 1 पृ 186 बनेड़ा राज्य का इतिहास पृ 157
6 उपरोक्त।
7 उपरोक्त पृ 201, मर्यादा के अनुसार सामन्त अपने छोटे भाई को 60 हजार से 80 हजार की आय पर 3 से 5 हजार तक का भाई भाग देता था। धार्मिक अनुदान हेतु द्रष्टव्य—बनेड़ा राज्य का इतिहास पृ 83 108 131 188 आदि।

सामंतिक-जागीर में सामन्त शक्ति का प्रभाव बढ़ने के साथ साथ जागीर विकेन्द्रीकरण ने राज्य और जागीर के छोटे छोटे टुकड़े बनाना प्रारम्भ कर दिया और इसी कारण 19 वीं शताब्दी के अंत तक जागीरों में भी असंख्य भूम बन गई थी जिन्हें आर्थिक संकट के समय बंधक रखा जाने लगा था।[1]

पुत्रहीन सामन्त के उत्तराधिकार के निर्णय[2] का उल्लेख परिवार, विवाह एवं प्रथा के प्रकरण में किया गया है। इसके लिये सामाजिक-राजनीतिक पुष्टिकरण कराना आवश्यक होता था। गोद लिया गया पुत्र भी औरस पुत्र जैसे अधिकारों का उपभोग करता था। अल्पवयस्क सामन्त की जागीर का प्रबन्ध करना राणा का कर्त्तव्य रहता था।[3] यद्यपि ऐसे सामन्त का संरक्षक उसकी माता को माना जाता था किन्तु माता के स्थान पर अन्य को संरक्षण प्रदान किये जाने का कर्नल टाड का उल्लेख आलोच्यकाल में प्रमाणित नहीं होता है।[4]

प्रत्येक सामन्त को वैवाहिक कार्यों के सम्बन्ध में राणा के साथ मंत्रणा करना आवश्यक था। यह परम्परा राणा के प्रति सामंतिक शिष्टता सद्भावना का परिचय थी।[5] यह परामर्श इसलिये भी आवश्यक था कि राणा का वंश शुद्धता की दृष्टि में सर्वोच्च था और वह अपने सामन्तों की रक्तशुद्धता को महत्त्व देता था। अतः जातिगत वैवाहिक सम्बन्धों में रक्त शुद्धता का निर्णय राणा द्वारा किया जाता था।[6] किन्तु 19 वीं शताब्दी में इसका स्वरूप शासकीय नियंत्रण में प्रतिस्थापित होने लग गया था।[7] इस परामर्श पर राणा की स्वीकृति होने के पश्चात् सामन्त द्वारा सम्मान में मूल्यवान वस्तुएं भेंट में दी जाती थीं।[8]

---

1 एनाल्स—उपरोक्त सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महकमा खास भा 1 पृ 247 मेवाड़ का राज्य प्रबंध प 63

2 एनाल्स—उपरोक्त पृ 187

3 उपरोक्त पृ 188-189

4 उपरोक्त।

5 उपरोक्त पृ 190

6 द्रष्टव्य—जाति एवं व्यवसाय प्रकरण।

7 „ —परिवार, विवाह एवं प्रथाएं प्रकरण।

8 एनाल्स भा 1 पृ 190 उदयपुर संभाग में यह प्रथा सामाजिक दायरों में आज भी प्रचलित है कि घर के मुखिया का परामर्श प्रत्येक स्थिति में लेना पड़ता है।

(ड) सनिक काय—18 वी शती के उत्तराद्ध म सामन्तो की तीन श्रेणियो की ग्रार्थिक स्थिति क्रमानुसार—प्रथम श्रेणी के सामन्त को प्रदत्त जागीर की वार्षिक ग्राय 50 हजार रुपये स 1 लाख रुपया द्वितीय श्रेणी क सामन्त को प्रदत्त जागीर का वार्षिक ग्राय 5 हजार से 50 हजार रुपया तथा ततीय श्रेणी के सामन्त को प्रदत्त जागीर की वार्षिक ग्राय 5 हजार रुपया रही थी।[1] इस जागीर घृति क सेवाय प्रत्येक सामन्त को राणा की सवा मे एक हजार रुपया वार्षिक ग्राय पर कम से कम दो व साधारणत तीन सनिक सवारो को रखना पडता था।[2] 19 वी शताब्दी म सामन्तो की सनिक ग्रावश्यकताग्रो का महत्व नही रह गया था।[3] ग्रत ग्रान्तरिक व्यवस्था बनाय रखन के लिय सामन्तो का सैनिक सेवा ग्राधी कर दी गई था।[4] सैनिक सेवा का यह मापदण्ड रेख के ग्राधार पर ग्राधारित रहा था। मेवाड राज्य म रेख का ग्रभिप्राय जागीर की वार्षिक ग्राय पर राज्य निर्धारित सैन्य शुल्क रहा था।[5] यह रेख प्रत्यक राणा द्वारा निर्धारित की जाती रही थी। भीमसिंह कालीन भीमसीरेख के ग्रभिलखो स मराठा ग्रतिक्रमण से उत्पन्न ग्रव्यवस्था का पता लगता है जिसके ग्रनुसार कही गाव की ग्राय से रेख ग्रधिक थी तो कहीं रेख से ग्रधिक गाव की ग्राय उल्लखित की गई है।[6] इसी कारण 1850 ई तक राणा ग्रौर सामन्ता के

---

1 एनाल्स, भा 1 पृ 167

2 उपरोक्त पृ 173 एचिसन ने दो सवार तथा चार पदल लिखा है जो कि 19 वी शती की परम्परा रही थी—ट्रीटीज, एँगेजमन्ट, खण्ड 3 पृ 20, 28 30

3 1818 ई की ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा मेवाड को राजनतिक सरक्षण प्रदान करने के पश्चात् बाह्य ग्राक्रमणो का भय नहीं रहा था।

4 पा क 11 नवम्बर 1854 ई न 813 ट्रीटीज एँगेजमन्ट खण्ड 3, पृ 25-27

5 रेख की स्थिति पर डॉ जी डी शर्मा एव डा जी एन शर्मा म मतान्तर है। राजपूत पोलीटी पृ 84 87 सा ला मी रा, पृ 36। डॉ कालूराम शर्मा इसे गाव का ग्रनुमानित वार्षिक ग्राय बतलाते हैं (रा सा ग्रा जी पृ 82) किन्तु बक्शीखाना रिकाड म उपलब्ध पट्टा बहियाँ इस स्थिति स भिन्न मत प्रस्तुत करता हैं।

6 क रि जागीर पट्टा खतूणी बही वि स 1876 (1819 ई), श्रावण वदि 1, बस्ता 10 पा क 11 नवम्बर 1854, न 813

मध्य सैन्य सेवा एव चाकरी का विवाद चलता रहा था। अन्तत 1850 ई म महाराणा स्वरूपसिंह न सभा सामन्तो का, एकलिंग की पवित्र सौगध की प्रार्थना करत हुए, अपने अपन जागीर-गाँवो की वास्तविक आय को उल्लिखित करन के लिए कहा था।[1] तब से प्रत्यक जागीर पट्टा म गाव उपज (पदावार) राशि पिछले वष की उपज राशि तथा उस पर प्रति रुपया 5 आना का छटूद राशि तथा प्रति एक हजार रुपया आय पर दो सवार चार पदल क स्थान पर एक सवार और दो पैदल सैनिक सेवा का उल्लेख किया जाने लगा था।[2] इन सैनिको के साथ साम त को निर्देशानुसार तीन मास छ मास नौ मास तथा बारह मास की चाकरी के रूप म राणा क महलो म सवा करनी पडती थी।[3]

सनिक सेवा क रूप मे राष्ट्र प्रेम एव स्वामिभक्ति से प्रात प्रोत परम्परा का पतन ब्रिटिश सरक्षण काल मे हो गया था। जो साम त 19 वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक शासक के सहयोगी और अनुशासक थे उत्तरार्द्ध मे छटूद एव खिराज नीति की आर्थिक व्यवस्थाओ के परिणामत नौकर की स्थिति मे प्रतिस्थापित कर दिये गए थे। यही कारण था कि 19वी शताब्दी के शाति-काल म साम तशाही जीवन विद्रोह से पूण प्राचीन परम्पराओ का पुन प्रचलित करना चाहता था। इस जीवन का नतत्व आलोच्यकाल के अन्तिम समय तक, सलुम्बर क साम त करत रह थ।

राज्य नियत्रण

साम ता की स्वच्छाचारी प्रवत्ति क दमन हेतु परम्परागत सामन्त-नियत्रण व्यवस्था आलोच्यकाल म विद्यमान रही थी। इस नियत्रण म रोजाना, धौंस तथा दस्तक की प्रक्रियाए महत्त्वपूण रही थी।

(क) रोजाना—साम ता क अपराधी होन पर राणा की आज्ञा का

---

1 ब रि खतूणा जागीर पट्टा री बस्ता 10

2 ब रि पट्टा परवाना रा बहिडा बस्ता 3 वी वि पृ 1940-41

3 ट्रीटीज ऐंगजमन्ट खण्ड 3, पृ 20, 28 व 30, राणा शम्भूसिंह कालीन (1861-1874 ई) फहरिस्त सरदारा री चाकरी, बरशी खाना रिकाड बस्ता 10 इसके अनुसार सलूम्बर बेदला सरदारगढ तथा भाई ब ध साम त 12 मास की चाकरी करते थे अत इनस छटूद अथवा खिराज नही लिया जाता था। 9 तथा 6 मास मे 5 साम त थ शेप सभा तीन मास मे रहत थे।

का भाय करती थी। राज्य जागीर का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व इन सरदारों पर निर्भर रहता था।[1]

सामन्त-स्वतन्त्रता को स्पष्ट करने वाले प्रतीकों में उनके निवास स्थानों में बने हुए शीश महल, बाड़ी महल, निज मन्दिर, दरीखाना, दरबार भवन वैसे ही बने होते थे जैसे कि राणा के महलों में बने शीश महल दरीखाने। सामन्त भी अपने सरदारों के साथ दरबार लगाता और नजराने लेता था। जागीर के सरदारों की भी तीन श्रेणियों में भाई-बांट सरदार मर्यादी सरदार तथा वंशानुगत सरदार होते थे। सामन्त इन्हें मान सम्मान तथा पद प्रतिष्ठा प्रदान करता था। वह अपने स्वामी सामन्त के प्रति स्वामी धर्म एवं सामुदायिक कर्त्तव्य का पालन करने को तत्पर रहते थे।[2]

उपरोक्त सामन्तशाही विवेचन स्पष्ट करता है कि राज्य की सामन्त व्यवस्था राणा और उसके कुल के लोगों के मध्य सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक सम्बन्धों पर आधारित राज्य व्यवस्था को चलाने के लिये पारस्परिक साझेदारी थी। इस साझेदारी में पैतृक अधिकार देशभक्ति स्वामी धर्म तथा सामाजिक-आर्थिक कर्त्तव्य निहित रहे थे। यह सामन्तशाही पद्धति समाज के सभी तत्त्वों पर छाई हुई थी।[3] इसका स्वरूप आलोच्यकाल में विकेन्द्रीकृत रहा था। परिवार के मुखियाओं जाति पंचायतों ग्राम पंचायतों जजमानी-जागीर व्यवस्थाओं आदि में प्रचलित परम्पराएं नियमाचरण तथा इनके प्रति लोकाचार जाति शुद्धता वंशानुगत पद स्थितियां एवं संयुक्त परिवार प्रणाली में सामाजिक राजनीतिक प्रतिदर्शों पर राजपूत जाति की सामन्तिक प्रभावों का प्रतिलक्षण यथा स्थान आलोच्य निबन्ध में दिखाई देता है। इन्हीं आधारों पर कहा जा सकता है कि मेवाड़ की सामन्तशाही में धर्म की भावना व्याप्त रही थी जबकि यूरोप में मात्र मैं प्रचलित रहा था। राज्य में सामन्तशाही सामाजिक धर्म पर आधारित रही थी, वहां यूरोप में सामाजिक स्वार्थ पर। दोनों पद्धतियों की व्यावहारिक तुलना परमात्मा शरण द्वारा करते हुए लिखा गया है कि यूरोप में लोक कानूनों का स्थान व्यक्तिगत कानूनों ने लोक कर्त्तव्य का स्थान व्यक्तिगत कर्त्तव्य ने तथा राजा की व्यवस्थापन शक्ति स्वेच्छाचारी सामन्तों द्वारा अधिग्रहित कर राजा को निर्बल बना दिया था परिणामतः यूरोप की सामन्तिक व्यवस्था शीघ्र नष्ट हो गई किन्तु राजपूत

1 एनाल्स पृ 182-184
2 उपरोक्त भा 1, पृ 199-200
3 उपरोक्त पृ 153

सामन्तशाही व्यवस्था मे जागीरदार शक्तिशाली नही हुए थे।[1] यद्यपि मराठा अतिक्रमण काल म अव्यवस्था उत्पन्न हुई थी फिर भी राणा के प्रति स्वामी-धम तथा कुल-कत्त व्य का आदश निरन्तर बना रहा था।

यूरोप मे भूमि का स्वामी शासक माना जाता था किन्तु मवाड मे शासक भूमि का भाग लेने का अधिकारी रहा था। मूल मे जमीन जोतने वाला भूमि-स्वामी माना जाता था।[2] अत मवाड की यह व्यवस्था आर्थिक नियत्रण के स्थान पर आर्थिक सहयोग पर आधारित रही थी।

मेवाड मे प्रशासनिक एव न्यायी शक्तिया ग्राम्य पचायता द्वारा उपभोग की जाती थी। उनकी परम्पराग्रा और आदर्शो मे राज्य के सामन्ता का हस्तक्षेप नही होता था जबकि यूरोप म यह शक्तिया केन्द्र मे केन्द्रित रही थीं।[3] मूलत मेवाड म सामन्तशाही लोकभय के कारण स्वेच्छाचारी नहीं बन पाई थी।

यूरोप म सैन्य सहायता मात्र सेवा थी जबकि मेवाड म यह कत्त व्य और बलिदान की भावना से प्रोत थी।[4] इसी प्रकार यूरोप की तानाशाह सामन्तशाही का पतन हो रहा था तब भी यहा सामन्त पद्धति जीवित रही। इसके पृष्ठ म राज्य की सामन्तिक पद्धति का राजनीतिक आवश्यकता नही होकर सामाजिक और नैतिक प्रभाव शक्ति सू प्रोत-राष्ट्र सेवा के प्रति समपण था।

---

1 इण्डियन कल्चर खण्ड 13 नं 2 पृ 77

2 उपरोक्त पृ 78

3 उपरोक्त।

4 उपरोक्त।

अध्याय 3

भूमि व्यवस्था

ग्राम प्रधान समाज की एक मुख्य विशेषता भारत में ही नहीं अपितु संसार भर में भूमि व्यवस्था भी रही है। औद्योगिक क्रांति से पूर्व ग्रामीण समाज का आर्थिक आधार कृषि भूमि था। यही आधार एक विशेष प्रकार के सामाजिक संगठन का भी सृजन करता था। भारतीय स्वाधीनता के बाद भी भूमि सुधारों के बावजूद हम उनके प्रभावों से मुक्त नहीं हो पाए हैं। भूमि का स्वामित्व एवं भूमि का उपभोग करने वालों की व्यवस्था का स्वरूप राजपूताना की रियासतों में अलग अलग था। इसी व्यवस्था ने इस शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में किसान आन्दोलन तथा किसान जागरूकता को भी जन्म दिया। पिछले अध्याय में सामन्ती राजनीतिक संगठन का विवेचन प्रस्तुत किया गया था। इस अध्याय में सामन्ती समाज में भूमि व्यवस्था और कृषकों के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना है।

मेवाड़ राज्य का आर्थिक जीवन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भूमि व्यवस्थाओं से बंधा हुआ रहा था।[1] शिक्षा का प्रचलन कम मात्रा में होने के कारण राज्य और समाज की सेवार्थ भूमि वितरण की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही थी।[2] वेतन के स्थान पर भूमि पाने वालों में राज्य के सामन्त तथा दूत, चिकित्सक, शिल्पी, चित्रकार आदि[3] के साथ-साथ राज्य अधिकारियों में कामदार, पटेल, पटवारी तथा भी जीविका हेतु भूमि अथवा भू राजस्व का निश्चित अंश प्राप्त करते थे। किसान तो सदा ही भूमि उत्पादन पर आधारित अपनी जीविका चलाते थे किन्तु भूमिहीन व्यक्ति भी यजमानी सेवाओं अथवा भूमिधारी व्यक्तियों की भू सेवाओं द्वारा जीवन-निर्वाह करते थे।[4] इन सभी स्थितियों का हम भूमि व्यवस्था और राजस्व

---

1 एनाल्स भा 1 पृ 165, 478

2 जगन्नाथ राय प्रशस्ति शिला 1 श्लोक 109, राज प्रशस्ति, सर्ग 20 श्लोक 40 47 उपरोक्त, पृ 191-198

3 उपरोक्त पृ 165

4 द्रष्टव्य—जातियाँ एवं व्यवसाय अध्याय।

प्रणाली के अन्तर्गत विश्लेषण करेंगे। भूमि आधारित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था राज्य में भू स्वामित्व के विभिन्न स्तर स्थापित करती थी, जिनका विवेचन निम्न है—

शासक एवं भू स्वामित्व

राज्य की सम्प्रभु शक्ति धारक राणा राज्याधीन सम्पूर्ण भूमि क्षेत्र का वैधानिक स्वामी था।[1] वह इस क्षेत्र में किसी भी व्यक्ति को किसी भी शर्त पर भूमि अथवा भू राजस्व का अनुदान देने और अधिग्रहण करने सभी प्रकार की सम्पत्ति और ग्राम या उत्पादनों के साधनों पर करारोपण करने, प्रमुखतः के पारिश्रमिक हेतु कृषि पदावार का अंश लेने अथवा किसी अन्य को देने आदि के सैद्धान्तिक अधिकारों का उपभोग करता था।[2] राणा द्वारा प्रदत्त भूमि अनुदानों की दो श्रेणियां रही था—(क) धर्मार्थ भूमि अनुदान और (ख) धर्मेत्तर भूमि अनुदान।

(क) धर्मार्थ भूमि अनुदान—राणा द्वारा प्रदत्त धर्मार्थ भूमि अनुदानों की दो श्रेणियां थी। पहली श्रेणी में अनुदान मंदिरों, मस्जिदों, दवरों तथा मठों आदि धार्मिक स्थानों की व्यवस्था बनाये रखने के लिये किये जाते थे। इस अनुदान को पट्‌दशन कहा जाता था।[3] क्योंकि यह भूमि धर्म-

---

1 वद्यनाथ प्रशस्ति प्रथम खण्ड पद्य 63 पचोलियों के मंदिर का शिलालेख पद्य 59 वी वि पृ 960-961 1225, लल्लन जी गोपाल, दि इकोनोमिक लाइफ आफ नादर्न इण्डिया, पृ 4

2 वि स 1788 (1731 ई) को समाटा गाँव तथा वि स 1813 (1756 ई) में भादूदा गाव की उठना (सा ला मी रा, पृ 288), परगना काछोला, सरदारगढ एव गोगुन्दा जागीर की उठना, बोहेड़ा विवाद आदि (वी वि, पृ 1551, 1566 67, 1891, 1898, 1931-38) नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 2, पृ 31-47 238-40, एनाल्स, भा 1 पृ 233 243 भा 2 पृ 644 49, वी वि पृ 1563, सहीवाला भा 1, पृ 9-11, डा के एस गुप्ता, मेवाड एण्ड दी मराठा रिलेशन्स पृ 102

3 व रि देवस्थान बहिया सीगा गम्बीर परमेश्वरा (एकलिंगजी) रा गाव पट्‌दशन पट्टा री बही आदि, बस्ता 1 3 4 तथा 6, श्यामलदास कलेक्शन, धर्मार्थ गाँवा रा विगरो न 92, मेहता संग्रामसिंह कलेक्शन फाईल 146-50, बस्ता 7, कंठमणि शास्त्री, कांकरोली का इतिहास, पृ 175 179 80, कोठारी, पृ 33

आलोच्यकाल में भूमि स्वामित्व का विवरण

- राणा
  - खालसा भूमि (सीधे राणा के अधिकार में)
  - धर्मार्थ भूमि प्रदत्त
    - पटदान (मन्दिरों के खर्च चलाने हेतु)
    - शासनिक (ब्राह्मण चारण तथा अन्य इसी प्रकार की जातियों की धर्म सेवाएं)
  - धर्मेत्तर भूमि प्रदत्त
    - माफी
      - इनामिया (श्रेष्ठ सेवा हेतु)
      - चाकराना (राज्य पदोन्नत कर्मचारी)
    - जागीर
      - भोम (राजपूत भील)
      - ग्रास (राजपूत भील)
      - रावली (राणा के खास जागीरदार)
      - पट्टा (जागीरदार)

प्रजा (भूमि का उपयोग करने वाला वर्ग)

सस्थाओ के व्यवस्थापन हेतु प्रदान की जाती थी अत एसी भूमि का स्वत्व क्रय विक्रय नही किया जा सकता था। इस भूमि के अन्तगत कई गाव, एक गाव अथवा गांव के कृषि भू खण्ड के सम्पूर्ण राजस्व अथवा प्रदत्त राजस्व[1] स धम सस्थाओं का खच चलाया जाता था। 19 वी शताब्दी मे इस प्रकार के अनुदान दवस्थानी कहे जाने लगे थे।[2]

धर्माथ अनुदानो की द्वितीय श्रेणी म शासनिक अनुदान मुस्लिम भूमि व्यवस्था के मदद ए-माश के स्वरूप रह थे। एस अनुदान ब्राह्मण, चारण, भाट, सन्यासी, गुसाई, विद्वान् आदि को जाविका निर्वाह के लिय प्रदान किय जाते थे। यह भू धृति ग्रहिता (उदकग्राव) की मत्यु के पश्चात् पुन प्रदाता (धनक) द्वारा अधिग्रहित की जा सकती थी,[3] किन्तु आलोच्यकालीन पुण्याथ अनुदान अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि एसा करना पाप काय माना जाता था।[4] व्यक्तिगत अनुदान म दी गई भमि का क्रय विक्रय नही किया जा सकता था, किन्तु यदि ऐसी भूमि वशानुगत प्रदान की जाती तो उसका क्रय विक्रय अथवा बधक रखना राणा की स्वीकृति पर निभर रहता था।[5]

---

1 भू-भाग के अतिरिक्त खडलाकड (लकडी) केलखू ट (घर तथा पशु), तल पाली (तेल निकालने की घाणी) वाडी (बगीचे) आदि की लागत के रूप मे नक्द अथवा द्रव्य लिया जाता था ब रि बही जवान सुर बिहारी जी वि स 1904 जगत शिरोमणी जी का खतूणी वि स 1905, 1909 जगन्नाथ राय जी का जमा खच वि स 1913 बस्ता 1 अ 7, बो वि पृ 1776-1777

2 कवायद माफी रियासत मेवाड पृ 2 एव 5

3 सो ला मी रा पृ 288

4 "अपदत परदत जे पाल्ती वसुधरा तेनरा राजराजेंद्र जवलग चन्द्र दिवाकरा" का उल्लेख प्रमाणित करता है कि भमि क वशानुगत प्रदान करने के पश्चात् इसका अधिग्रहण काय दुष्कर था। एनाल्स भा 2 पृ 647-48 सीक्रेट डिपोजिट रिकाड रजिस्टर ताम्र पत्र सख्या 160 170 319 321 353 383, रा अ उदयपुर।

5 वि स 1807 (1750 ई) फाल्गुन वदि 7 का बधक पत्र महाद्राज सभा का स्वीकृति पत्र (22 जुलाई 1884 ई) स 18 वि स 1781 (1724 ई) श्रावण वदि 6 का अनुदान प्रस्तरालेख वि स 1940 (1883 ई) आषाढ वदि 7 की रामकृष्ट की कर्जी (प्रति— दी वि पृ 1174-1176) एव 1215 सो ला मी रा पृ 290

एसे विक्रय अथवा बंधक अनुबन्ध इस श्रेणी के अनुदाता अधिकारियों द्वारा ही किये जा सकते थे।[1] पुण्यार्थ प्राप्त भूमि क्योंकि अग्रहार निमित्त दी जाती थी अत इस भूमि के सम्पूर्ण राजस्व ग्रहिता और उसके वंशजों के पास सुरक्षित रहते थे।

उपरोक्त दोनों प्रकार की भूमि अधिकार प्राप्ति हेतु उत्तराधिकारी द्वारा शासन से पुष्टिकरण प्राप्त करना आवश्यक होता था। यद्यपि ऐसे पुष्टिकरण मात्र परम्परा निर्वाह हेतु किये जाते थे। किन्तु इसका लाभ यह होता था कि पुष्टि प्राप्त व्यक्ति को अधिकृत भूमि में अपने और परिवार के अन्य व्यक्तियों का ब्योरा अथवा पतके हिस्सेदारी का विवरण प्रस्तुत करना पड़ता था जिससे शासन को प्रत्येक नवीनीकरण पर उस भूमि की स्थिति तथा उसकी क्षतियों का पता प्राप्त होता रहता था। इस कारण अग्रहार प्राप्त भू-ग्रहिता द्वारा अनाधिकृत प्रसार चेष्टाओं पर राज्य का नियंत्रण भी स्थापित रहता था।

(ख) धर्मेत्तर भूमि अनुदान—एसे भूमि अनुदानों में भी उनका भू धनियों के अनुसार विभिन्न श्रेणियां बनी हुई थी। हम आलोच्यकालीन प्राप्त विवरणों के अनुसार इन्हें दो मुख्य स्तर तथा इनकी श्रेणियों में विभक्त करेंगे। स्तर के अनुसार ऐसी भूमि अनुदान—(1) असनिक सेवार्थ और (2) सनिक सेवार्थ प्रदान किये जाते रहे थे।

असनिक सेवार्थ भू अनुदान पुन दो श्रेणियों में वर्गीकृत रहे थे—(अ) इनाम के निमित्त दिये गये अनुदान तथा (आ) चाकराना (नौकरी) के निमित्त दिये गये अनुदान।[2]

(अ) शासन और समाज की विशिष्ट सेवाओं से प्रसन्न होकर व्यक्ति अथवा वंशानुगत दिया जाने वाला भूमि अनुदान इनामिया माफी कहलाता था।[3] एसी भूमि को ग्रहिता या उसके वंश से तब तक पुनग्र हित नहीं किया जाता था जब तक कि ग्रहिता द्वारा कोई राज्यद्रोह अथवा अनुदाता के प्रति कोई विरोधी कार्य नहीं किया गया हो। इनाम प्राप्तकर्ता भूमि के राजस्व अधिकारों को कम अथवा अधिक करना अनुदाता की इच्छा पर निर्भर था। एसे अग्रहारी को भी उत्तराधिकार पुष्टिकरण निमित्त अनुदाता से प्रमाणी-

---

1 उपरोक्त।

2 ब्योरा माफी रियासत मेवाड़ पृ 2 8

3 उपरोक्त प 3 वी वि प 1927

करण कराना आवश्यक होता था।[1] इनाम भूमि को भी शासन स्वीकृति द्वारा क्रय या विक्रय अथवा बंधक रखा जा सकता था किंतु क्रय विक्रय के पश्चात् यह भूमि साधारण भूमि म सम्मिलित कर दी जाती थी। इसके पश्चात्, इस भूमि पर राजस्व ग्रहण करने का अधिकार अनुदाता का हो जाता था।[2]

(आ) राज्य सेवा के पारिश्रमिक हेतु दिए गए भू अनुदान 'चाकराना-माफी' कहा जाता था।[3] यह भूमि व्यक्ति द्वारा राज्य सेवा करते रहने तक प्रदान की जाती थी अत इस पर कोई राजस्व नही लिया जाता था। मेवाड राज्य म अधिकतर पद वंशानुगत होते थे[4] इसलिए ऐसी भूमि के पुनर्ग्रहण करने के अवसर बहुत ही कम आते थे। राणा द्वारा चाकराना भूमि प्राप्त व्यक्ति का मान सम्मान किया जाता अथवा उत्सवों या त्यौहारों पर भूमि राजस्व के अनुपात से आंशिक नजराने लिए जाते थे। ऐसे अनुपात का कोई निश्चित नियम का प्रमाण उपलब्ध नही होता है। यह भूमि ग्रहिता द्वारा सेवार्थ प्राप्त की जाती थी अत इसका विक्रय नही किया जा सकता था। यद्यपि ऋण प्राप्त करने के लिए बंधक रखने का कोई नियंत्रण नहीं था किंतु ऐसी बंधक रखी गई भूमि पर ऋण दाता ½ राजस्व का उपभोग कर सकता था, शेष अधिकार राज्य द्वारा अधिग्रहित कर लिए जाते थे।[5]

उपरोक्त वटदर्शन भूमि के अतिरिक्त शेष भूमियों म वंशानुगत भूमि आय के उपभोग तथा भूमि पर नियंत्रण का प्रतिपन्न राज्य के भूमि अधिकार होते चले गये थे। इसके साथ-साथ संयुक्त परिवार की व्यवस्था बने रहने तक ऐसी भूमि की आय तथा वितरण की स्थिति राज्य द्वारा नियंत्रण स्थापित किया जा सकता था। किंतु पीढी दर पीढी म ऐसी भूमि का छोटे-छोटे भागो म विभाजन जहां इनके अनुदान उद्देश्यो को समाप्त कर देता था वहां राज्य के राजस्व को भी हानि पहुंचाता था। छोटे छोटे टुकडो मे विभाजित भूमि माफी होने के कारण बेची नही जा सकती थी, राज्य या अन्य व्यक्ति द्वारा पाप के भय से क्रय अथवा अधिग्रहित नही की जा सकती थी

1 कवायद माफी रियासत मेवाड पृ 5, 13-14
2 उपरोक्त प 7
3 उपरोक्त प 2, 4, कोठारी प 14
4 एनाल्स भा 1 प 165 कोठारी प 13 47, उ ई भा 2 प 1001-1021
5 कवायद माफी रियासत मेवाड, प 6-7

परिवार की उदरपूर्ति में सक्षम नही होने के फलस्वरूप बेकार पड़ी रहती थी। ऐसी अवस्था म छोटे टुकड़ो म[1] बटी हुई कुल माफी भूमि का वहत् क्षेत्र उत्पादन की दृष्टि से बेकार पड़ा रहता था।

राज्य की सनिक सेवा के निमित्त प्रदान की गई भूमि को मुख्यत चार श्रेणिया थीं—(इ) भूम (ई) ग्रास, (उ) रावली तथा (ऊ) पट्टा भूमि।

(इ) भूम का साधारण अथ भूमि स रहा था। किन्तु भू-अनुदान के अन्तगत इसका तात्पय विशिष्ट अधिकारो से युक्त भूमि के रूप म लिया जाता था। भूम म छोटे खेत स गाव और कई गावो की सम्मिलित भूमि अथवा क्षेत्र सम्मिलित किय जा सकत थ। यह भूमि अधिकतर राजपूत जाति के लोगो, जिन्होने कि सनिक कायवाहिया म अपना सवस्व बलिदान कर राणा से प्रशसा अजित की हो को दी जाती थी।[2] ऐसी भूमि पर ग्रहिता को वशपरम्परागत अधिकार प्रदान किय जात थ। यह भूमि राज्य के राजस्व से मुक्त रहती थी। राज्य क प्रत्येक प्रमुख ठिकानेदार का ठिकाना उसकी भूम रहा था। इस भूमि के क्रय विक्रय तथा बधक रखने पर शासन का कोई नियत्रण नही था। भूम धारक भूमिया का राज्य की सनिक सेवा म सदव तत्पर रहना पड़ता था।[3] इसक साथ ही भूम बराड नामक वार्षिक किराया राज्य को जमा कराना पडता था।[4] भूमिया द्वारा इन कत्तव्यो का पालन नही करने की अवस्था म भूम का राज्य द्वारा अधिग्रहित किया जा सकता था।

18 वीं शताब्दी के मराठा अतिक्रमण काल म भूमि व्यवस्था म 'रखवाली' नामक प्रथा का प्रचलन अत्यधिक था[5] परिणामत शक्तिशाली राजपूत गाँव की रक्षाथ सनिक सेवा निमित्त भूम प्राप्त करने लग थ।[6] एसी भूमि पर

---

1 एनाल्स भा 3, पृ 1630-31
2 एनाल्स, भा 1 पृ 190 191 237, मवाड रेजीडेन्सी, पृ 72 वी वि पृ 136-37
3 वी वि प उपरोक्त एव 195-196, उ ई, भा 1, पृ 22, मेवाड का राज्य प्रबध पृ 11
4 ब रि परगना बड़ा वि स 1913 (1856 ई) बस्ता 1, पटे, मेवाड पृ 104 वी वि पृ 137 मवाड का राज्य प्रबध, पृ उपरोक्त।
5 एनाल्स, भा 1, पृ 203-205
6 उपरोक्त पृ 236 237

केवल राजस्व अधिकार प्रदान किये जाते थे।[1] निश्चित कर्त्तव्य निर्वाह नही करने की अवस्था म भूमियों को भूम से वचित किया जा सकता था। 1818 ई मे ईस्ट-इण्डिया कम्पनी और मेवाड की सरक्षण सधि के पश्चात् 1665 ई तक प्रदत्त भूम के अतिरिक्त सभी नवीन भूमधतियो को अवैधानिक घोषित कर दिया गया।[2] अत इस बात से अध्ययन के अत तक रखवाली-भूम की स्थिति गिनी चुनी रह गई थी।

उपरोक्त भूम अनुदान के अतिरिक्त राज्य की सनिकोत्तर सेवाओ के निमित्त भील आदिवासी लोगो को गाँव मे 1 अथवा 2 बीघा खेतों की कृषि-भूम प्रदान की जाती थी। इस भूमि पर राज्य द्वारा कोई राजस्व नही लिया जाता था अपितु ऐसे भूमिधारक भूमिया को बेठ (विष्टी) के लिये गाँव की चौकीदारी एव बिल्ड क्षेत्रो में राज्याधिकारियो की सेवा का काय करना पडता था।[3] यह भूमि बेची नही जा सकती थी कि तु कत व्यच्युतावस्था मे अनधिकृत की जा सकती थी।[4]

(ई) 'ग्रास' नामक भमि अनुदान के बारे म वि स 1875 के प्राप्त एक पट्टे में उल्लेखित 'ग्रास मया किया से स्पष्ट होता है कि ऐसे अनुदान राणा द्वारा मात्र रोटी खच चलाने के निमित्त निकटतम सम्बन्धी को प्रदान किये जात थे।[5] ग्रास-ग्रहिताओ द्वारा भी कोई राजस्व प्रदान नही किया

---

1 एनाल्स भा 1 पृ 237-238

2 उपरोक्त पृ 564 किन्तु 1840 ई तक यह व्यवस्था पूर्णत समाप्त नही हुई थी। ट्रीटीज, ऐंगेजमेन्ट खण्ड 3 प 44-47

3 द्रष्टव्य—जातियां एव व्यवसाय अध्याय वी वि पृ 136

4 डॉ शर्मा द्वारा भूम को बेचने का अधिकार नही लिखा गया है (सो ला मी रा प 289) किन्तु वशानुगत प्रदत्त भूम पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहा था। यह कहा जा सकता है कि भूम प्राप्त करने व प्रति प्रत्येक सामन्त या जागीरदार इतने लालायित रहते थे कि भूम प्राप्ति के पश्चात् उसे बेचा जाना मर्यादा और प्राप्त सम्मान के विरुद्ध माना जाता था। इसीलिए ऐसी कार्यवाही किसी भूमिया द्वारा दी गई हो ऐसे प्रमाण प्राप्त नही होत हैं। पर तु जो भम चाकराना कत व्य हतु दी जाती थी उसे भूमिया द्वारा बेचा का अधिकार नहीं था।

5 एनाल्स भा 1 पृ 191 वि स 1875 (1718 ई) चत सुदि 7 का रामपुरा का पट्टा (प्र नि वो वि पृ 975), रोटी खच अनुदान—कि

नाना अपितु संकटावस्था में राज्य इनसे सैनिक सहायता प्राप्त करता था। 19 वीं शताब्दी में भूमि और ग्राम भू अनुदानों का सैनिक महत्त्व नहीं रह गया था। इसीलिए सैनिक सहायता के स्थान पर मेवाड़ सरकार द्वारा ऐसे भूमिधारक जागीरदारों पर आर्थिक करारोपण करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया गया। किन्तु परम्परा से चले आ रहे अधिकारों को समाप्त कर उन्हें राजस्व देने के लिये बाधित नहीं किया जा सका था। इस प्रकार आलोच्य काल के अंत तक 'टाका' लिये जाने की परम्परा बनी रही थी।

(उ) रावली भूमि में स्वयं राणा जनानी ड्योढ़ी तथा कुंवरों की भूमि निज खर्च चलाने हेतु प्रदान की जाती थी। राणा संग्रामसिंह द्वितीय के काल में ऐसे गावों का विवरण प्राप्त होता है जिनका राजस्व और भूमि उत्पादन राणा के व्यक्तिगत खर्च के निमित्त सुरक्षित किये हुए थे।[1] किन्तु 19 वीं शताब्दी के किसी भी अभिलेख में इस प्रकार का निजी भू संरक्षण प्राप्त नहीं होता है। सम्भवतः पूर्व आलोच्यकालीन राणा द्वारा स्वयं का वेतन भी भूमि द्वारा निश्चित किया जाता रहा था तत्पश्चात् उत्तर आलोच्यकाल में निज खर्च नकद रुपयों में लिया जाने लगा था।[2]

राणा की माताओं पत्नियों तथा उनके अनुचरों का खर्च चलाने और राजपुत्रों के निजी खर्च हेतु भूमि अनुदान 'रावली' या जागरी कहलाते थे।[3] ऐसे रावली भू अनुदान राजस्व से मुक्त रहते थे। इन अनुदानों के प्रतिना

स 1906 (1849 ई) फागण बदि 8 (प्र लि वी वि प 1996-1997)

इनके अतिरिक्त भील जाति में भी ग्रासिया नामक सरदार रहे थे जिनका मूलोद्गम तथा राणा से उनका जातिगत सम्बन्ध प्रमाणों के अभाव में संदिग्ध है किन्तु ग्रासिया अपनी उत्पत्ति राजपूत वंश में बतलाते हैं— वी वि पृ 194 195

1 श्यामलदास वलवशन— महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के काल की बहियां एवं पत्र स न 229 एनाल्स भा 1 प 478 उ ई भा 2 प 623-624

2 ब्रुक—हिस्ट्री ऑफ मेवाड़ पृ 27, उ ई उपरोक्त प 716

3 ब रि बड़ बम्पावन जो रा पटा रा गाव री बही वि स 1904 पट्टा दर्री—पदायसा उपज वि स 1907 बाइजा राज रा पट्टा कुंवरा रो पट्टो बही वि स 1879 तथा 1926 बस्ता 1 3 6 तथा 8 वर्नी-विलास रिकार्ड—बही जनानी वि स 1931 रा रा अ उ

बगर राणा की स्वीकृति इनका विक्रय अथवा बधक नहीं कर सकते थे। यदि इस भूमि स कोई पुण्याथ दान किया जाता तो इसकी स्वीकृति राज्य से लेनी होती थी। राज्य विरोधी काय अथवा ग्रहिता की मत्योपरान्त रावली भूमि राज्य द्वारा अधिग्रहित हो जाती थी।[1]

(उ) पट्टा भूमि अनुदान मूलत राज्य की सनिक एव प्रशासनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिये दिये जाते थे। ऐसे अनुदानो म कई गाव और परगना (जिले) सम्मिलित रहत थे।[2] इन अनुदानो का ग्रहिताओ द्वारा क्रय विक्रय नहीं किया जा सकता था किन्तु धर्माथ पुनरअनुदान की स्वतन्त्रता रहती था। क्योंकि यह अनुदान सनिक सवा निमित्त प्रदान किये जाते थे अत इस कत्त व्य के निर्वाह करते रहने तक यह अनुदान वधानिक मान जाते थे। कत्त व्यच्युत होने पर राज्य द्वारा इनको अधिग्रहित कर लिया जाता था।[3] इस प्रकार के अनन्दान तीन श्रेणियो मे वर्गीकृत रह थे—प्रथम श्रेणी के जागीरदार—उमराव, द्वितीय श्रेणी के जागीरदार—राव तथा ततीय श्रेणी के जागीरदार—गोल के सरदार। इनकी सामाजिक आर्थिक एव राजनीतिक स्थिति का विवचन माम तशाही' के अन्तगत किया जा चुका है अत हम उपरोक्त स्तरो म वर्णित जागीरदारो के स्वत्व (अधिकार) का अध्ययन करेंगे। एव

---

1 श्यामलदास कलक्शन—जनाना खतूनी बही वि स 1879 (1822 ई)

2 ब नि परगणा बही वि स 1901-1904, पट्टा री बही वि स 1903, जागीरदारा रे गावा री बही वि म 1904, पट्टा बही वि स 1910 1908-1919 परगणा बही वि स 1926 पट्टा बही वि स 1930-31 पट्टा बही वि स 1949, पट्टा बहा वि स 1952, पट्टा बहा वि स 1960 बस्ता 1, 3 6 तथा 16

3 परगना काछोला जागीर सरदारगढ, जागीर गोगुन्दा की उटत्री—वी वि पृ 1551, 1566-67, 1891, 1898 1931-38। 18 वी शताब्दी तक प्रत्येक पट्टाधारी जागीरदार को पट्टा भमि के निमित्त राणा को प्रति हजार रुपया वार्षिक आय पर 2 घुडसवार तथा 4 पदल सैनिक सन्य सहायताथ प्रदान करन पडते थ किन्तु 19 वी शताब्दी म सनिक कायवाहियो का महत्त्व कम हो जान के कारण पट्टा भमि पर प्रति हजार रुपया पर 1 घुडसवार तथा 2 पैदल तथा कुल आमद पर ½ भाग छट्द लिया जाने लगा था। इसे 19 वी शता के उत्तरार्द्ध म 5 आ प्रति रुपया प्रति वष कर दिया गया जिस कि वष म दो बार 2 आ 2 पसा प्रति रुपया के हिसाब से छट्द के रूप म देना पडता था।

अनुमान के अनुसार भूमि वितरण का विभाजन निम्न अवस्था का सूचक था।

जागीरदार एवं जागीर स्वत्व

व्यापार-वाणिज्य उद्योग-धन्धे पर शुल्क (लागत) तथा माल के आयात-निर्यात पर मु गी (दाण) खान-खनिज तथा वन-उत्पादन पर प्राचीन परम्परा से राणा का अधिकार चला आया था।[1] किन्तु 18 वी शताब्दी में मराठा-अतिक्रमणों से उत्पन्न अव्यवस्था के फलत स्वच्छाचारी जागीरदारों ने राणा के अधिकारों को उपभोग करना प्रारम्भ कर दिया था।[2] कई बार राणा द्वारा भी उत्कृष्ट सैन्य सेवाओं के परिणामस्वरूप व्यापार वाणिज्य एव आयात निर्यात के अधिकार भी राजस्व अनुदान के साथ जागीरदारों को दे दिये जाते थे।[3] 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक परिणाम यह हुआ कि जागीरदार इन प्रदत्त अधिकारों का मनमाना विस्तार कर प्रजा से मनचाहे राजस्व वसूल करने लगे थे।[4] इसलिए ब्रिटिश सरक्षण काल में इन शासकीय अधिकारों को पुनर्प्रतिष्ठित करने के कई प्रयत्नों के पश्चात् जागीरदारों की राजस्व स्वेच्छा-चारिता पर अकुश स्थापित किया जा सका था।[5]

जागीरों में जागीरदार राजनीतिक एव आर्थिक स्वत्वों का ठीक उसी प्रकार उपभोग करता था जिस प्रकार कि राणा। यद्यपि सिद्धा त पट्टा प्रदत्त जागीर में जागीरदार द्वारा राणा की बगर स्वीकृति के किसी भी प्रकार का अनुदान नहीं किया जा सकता था कि तु व्यवहार में वंशानुगत पट्टा धारण किये हुए जागीरदार अपने क्षेत्र के अधिपति बन गये थे। अत वे भी राणा

---

1 उ ई भा 2 पृ 707 मेवाड का राज्य प्रब ध पृ 62
2 एनाल्स भा 1 पृ 168, 244-45 564, वी वि पृ 2202 उ ई भा 2 पृ 707
3 उपरोक्त पृ 236 238 सलेक्शन फ्राम बनेडा आर्काइव्ज भा 2 पत्र स 4
4 द्रष्टव्य—उद्योग वाणिज्य व्यापार अध्याय।
5 ट्रीटीज ऐंगेजमेन्ट खण्ड 3 पृ 44-54 स 1863 ई में राणा शम्भुसिंह की बाल्यावस्था के कारण ब्रिटिश भारत की सरकार ने राणा के वयस्क होने तक राज्य प्रब ध का काम तात्कालीन पोलिटीकल एजेन्ट कनल ईडन के सुपुर्द किया था, उसने सभी जागीरदारों पर राजनीतिक दबाव डाल कर केन्द्रीय राज्य व्यवस्था लागू की थी—उ ई भा 2 पृ 790-792

के जसे ही अपनी जागीरो मे भमि अनुदान करने लग गय थे।[1] इस तरह व्यक्तिगत स्वामित्व के विकास म सप्रभु स्वामित्व के अधिकारा तथा समाज के सामुदायिक स्वत्वा को निबल कर दिया था। एक ही जागीर पर वशानुगत अधिकार बन रहन स जागीर का अथ पतक अधिकार म प्रयुक्त होने लग गया था। जागीरदार अपनी विपिन्नावस्था में जागीर गाँवो को बधक रखन लग गय थ।[2] तथ्यत सुदृढ केन्द्रीय प्रशासन तथा भूमि व्यवस्था स्थापित किय जाने के उद्देश्य मे राणा अमरसिह द्वितीय द्वारा स्थापित स्थाई भूमि अधिकार तथा पट्टा अनुदान व्यवस्था 19 वी शताब्दी के अन्त तक विकृत भूमि व्यवस्था और केन्द्रीय प्रशासन के शथिल्य का कारण बन गई थी। जागीरों म जागीर तथा उनमे भी पुन खडित जागीरो की अनुदान प्रवत्ति न राज्य के अधिकारो का ही नही अपितु सामुदायिक अधिकारो का अन्त कर व्यक्तिगत अधिकारा की प्रतिष्ठा के साथ केन्द्रीय राजस्व प्रणाली को अत्यधिक हानि पहुचाना प्रारम्भ कर दिया था।

जागीर-भूमि व्यवस्थाओ के उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात् राणा के प्रत्यक्ष नियन्त्रण वाली खालसा भूमि की व्यवस्था का प्रश्न उपस्थित होता है। खालसा क्षेत्र मे भू स्वामित्व का अध्ययन करने से पूर्व भूमि वर्गीकरण करना आवश्यक हो जाता है। आलोच्यकालीन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि प्रत्येक गाँव म तीन प्रकार के भू खण्ड थे—(1) आवासान भू-खण्ड, (2) कृषित भू-खण्ड तथा (3) पडत अथवा बञ्जर भू खण्ड[3]। इसमे पडत भूमि पुन दो श्रेणियो म वर्गीकृत रही थी—(अ) गोचर भूमि तथा (आ)

---

1 भीण्डर महाराजा उदयकरण द्वारा शक्तावत शम्भुसिह को दिया गया भूमि पट्टा वि स 1834 (1777 ई) रावत मेघसिह द्वारा जवानसिह को प्रदान किया गया भूमि अनुदान वि स 1874 (1817 ई)—एनाल्स भा 1 पृ 230-231 प्र प्र स 17 19 पृ 242-243, सातारामजी शर्मा—भालाभवण मातण्ड पृ 78

2 श्यामलदास कलेक्शन—वि स 1895 तथा 1897 (1838 व 1840 ई) के हिसाब कागजात क्र 731, 740 रावत हमीरसिंह द्वारा राणा सरदारसिह को लिखी गई अर्जी क्र 662 बख्शीखाना रिकार्ड—गणावट गांवा री वही वि स 1901 (1844 ई) बस्ता 1, ट्रीटीज ऐंगेजमेन्ट—खण्ड 3 पृ 49 54, मवाड राज्य का प्रबन्ध पृ 59 व 63

3 ब रि बही खाता चक्व दी वि स 1931 (1874 ई) बस्ता 5, महता सग्रामसिह कलक्शन—फाईल 221-259 बस्ता 14

बेदखनी भूमि। गावर भूमि को चर्णोग भी कहा जाता था। इस भूमि पर गांव अथवा कई गांवों की पंचायतों का सामूहिक अधिकार होता था।[1] इस प्रकार की भूमि पशुओं के आहार विहार हेतु राजस्व से मुक्त रहती थी। इसे बेचना अथवा खरीदना 'पाप' माना जाता था। बेदखली भूमि पर कोई भी व्यक्ति कृषि के लिये स्वतन्त्र था किन्तु इसके लिये ग्राम पंचायत का नाम मात्र का लागत या नजूर देना पड़ता था। इसके पश्चात् यह दाखिली भूमि की श्रेणी में आ जाती थी और इस कृषित् भू खण्ड मान लिया जाता था।[2] भावासित भू खण्ड में भी आवासनाम-पट्टे निर्धारित किये हुए थे। इन पट्टों के अनुसार गांव तथा उनके आवासों को दो भागों कच्चे (दाखिला) तथा पक्के (असली) पट्टों में वर्गीकृत किया गया था।[3] कच्चे गांव में कोई भी व्यक्ति कहीं भी रह सकता था किन्तु पक्के गांवों में उस गांव की ग्राम पंचायत की बगैर स्वीकृति तथा नजराना दिये बिना नहीं रह सकता था।[4]

कृषित भू खण्ड एवं कृषक

कृषित् भूमि जैसा कि लिखा जा चुका है दो प्रकार की रहा थी—(क) असली और (ख) दाखिली। इसमें असली भूमि के कृषित् भू खण्डों पर खेती करने वाले किसानों के दो स्तर वाली तथा ग्राम आसामी रहे थे। वंशानुगत एक ही जमीन पर पीढ़ी दर पीढ़ी खेती करने वाले कृषकों को उस भूमि पर बपौती (पैतृक) का अधिकार माना जाता था।[5] ऐसे किसान और

---

1 व रि वि स 1905 (1848 ई) बही बस्ता 1, नाथूलाल व्यास संग्रह—रजि न 2 पृ 21, सीर्केट डिपोजिट रिकार्ड रजिस्टर—ताम्र पत्र प्रति स 232 273 546 सो ला मी रा पृ 290

2 वही—मेवाड़ पृ 63 64 बी एच बॉडन पावेल—ए मेन्युअल आफ दी लैण्ड रेवेन्यू सिस्टम एण्ड लैण्ड टेन्यूस पृ 529-38

3 उपरोक्त।

4 वही—मेवाड़ पृ 63 64 बी एच बॉडन पावेल—ए मेन्युअल आफ दी लैण्ड रेवेन्यू सिस्टम एण्ड लैण्ड टेन्यूस—पृ 529-38। यह व्यवस्था कर्नल टाड ने मराठा अतिक्रमणों से उजड़े गांवों तथा विस्थापितों का पुनर्वास करने को लागू की थी जिसका पालन आलोच्यकाल के पश्चात् भी होता रहा था।

5 एनाल्स भा 1 पृ 580 582, मा पम—ममोहर भा 2 पृ 11-14, कोटा राज्य का इतिहास भा 2 पृ 541

शासन का आर्थिक सम्बन्ध राजस्व का निर्धारण तथा इसकी पूर्ति तक सीमित रहता था। अन्यथा किसान अपनी जमीन बेचने, गिर्वी या बंधक रखने, भेंट देने हस्तांतरण करने अथवा अन्य से खेती कराने के लिये स्वतन्त्र रहता था। खाम किसानों द्वारा निरन्तर खेती करने पर एक दो पीढ़ी के पश्चात् बपौती में स्वीकार कर लिया जाता था।[1] यदि पड़त भूमि पर खेती करने वाले खाम कृषक फसल उत्पादन में असमर्थ होते तो उन्हें ऐसी भूमि से हटाया जा सकता था। किन्तु ऐसा अवसर मेवाड़ में सम्भवतः कभी नहीं आया था क्योंकि 19 वीं शताब्दी के भूमि प्रमाण इस तथ्य को स्थापित करते हैं कि कुल भूमि में कृषि रहित पड़त भूमि का प्रतिशत अधिक रहा था—

जि क्र	क्षेत्र	कुल भूमि बीघों	कृषि	प्रतिशत	कृषिरहित	प्रतिशत
1	जहाजपुर	18 402	45032	(24 4%)	139771	(75 6%)
2	माडल गढ़	174642	51621	(25 4%)	123021	(74 6%)
3	भीलवाड़ा	214147	78094	(36 5%)	136107	(63 5%)
4	राशमी	89770	38351	(43 8%)	50419	(56 2%)
5	चित्तौड़	263710	95749	(36 7%)	167961	(63 3%)
6	छोटी सादड़ी	99444	38517	(38 7%)	60927	(61 3%)

मनुस्मृति के अनुसार—'स्थाणुच्छेदस्यकेदारम्' अर्थात् जो जंगल काट कर खेत बनाये उस खेत पर उसका स्वामित्व हो जाता है राज्य उस खेत की रक्षार्थ तथा राज्य व्यवस्था हेतु भू-उत्पादन या आय का अधिकारी है। मेवाड़ में भी वंशानुगत जमीनधारी कृषकों के लिये यह लोकाचार प्रचलित रहा था—एनाल्स भा 1 पृ 572 73, फो पो क 2 अगस्त 1822 न 511

1 यटे के अनुसार पड़त भूमि पर कुआ खुदवाने के पश्चात् कच्चा किसान, पक्के किसान की श्रेणी में आता था—(मेवाड़ पृ 63) किन्तु माल बरसाती पानी से सिंचित जमीन पर इसका प्रतिरोपण नहीं था। मेवाड़ में क्योंकि परम्पराओं का आधार धर्म तथा लोकाचार रहा था अतः इसी आधार पर यह तथ्य स्थापित किया जा सकता है कि पड़त भूमि पर खेती करने वाला किसान 100 वर्ष में कृषि भूमि का अधिकारी बन जाता था, तब तक भू-राजस्व निमित्त उसे घुगरी देनी पड़ती थी, जिसकी मात्रा का नियमन उपलब्ध नहीं होता है—एनाल्स भा 1 पृ 579 भारतीय सामन्तवाद, पृ 155

7	राजनगर	25788	6419 (25 2%)	19297 (74 8%)
8	गीर्वा	57191	26257 (45 9%)	30934 (54 1%)

जब हम यहां किसान वर्ग का विवेचन कर रहे हैं तो खालसा कृषक के साथ साथ जागीर-कृषक की स्थिति का उल्लेख भी आवश्यक हो जाता है। जागीर भूमि के कृषक भी खालसा क्षेत्र के कृषको जैसे ही अधिकार रखते थे किन्तु खालसा के कृषक कहीं अन्यत्र भी बसने तथा खेती करने के लिये स्वतंत्र थे वहीं जागीर के कृषक बगैर जागीरदार की स्वीकृति अन्यत्र जाने के लिये प्रतिबन्धित होते थे।[1] इस प्रकार जागीर के कृषक की स्थिति एक कैदी के रूप में अभिव्यक्त होती है जिसका कि भाग्य जागीरदार के इशारों पर बंधा हुआ था। अतः इस परिस्थिति में जागीरक्षेत्राधीन कृषक की कृषि का अधिकार मात्र सेवक के कर्त्तव्य में परिवर्तित हो जाता था।

किसान और आवासित भू खण्ड की अन्य प्रजा का राणा अथवा जागीरदारों से आर्थिक सम्बन्धों का विश्लेषण हम राजस्व-प्रणाली द्वारा विश्लेषित कर सकते हैं अतः अब मेवाड़ राज्य में प्रचलित राजस्व पद्धतियों के स्वरूप एवं प्रभाव का विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

18 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की राजस्व प्रणाली

किसानों से उनकी रक्षार्थ तथा क्षेत्र व्यवस्थापन हेतु शासक को प्राचीन काल से कृषि-उत्पादन का भाग लेने का अधिकार समाज द्वारा स्वीकृत रहा था। यह अंश 1/6 से 1/4 के मध्य शासक एवं किसान के पारम्परिक समझौतों से घटाया-बढ़ाया जा सकता था।[2] मेवाड़ में कृषि आय के शासकीय भाग भिन्न-भिन्न जाति के कृषकों पर भिन्न भिन्न रहा था। आंटजणा, डांगी, कीर आदि मूल कृषक जातियों से उपज (उत्पान्न) का 1/2 से 2/3 भाग तक फसल की स्थिति के अनुसार घटा-बढ़ा कर लिया जाता था। राणा जगतसिंह के काल में वि स 1802 (1744-45 ई) के एक सुरह-लेख से ज्ञात होता है कि तत्कालीन उपज का 1/2 भाग राजस्व नियम

---

1 ट्रीटाज एंगेजमेंट खण्ड 3 पृ 49-54 धारा 28, उ ई भा 2 पृ 761

2 लल्लनजी गोपाल—दी इकोनोमिक लाईफ आफ नादर्न इण्डिया, पृ 35 एम आर मजूमदार—कल्चरल हिस्ट्री आफ गुजरात पृ 120

प्रचलित रहा था।[1] कुम्हार तेली नाई जसी सेवक जातियो तथा लुहार, सुथार आदि शिल्पी जातियो तथा पटेल, बलाई, सेणा, पटवारी अथवा अन्य राज्य कर्मचारियों की निजी बपौती कृषि भूमि पर उपज का 1/4 भाग लिया जाता था।[2] सेवक, शिल्पी तथा कर्मचारी पर राजस्व की मात्रा की कमी का कारण इनसे राज्यावश्यकतानुसार बैठ (विष्टी) के रूप म श्रम काय लिया जाना रहा था। ब्राह्मण की बपौती भूमि पर राजस्व भाग के स्थान पर काशीवास की लागत या गुगरी प्राप्त की जाती थी। काशीवास की लागत मे उन्हें कभी भी राणा अथवा जागीरदार के निजी धार्मिक कृत्या को सम्पन्न कराने बुलाया जा सकता था। गुगरी का कोई निश्चित अथ तथा निर्धारण प्रमाणा मे नही मिलता है।[3] इसके विभिन्न अर्थों के निष्कष म यही कहा जा सकता है कि गुगरी नाममात्र की राशि रही होगी जो कि राज्य कमचारियो द्वारा कमीशन के रूप म प्राप्त की जाती होगी। राजस्व की मात्रा के अनुसार भी किसाना के दो वग दिखाई दते हैं—आधा भाग राजस्व प्रदान करन वाले आधल तथा चौथे भाग प्रदाता को चौथिया' कृषक कहा जाता था।

राजस्व निर्धारण तथा वितरण

मेवाडी भाषा में उन्हालु, खरीफ तथा सीयालु रबी की फसल को कहत थ। दोना फसला पर अलग अलग राजस्व निर्धारण किया जाता था। एक ही प्रकार की फसल से अधिक मिश्रित फसल (बजाहार) पर राजस्व की लागतें अधिक लगती थी। एसी लागत को टाका कहा जाता था। 18 वीं शती के पूर्वाद्ध तक राजस्व प्रणाली में भाग के रूप म कृषि-कर' का प्रचलन हिंदू राजस्व व्यवस्था का द्यातक था। मुस्लिम राजस्व व्यवस्था म

---

1 मेहता सग्रामसिंह कलक्शन—फाईल 14 बस्ता 1, सुरल लेख वि स 1802 (प्रतिलिपित्—वी वि पृ 1525)

2 एनाल्स भा 2 पृ 593, मिसल फाईल न 23416—महकमा खास रिकाड रा रा अ उ

3 उपरोक्त, शोध पत्रिका वप 20 अक 2 पृ 81 राणा का ग्राम्य कमचारी प्रति आवास 1 र गुगरी प्रति वप। पडत भूमि पर कृषि करने वालो से नजराने मे गुगरी का आशय स्पष्ट करता है कि यह आर्थिक करारोपण करने वाले कमचारियो के लिये शासन द्वारा दिय गये छूट का कमीशन था।

बटाई और मेवाड़ में भाग अलग-अलग शब्द विन्यास लिये अर्थों तथा क्रिया प्रणाली में समानार्थ रखते थे।

भाग निर्धारण तथा राजस्व के अनुसार कृषक द्वारा फसल काटने के पश्चात् खलिहान में उत्पादन के चार समानुपातिक हिस्से कर दिए जाते थे।[1] इन हिस्सों को खला कहा जाता था। एक खला 5 मन से 25 मन तक का माना जाता था। चार हिस्सों से प्रथम हिस्से में राज्य के ग्रामीण सेवकों—पटेल पटवारी सेणा (चौकीदार) तथा बलाई (चपरासी) ग्राम्य समाज सेवक और शिल्पियों—सुथार लुहार कुम्हार, चमार नाई ढोली, आदि प्रत्येक को 1/40 भाग दिया जाता था।[2] यह भाग एक मन पर एक सेर लिए जाने के कारण सेरणा कहलाता था। दूसरा तथा तीसरा हिस्सा राणा अथवा जागीरदार द्वारा कृषि उत्पादन के राजस्व निमित्त ले लिया जाता था। चौथा भाग कृषक का रहता था, जिसमें भी एक मन पर 6 सेर या 1/15 भाग कुँवर-मटका या कुँवर-कलेवा की लागत,[3] 3 सेर या 1/7 भाग राज्याधिकारियों की महमानी 3 सेर राज्य के मुख्य सेठ 3 सेर राज्य के भण्डारी तथा 1 सेर ब्राह्मण की यजमानी हेतु प्रदान करने पर 40 सेर के मन के निर्धारण द्वारा कृषक का निजी हिस्सा प्रति मन 24 सेर बचता था। चार मन अनाज उत्पादन का 24 सेर लाभांश, जिसमें कि किसान द्वारा गृहस्थी खर्च सामाजिक कार्य, ऋणदाताओं के ऋण कृषि और पशु व्यवस्था का खर्च सम्मिलित था, किसानों की आलोच्यकालीन आर्थिक स्थिति का अवलोकन करा देता है।

भाग निर्धारण के पूर्व खड़ी फसल पर भी ग्राम के शासकीय और सामाजिक सेवकों द्वारा 5 से 7 सेर अनाज की पुली 'कूपा' लागत के नाम से ली जाती थी। यह कूपा लागत प्रति बीघा एक पुला प्रति ग्राम शासन सेवक वसूल होती थी। ग्राम्य शिल्पी दस्तकार और सेवक तीन सेर की एक पुली 'दानली चबेणी' के रूप में लेते थे। सायालु फसल पर 1/40 भाग राजस्व 1/15 भाग सेरणा तथा 1/45 भाग किसान का होता था। उन्हालु फसल से सोयालु फसल पर राजस्व कम लिया जाता था, अतः इसमें किसानों को लाभ

---

1 सम्पूर्ण विवरण एनाल्स से संकलित किया गया है विशेष द्रष्टव्य—एनाल्स भा 3 पृ 1625-1626

2 यह प्रक्रिया यजमानी का हिस्सा प्रदान करने की प्रथा थी जो आधुनिक कालीन ग्राम व्यवस्था में विद्यमान है।

3 राज्य के उत्तराधिकारी का राजस्व अनुभाग।

अधिक रहता था किन्तु यह फसल वर्षा पर निर्भर होती थी अतः इसको लाभ हानि भाग्य का खेल माना जा सकता है। बाड़ी की फसल, आम, इमली तथा अन्य फलों और गन्ना, कपास, अफीम, तम्बाकू, भांग वगैरा की उपज पर बीघोड़ी ली जाती थी। यह राजस्व 2 रुपये से 10 रुपये प्रति बीघा राणा अथवा जागीरदार द्वारा प्राप्त किया जाता था।

मुकाता प्रथा एवं राजस्व

मुगल प्रभाव से प्रभावित इजारेदारी प्रणाली[1] मेवाड़ में मुकाता प्रथा के रूप में विद्यमान रही थी। भू-राजस्व वसूली के लिये भूमि ठेके पर देने का सर्वाधिक प्रचलन मराठा अतिक्रमण काल (1751 ई. से 1818 ई.) में व्याप्त रहा था। मराठों द्वारा राणा, जागीरदार तथा प्रजा से मामला, फौज खर्च, मेजमानी, खड़णी, पेशकशी, नजराना, मुत्सद्दी खर्च तथा पन्द्रही समय-समय पर लिया जाता रहा था।[2] किन्तु कई बार यह राशि शेष रहने अथवा समयानुसार अदायगी नहीं होने के कारण मेवाड़ पर ऋण का भार बढ़ता जा रहा था। ऐसे ऋणों की पूर्ति हेतु राणा अथवा जागीरदारों की खालसा और जागीर भूमि मराठा नायकों के गिरवी (बंधक) रखी गई थी। इन गिरवी रखी गई खालसा कृषि भूमि अथवा जागीर कृषि भूमि को मराठा नायक ऋण वसूली के लिये ठेके पर उठा देते अथवा स्वयं इजारे पर ले लिया करते थे।[3] मराठों द्वारा इस प्रकार भू-स्वामित्व को गिरवी रखने का परिणाम होता था कि वे मुकाते पर रखे गए भूमि क्षेत्र, अन्य राजस्व का उपभोग करने लग जाते थे। इस प्रकार मुकाते पर ग्रहित जमीन के सम्पूर्ण स्वत्वों के उपभोग का अधिकारी मुकातेदार बन जाता था। वह अपने ऋण

---

1 नोमान अहमद सिद्दीकी—मुगलकालीन भू-राजस्व प्रशासन (1700-1750 ई.) पृ. 113

2 पूर्ण विवेचनार्थ द्रष्टव्य—डा. के. एस. गुप्ता—मेवाड़ एण्ड दी मराठा रिलेशन्स।

3 एनाल्स—भा. 1 पृ. 332, 504, 509-10, 520-21, 546; सलेक्शन फ्राम बनेड़ा आर्काइव्ज भा. 2 पृ. 34 पत्र 44, 62/76, 64/79, 74/94, 79/101; नाथूलाल व्यास संग्रह—रजि. 3 पृ. 4, 28; वी. वि. पृ. 963, 1228-29, 1547, 1551, 1554, 1696-97, 1717, 1938-39, 1996-97, 2005, 2089, 2111; उ. इ. भा. 2 पृ. 645, कोठारी—पृ. 33, 137, 205

तथा उसके ब्याज का लाभांश प्राप्त करने मुकाता भूमि की प्रजा से मनमाना राजस्व वसूल करने लग जाता था।[1] मेवाड़ में अध्ययनकालीन लिए जाने वाले बराड़ नामक सभी शुल्क या कराधान मराठा राजस्व व्यवस्था के परिणाम थे।[2] मराठाओं का अतिक्रमण काल के पश्चात् ब्रिटिश संरक्षण काल में (1818 ई. से अध्ययन काल के पश्चात् तक) भी मुकातादारी प्रथा यथावत् प्रचलित रही थी। राज्य की अव्यवस्था को पुनर्स्थापित करने तथा विकेन्द्रीकृत चुंगी (दाण) मापा तथा बिस्वा[3] का केन्द्रीकृत करने के लिये, मेवाड़ के प्रथम पोलिटीकल एजेन्ट कर्नल टाड के परामर्श पर, राणा ने इन्दौर के सेठ जोरावरमल बापना को सम्पूर्ण खालसा भूमि के दाण मापा तथा बिस्वा का उदहा ठेका (लाभ हानि का विचार किये बगर) दे दिया था। यह ठेका 1832 33 ई. में 12 लाख 75 हजार रुपया वार्षिक भरोती (पूर्व जमा राशि) पर साह जालिम चन्द्र भँवर द्वारा छुड़ाया गया था।[4] किन्तु इसके दो वर्ष बाद यह पुन: ऋण राशि व ब्याज की रकम पेटे[5] सेठ

---

1 1792-1793 ई. में मराठा नायब अबाजी इंगालिया को मेवाड़ के खिराज की वसूली हेतु राणा ने खालसा क्षेत्र से 50 लाख रुपया तथा जागीर क्षेत्र से 80 लाख रुपया प्रति वर्ष का ठेका प्रदान किया था, परिणामत: उसने इस पर 12 लाख तथा 4 लाख का लाभ अर्जित किया था (एनाल्स भा. 1 पृ. 520-21 वी वि. पृ. 1717)। इसी प्रकार 1806 ई. में कुम्भलगढ़ का परगना यशवंतराव भाऊ का ऋण पेटे मुकाते लिया गया था जिसे राज्य के प्रधान साह सतीदास ने, 70 हजार रुपये में छुड़ाकर इस क्षेत्र को पुन: कई आदमियों को अलग अलग ठेके पर प्रदान कर दिया था—(एनाल्स भा. 1 पृ. 546)। इस पर कितना लाभांश साह को प्राप्त हुआ? इसका विवरण उपलब्ध नहीं होता है किन्तु राज्य का प्रधान होने के प्रभावस्वरूप इसे हानि होने के अवसर नहीं रहे होंगे।

2 द्रष्टव्य—प्रकरण तगत लाग बाग अनुच्छेद।

3 *मापा नामक शुल्क मण्डी अथवा हाटक कर था और बिस्वा विदेशी व्यापारियों से ली जाने वाली चुंगी थी।*

4 वी वि पृ 1801

5 पटे का शाब्दिक अर्थ स्थान और सतह होता है किन्तु राशि के साथ इसका प्रयोग पूर्ति के रूप में ब्याज की लेन देन तथा व्यापारिक अभि-क्रियाओं में प्रचलित है।

जोरावरमल को प्रदान किया गया था। इसी प्रकार गावो के पटेलो या राज्य अधिकारियो को भू-राजस्व का मुकाता, राज्य की ऋण अदायगी अथवा जागीर की ऋण अदायगी अथवा भू-राजस्व की व्यवस्था हेतु खालसा भूमि और जागीर भूमि क्षेत्रो को 19 वी शताब्दी के अन्त तक मुकाते पर प्रदान किया जाता रहा था।[1]

मुकाता प्रथा का प्रभाव

यद्यपि मुकाता प्रदान करते समय प्रदाता (देने वाले) द्वारा ग्रहिता से मुकाते का अनुबन्ध किया जाता था।[2] किन्तु ऋण के पटे ग्राम मुकातो मे ऋणी व्यक्ति या प्रदाता की ओर से हिसाब-किताब का व्यवस्थित नियन्त्रण नही होने से मुकाता भूमि पर मुकातेदार स्वच्छन्द व स्वेच्छाचारी बन जाता था। मुकातेदार की प्रवृत्ति सदैव लाभार्जित की रहती थी अत टक पर प्राप्त ख्याति से अधिकाधिक लाभ लेने के लिये मनमाना राजस्व सग्रह करने लग जाता था। इसका परिणाम होता था कि किसान तथा अन्य करदाता वर्ग अपने व्यवसायो के प्रति उदासीन हो जाते थे जिसका प्रभाव राज्य की अर्थ-व्यवस्था पर पडता था। यदि इस परिप्रेक्ष मे मराठा अतिक्रमण कालीन मेवाड की आर्थिक दशा का विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन आर्थिक जीवन की अस्त व्यस्त अवस्था का मूल कारण सैनिक अतिक्रमण नही होकर, मराठाओ की आर्थिक लूट था।[3] इस लूट का प्रत्यक्ष

---

1 ब रि मुकाता बही वि स 1905, जमा बही वि स 1901, 1903-1904, 1908-1911, सावत बही वि स 1932 गाँवा री आमद जमा वि स 1952 58 बस्ता 1 2 3, 6 7 कोठारी कलेक्शन के कागज पत्रा म मुकाते गावो मे कू ता की वसूली के निर्देश (रा रा अ उ सग्रहीत) बी वि पृ 1797, 1938-39, 1996-97, 2005 2089 2111, कोठारी—पृ 33, 137

2 अनुबन्ध पत्रो के लिए द्रष्टव्य वीर विनोद उद्धृत प्रतिलिपियाँ—वि स 1774 की अर्जी, वि स 1799 आषाढ सुदि 15 री मुकाता चिट्ठा, मुकाता पट्टा वि स 1931 चैत्र सुदि 12, मुकाता चिट्ठी वि स 1906, उठत्री लावा जागीर वि स 1911 आदि, वी वि पृ 963, 1828 1695 97, 1938-39, 1996-97

3 एनाल्स भा 1 पृ 514-515 जनल आफ इण्डियन हिस्ट्री खण्ड 24, पृ 157-158

सम्बन्ध मुकाता व्यवस्था के प्रचलन म निहित रहा था। 19 वी शताब्दी मे मुकाते की राजस्व प्रणाली न सामाजिक-आर्थिक जीवन मे साहूकार तथा सटोरिया को एसे शक्तिशाला मध्यस्थ वग को पनपाया जो कृषक जागीरदारों तथा राणा के राजस्व को दोहन कर राज्य की आर्थिक शक्ति का प्रमुख केन्द्र बन गया था। मुकातेदार, मुकाता प्राप्त भूमि को पुन खण्डित ठेको पर उठा देता था। ऐसे ठके अधिकतर ग्राम के बनिया या बोहरा अथवा ग्रामीण पटेल द्वारा प्राप्त किये जाते थ। इस प्रकार मुकातेदार तथा प्रदाता के पारस्परिक अनुबन्धा का कोई औचित्य नही रह जाता था। क्योकि इस प्रकार मुकातेदारो की कई श्रेणिया बन जाती थी जिसम क्षत्रिय मुकातेदार अनुक्षत्रिय मुकातेदार एव स्थानीय मुकातदार अपन अपने लाभ प्राप्त करने मुकाताधीन क्षेत्र म स्वच्छिक राजस्व प्राप्त करने का अधिकार बना लेत थ। मवाड म प्रचलित विभिन्न लाग बाग मुकाता प्रथा और भूमि की जागीरदारी व्यवस्था का मुख्य प्रतिफल थी।

हीजारेदारी प्रथा

मुकाता प्रथा के साथ साथ राजस्व प्रणाली म कृषि भूमि को भागीदारा म जोतने के लिये हीजारे पर प्रदान किया जाता रहा था।[1] मुकाता म जहा एक बार रकम अदायगी का अनुबन्ध हा जाता था वहा हीजारे म उपज का हिस्सा निश्चित किया जाता तो 1/2 पाता स 1/4 पाती तक होता था। इस पांती का क्रमानसार दूजी पांती तीजी पाती और चोथी पाता (हिस्सा) कहा जाता था।[2] किसान को हीजारा भूमि करने का तात्पय राजस्व की प्रत्यक्ष वसूली हाता था, किन्तु जब एसी भूमि क्षत्र के रूप म आर्थिक सम्पन्न व्यक्ति को दी जाती तो इसका अथ अप्रत्यक्ष राजस्व वसूली स लिया जाता था। इस प्रकार की कृषि व्यवस्था म प्रदाता और ग्रहिता का समान हित हाने क कारण राजस्व हानि तथा हीजारेदार की दोहन नीति का प्रभाव उत्पन्न नही होता था। यद्यपि क्षत्रिय हीजारेदार इसम मनमानी कर सकत थे किन्तु फसल उत्पादन तथा उसम राणा या जागीरदार, हीजारदार तथा कृषक के निश्चित भागा का वितरण राज्य कमचारियो की दखरेख म होन क

---

1 ब रि हीजारा गाव रा जमा परगणा बही वि स 1903, 1904 1908 1911, 1917-1919, खतूणी बही वि स 1920-26 पट्टा बही वि स 1928 1931 1952-58 आदि बस्ता 1, 2 3 तथा 8

2 महता सग्रामसिह कलक्शन—फाईल 221 259, बस्ता 14

फलस्वरूप इसके प्रसार कम रहते थे।[1] एक प्रकार से हाजारेदारी प्रथा में दाता और कृषक दोनों को लाभ रहता था और मध्यस्थ वर्ग की स्वच्छाचारी स्वच्छन्द प्रवृत्ति पर नियंत्रण बना रहता था। राज्य में यह प्रथा भी कई क्षेत्रों में प्रचलित रही थी, इसमें अधिकतर हीजारेदार राज्य के अधिकारी रहते थे। इसलिए इस प्रथा का जो लाभ राज्य को प्राप्त होना चाहिए था, उस प्राप्ति में राज्य असफल रहा था।[2]

उपरोक्त मुकातेदारी एवं हीजारेदारी प्रथा का प्रचलन स्पष्ट करता है कि राज्य में कोई निश्चित एवं नियमित भू-राजस्व प्रणाली का अभाव रहा था। इस अनिश्चितता के पृष्ठ में तत्कालीन राजनीतिक वातावरण तथा शासकों द्वारा अपनाई गई भूमि वितरण व्यवस्था रही थी। परिणामस्वरूप आलोच्यकाल में आर्थिक शक्ति के रूप में वैश्य महाजन वर्ग का उदय हुआ था। यह वर्ग आर्थिक शक्ति से युक्त होने के कारण राज्य की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थाओं का नियंत्रण करने लगा था।

18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की राजस्व व्यवस्था

मराठा मुकातेदार निरन्तर लूट खसोट में व्यस्त होने के कारण एक स्थान पर ठहरते नहीं थे। अतः वे अपनी मुकाता-भूमि पुनः भूमि के स्वामी या जागीरदार अथवा पटेल को कुल उपज का 1/10 भाग दसूंध, 1/5 भाग पूंछी 1/4 भाग चौथ अथवा 2/3 भाग तीजा के मौखिक अनुबंध पर प्रदान कर देते थे।[3]

---

1 क रि हीजारा गाव रो जमा—परगणा बही वि स 1903 1904 1908-1911 1917-1919 खतूणी बही वि स 1920-26 पट्टा बही वि स 1928 1931 1952-58 बस्ता 1 2 3 तथा 8

2 राज्य ने कई बार इस राज्याधिकारियों को उनकी भ्रष्टता के लिए आर्थिक दण्ड प्रदान किये थे—बी वि पृ 1792-94 1894, 1923, 2087 2191 उ ई भा 2 पृ 743 801 803

3 एनाल्स भा 1 पृ 171 सलेक्शन फ्राम बनेड़ा आर्काइव्ज भा 2 पृ 14 पत्र 20 33/43 54/68, 55/69, 60/75, 66/83, बनेड़ा फोट आर्काइव्ज—डा गुप्ता संग्रह (अ प्र) बहीरजी ताकपीर का हिसाब वि स 1831 वैसाख सुदि 1 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन—फाईल 181-185 बस्ता 13, बी वि पृ 1551, 1657, मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध पृ 13

वाणिज्य, आवास तथा अन्य व्यवसाय शुल्को को विभिन्न बराडो[1] द्वारा वसूल करते अथवा मुक्ति पर प्रदान कर देते थे। इन बराडो म मुख्यत मोईया और मानिया से मोई बराड, व्यापारियो स कोयला बराड, पडी बराड फौज की व्यवस्था के लिये फौज, घोडे के घास दाने हेतु घोडा बराड जुर्माने के लिये डड बराड आदि के साथ अन्य कई बराड लिये जाते थे जिनके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नही होने हैं। फल फूल, तरकारी, तम्बाकू, अफीम भाग, कपास गन्ना इत्यादि व्यापारिक लाभ वाली फसलो की आय का 1/10 प्रतिशत हीरण्य अथवा हासिल लिया जाता था।[2] इस काल का राजस्व प्रजा के लिय दु साध्य भार था क्योंकि जनता का उपाजन एव राज्य की घरती मराठा की लूट-खसोट तथा मुक्तादारो की दोहन नीति से निष्क्रिय बनती जा रही थी।[3] इसी मनमाने राजस्व व्यवहार के फलत प्रजा राज्य छोडकर अन्यत्र राज्यों म जाने लग गई थी।

19 वीं सदी की राजस्व परम्परा

1818 ई म ईस्ट इण्डिया कम्पनी और मेवाड के मध्य सधि के पश्चात् तत्कालीन कम्पनी के एजेण्ट टॉड ने जैसा कि उल्लेखित किया जा चुका है

---

1 एनाल्स भा 1 पृ 169 बराड नामक कर सभवत मराठा राजस्व व्यवस्था की देन थी। इसी प्रकार पन्द्रही नामक कर जाति व्यवसाय पर मेवाड में मराठों द्वारा कई बार लिया गया था। दोनो ही प्रकार क शुल्क 18 वी शताब्दी के पूव मेवाड म प्रचलित नहीं रह थे न इसकी पुष्टि म कोई प्रमाण उपलब्ध है। इन कराधन की प्रथम सूचना मराठा अतिक्रमण काल के प्रमाणो में प्राप्त होती है—एनाल्स भा 1 प 520 मेमोईर आफ सन्ट्रल इण्डिया भा 2 प 9

2 'हीरण्य' नामक शुल्क गाव की सयुक्त उपज पर लिया जाने वाला कर था (दी इकोनोमिक लाईफ आफ नादन इण्डिया प 40) हीरण्य का प्रतिरूप ही कालान्तर म हासील कहा जाने लगा था। मुगलकाल मे पट्टे पर दी गई भूमि पर हासील लिया जाता था। क्योंकि मेवाड मे बाग बगीचा रखना सामन्त तक विशेषाधिकार रहा था (एनाल्स भा 1 प 237 243 पट्टा प्रति 10 तथा 19) अत हासील पट्टेदारी फसल पर लगाया जाता था जो कि अमल री पट्टी, भाग गाजा री पट्टी आदि की 'जमा में जमा बहियों स सिद्ध होता है। टाड के काल मे यह जमा प्रति फसल कृत 2 से 10 रु तक रही थी—एनाल्स भा 3 प 1626

3 एनाल्स भा 1 पृ 507 515-516

राज्य की प्रय-व्यवस्था को सजीव करने की ठेका व्यवस्था को प्रोत्साहित किया था। इसमें हीजारा प्रणाली की प्रमुखता रही थी। हीजारे प्रदान की गई भूमि पर राजस्व का निर्धारण हिस्सों अथवा नकद कूत द्वारा किया जाता था।[1] इस कूत करने में कृषक, हीजारेदार तथा राज्य कर्मचारी सम्मिलित होते थे। राणा के प्रत्यक्ष नियन्त्रण वाले भूमि क्षेत्र पर यह कूत पटेल पटवारी, सणा तथा कृषक द्वारा सम्पन्न होती थी। कूत में बराबरी के तीन भाग में यदि भूमि हीजारे पर होती तो तीन भाग तथा राणा के नियन्त्रण वाली भूमि पर दो भाग किये जाते थे। हीजारा भूमि पर प्रथम भाग शासन का, द्वितीय भाग हीजारदार तथा ततीय भाग किसान का और राणा नियन्त्रित भूमि पर प्रथम भाग शासन तथा द्वितीय भाग कृषक का रहता था।[2] कृषक के हिस्से में ग्राम के राज्य तथा समाज सेवकों के हिस्से एवं यजमानी नेग दिये जाते थे जो कि कृषक अंश के 1/2 भाग होते थे। प्रत्यक्ष नियन्त्रित राणाधीन भूमि के राजस्व को हासिल-भोग कहा जाता था। इस काल में जागीरदारों द्वारा भी जागीर क्षेत्र में कृषकों से बांटा या भाग के स्थान पर भू राजस्व कृषि प्राय का 1/3 हिस्सा भोग हासिल तथा कई प्रकार की लागतें ली जाती रही थीं।[3]

कूता प्रणाली में राजस्व लेने वाली व्यक्तियों (अधिकारी) को अधिक लाभ रहता था। क्योंकि कूता खड़ी फसल पर किया जाता था, अतः फसल के अच्छे और बुरे भविष्य का राजस्व पर प्रभाव नहीं पड़ता था। बांटा अथवा भाग प्रणाली में फसल की लाभ हानि को किसान के साथ-साथ शासन अथवा हीजारेदार को भुगतना पड़ता था। यद्यपि टॉड ने लिखा है कि फसल का राजस्व कूते द्वारा नहीं देने वाले कृषक अपनी भूमि का राजस्व बांटा/भाग में अदा करने के लिये राणा को प्रार्थना पत्र दे सकते थे।[4] किन्तु

---

1 बरि पट्टा बही वि स 1905 के अनुसार तत्कालीन यह कूता 3 रुपया प्रति बीघा किया गया था बस्ता 2

2 एनाल्स भा 1 पृ 582 583

3 ट्रीटीज एंगेजमेन्ट खण्ड 3 पृ 44-45 उ इ भा 2 पृ 735, मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध पृ 55

4 महता संग्राम सिंह कलेक्शन—फाईल 14 बस्ता 1, एनाल्स भा 1 पृ 582-583 पट—मेवाड़ पृ 64 अकाल के समय यह भोग, बांटा या भाग में लिया जाता था जो उत्पादन का 1% हुआ करता था—मेवाड़ रेजी सी पृ 72

ऐसी प्रक्रिया का साधारणीकरण नही हो सकता था क्योकि यह लाभ राजस्व निर्धारण करने वाले अधिकारियो तथा कर्मचारियो के कृपा पात्र किसान ही प्राप्त कर सकते थे,[1] अन्यथा साधारण कृषक की पहुच राणा की निजी अनुचरों तक भी नहीं हो पाती थी।

कू ता निर्धारको द्वारा कू ता निर्धारण करने म फसल के राजस्व को कम अथवा ज्यादा कू तने की गु जाइश रहती थी। तत्काल प्रचलित विभिन्न लागतो म कर्मचारियो द्वारा ली जाने वाली लागो से स्पष्ट होता है कि वे अपनी निजी लाभाश प्राप्त कर कूत म किसानो को कई प्रकार की छूट प्रदान कर देते थे, जिनम भू राजस्व प्रमुख रहा था। ऐसी लागो म डोरी नजराना, खाता कसर डोरी पूजन कू ता नजराना, रसद आदि मुख्य रहे थे।[2]

राजस्व अधिकारी और कर्मचारियो की इन भ्रष्टाचारी कार्यवाहियों से एसा विदित होता है कि राणा भी अवश्य अवगत रहता था। पकडे जाने पर दण्ड की प्रक्रियाओ म उल्लखित आर्थिक दण्ड भी दिये जाते थ किन्तु सुदढ प्रशासनिक व्यवस्था के अभाव म भ्रष्टाचारी कार्यवाहियो को पकड लेना दुष्कर कार्य था। अत राज्य द्वारा भ्रष्टाचार की स्थिति को स्वीकारते हुए राजस्व अधिकारियो व कर्मचारियो से भी उनकी आय पर 'लाग' ली जाती थी, यथा—टकी लागत टाका बराड, पटेल या चौधरी बराड, कामदार नजराना, पटेल नजराना, उपरकराई आदि मुख्य रहे थे।[3]

1862 ई म लाटा कू ता के राजस्व निर्धारण को बन्द कर तत्कालीन राज्य प्रधान कोठारी केसरीसिंह ने 1852 ई स 1862 ई तक की औसत उपज के हिसाब से नक्द राजस्व लेने की योजना प्रारम्भ की थी।[4] यह

---

1 वी वि पृ 1939

2 फहरिस्त लाग बाग फाईल 31/ए (रा रा अ बी), सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महकमा खास भा 1 पृ 250

3 व रि जमा बही वि स 1919 बस्ता 2 बाजोलिया सत्याग्रह का इतिहास (अप्र ह प्र) पृ 5 उ ई भा 2 पृ 735 शोध पत्रिका —उपरोक्त पृ 75-80

4 राणा शम्भु सिंह के शासन काल म हासिल भोग का राजस्व बाघोडी पर नक्द लिया जाना प्रारम्भ किया था। यह व्यवस्था 1868 76 ई तक कुछ क्षेत्र—जहाजपुर, मांडल, कपासन राशमी आदि म प्रचलित की गई था किन्तु विस्तृत रूप म परम्परावादी जन-जीवन द्वारा अंगीकार

योजना किसानो के लिये लाभदायक थी किन्तु राजस्व अधिकारियो, कर्मचारियों तथा बिचौलियो (इजारेदारो) के भ्रष्टाचारो पर आघात करती थी अत उनके द्वारा इस योजना का समर्थन किया गया। अन्तत यह मात्र कागजी योजना बनकर रह गई।[1] इस काल से राजस्व प्रशासन मे प्रशासनिक परिवर्तन कर वंशानुगत पटल तथा बलाई के स्थान पर पटवारी तथा चपरासी की वैतनिक नियुक्तिया की जाने लगी थी। राजस्व का हिसाब-किताब रखने और किसानो को लगान जमा कराने की दौड धूप से बचाने के लिए दो तीन गावो के पटवार क्षेत्र बनाकर पटवार खान खोले गए। इस परिवर्तन द्वारा किसान व्यय की दौड राजस्व जमा कराने, कूंत कराने के लिए अधिकारियो के पीछे पड़े रहने तथा अनुनय विनय से बच गया। यह काल मेवाड राज्य के प्रशासन मे दफ्तरीय पद्धति प्रारम्भ होने का काल था।[2] 19 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के तीन दशक से चकबन्दी-व्यवस्था द्वारा कूंता किया जाने लगा था अत भूमि की उपज के अनुसार भूमि का वर्गीकरण किया गया। इसमे भूमि को गाव के परकोटो मे कृषिकारी भूमि 'आधण, गाव के पास वाली भूमि गोरमा' पडत तथा गाव से दूर की रावड कावड, पहाडी या पथरीली भूमि मगरा वर्षा पर निर्भर भूमि को माल और पुन इनको पीवल चाही—एक साखी या दो साखी पड़त एक साखी घास की भूमि को बीड मगरा माल माल-बेजाहार आदि पर अलग अलग कूंते निश्चित कर अलग अलग भूमि पर उसके प्रकार, कृषि उत्पादन पर हासिल भोग लिया जाने लगा था।[3] इस व्यवस्था के अनुसार श्रेष्ठ भूमि माल तथा पीवल पर 5 रुपया प्रति बीघा मैदानी एक साखी तथा दो साखा पर 2 रुपया प्रति बीघा और मगरा या पड़त पर 1 रुपया प्रति बीघा लिया जाता था। व्यापारिक एव बाडी के उत्पादन पर ब्राह्मण एव चारण को छोड़कर राजपूतों स 3 रुपया से 5 रुपया प्रति बीघा और कृषिकारी जातियो

नही करने के फलत प्राचीन परम्परा को बनी रहने दिया गया था—कोठारी कलेक्शन—कागज लाटा-कूंता, बीघोडी बाबत (रा रा अ उ) वी वि पृ 2089, कोठारी पृ 28, उ ई भा 2 पृ 804

1 यटे—मेवाड पृ 49-51

2 उपरोक्त।

3 ब रि बही खाता चकबन्दी वि स 1931 जमा बहियाँ वि स 1932-1940, पट्टा बहियाँ वि स 1951 1954-58 बस्ता 5, 6 16, महता संग्राम सिंह कलेक्शन फाइल 156-180 बस्ता 12

स अफीम व ग न की फसल पर 7 रुपया प्र बी तम्बाकू पर 5 रु प्र बी, कपास पर 4 रु प्र बी भूमि कर 'बीघोडी' लिया जाने लगा था।[1] यह-लाखड (लकड़ा) कूड़ नीवाण (कुए) हलोटी सिगोटी (हल तथा बैल) तथा बीड की लागत पूर्व परम्परा के अनुसार राजस्व में प्राप्त की जाती रही थी। किन्तु नकद परम्परा के प्रारम्भ होने से इसका भुगतान जिन्स में अथवा नकद मूल्यांकन के आधार पर यह लाखड प्रति बीघा 1 रुपया कूड़ नीवाण पर 8 आना प्रति ढाणा तथा बीड पर 4 आना से 8 आना प्रति बीघा लिया जाता था।[2]

भूमि बन्दोबस्त एवं राजस्व

राणा सज्जनसिंह के काल में नकद तथा जिन्स की भू राजस्व व्यवस्था के दोषों को दूर करने तथा राज्य की सम्पूर्ण भूमि का पक्का बन्दोबस्त करने के लिए ब्रिटिश भारत सरकार के एक प्रशासनिक अधिकारी मिस्टर विंगट को नियुक्त किया गया। उसने मेवाड़ के कुछ अत्यधिक उपजाऊ क्षेत्र[3] का सर्वेक्षण करने के बाद 1884 ई में अपना प्रतिवेदन राणा को प्रस्तुत किया जिसे कि राणा द्वारा कार्यवाही हेतु स्वीकार कर लिया गया।[4] किन्तु इसी समय में राणा सज्जनसिंह के आकस्मिक निधन के कारण राणा फतहसिंह के काल में 1886 ई के लगभग इस बन्दोबस्त के अनुसार लगान लिया जाने लगा था।[5] इस बन्दोबस्त के अनुसार लगान अलग अलग क्षेत्रों

---

1 टॉड कालीन (1818 ई से 1822 ई) मेवाड़ में व्यापारिक फसलों पर प्रति 100 रुपया उपज पर 2 रुपया से 6 रुपया तक राजस्व में बीघोडी लिया जाता था (एनाल्स भा 1 पृ 582) किन्तु इसके पश्चात् अलग-अलग फसलों के अनुसार बीघोडी लिया जाने लगा था— वी वि पृ 150

2 ब रि उपरोक्त जमा बहियाँ एनाल्स भा 3 पृ 1628

3 छोटी सादड़ी गीर्वा की दो तहसीलें, जहाजपुर, कपासन मांडलगढ़, राजनगर हुरडा।

4 वी वि पृ 2192-2193, मेवाड़ एजेन्सी पृ 73-74

5 इस बन्दोबस्त के पूर्व 1877-78 में मेवाड़ के तत्कालीन प्रधान महता पन्नालाल ने स्थाई बन्दोबस्त की पैमाइश प्रारम्भ कराई थी किन्तु तीव्र जन-विरोध के कारण यह पैमाइश बन्द कर देनी पड़ी। नकद राजस्व प्रदान करने के लिए राणा सज्जनसिंह को कई बार किसानों को व्यक्तिगत समझाना पड़ा था। राजपूत एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट 1880-1881 ई प 31, वी वि, प 2192 2193, उ ई भा 2 प 821

में अलग अलग निर्धारित किया गया था—[1]

क्षेत्र	पीवल पुराना कुँआ	नया कुँआ	पडत असिंचित प्र बीघा
1 छोटी सादडी	10 रु से 15 रु	7 रु से 8 रु	1रु से 1रु 8आना ,,
2 गादा	5 रु से 6 रु	12 आ से 1 रु	अनुपलब्ध

इस बन्दोबस्त को कुछ सुधार कर आलोच्यकाल के अन्तिम समय मे भूमि के अनुसार भी लगान दर अलग अलग निश्चित किया जाकर पूर्व बन्दोबस्त में सुधारात्मक वर्गानिक वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया गया था,[2] यथा—

भूमि की श्रेणी	भूमि का प्रकार	लगान दर रु आ से		रु आ तक	
1 श्रेष्ट	पीवल	3	×	15	×
	पडत	×	6	6	×
2 मध्यम	पीवल	1 =	8	12	×
	पडत	×	3	4 =	8
3 साधारण	पीवल	×	9	9	×
	पडत	×	1 = 2 पैसा	×	15
4 मगरा	पीवल	1 =	14	7	×
	पडत	×	1 = 2 पैसा	2 =	4

इस बन्दोबस्त में व्यापारिक फसलों पर अफीम के उत्पादन पर 3 रु से 12 रुपया प्रति बीघा कपास पर 1 रु 2 आना से 7 रु 8 आना प्रति बीघा गन्ने पर 6 रु 2 आना से 22 रु 8 आना प्रति बीघा लिया

1 *मेवाड रजीडेन्सी, पृ 73-74 । यह राशि ब्रिटिश सरकार में उल्लेखित प्राप्त होती है* जो कि मेवाड के प्रचलित 1 रु 5 आना 2 पैसा = ब्रिटिश भारत सरकार का 1 रुपया रहा था । 1899-1900 ई में इसका अवमूल्यन 1 रुपया 12 आना मेवाडी सिक्का = ब्रिटिश 1 रुपया हो गया था—देवीलाल पालीवाल मेवाड एण्ड दी ब्रिटिश पृ 245

2 मेवाड रेजीडेंसी पृ 73-74

जाने लगा था।[1] बन्दोबस्ती क्षत्रो के अतिरिक्त शेष क्षेत्रों में नकद अथवा जिन्स की चली आ रही व्यवस्था चलती रही थी।

निष्कर्षत उपरोक्त बन्दोबस्तो द्वारा राज्य की भू राजस्व आय मे वृद्धि करने का प्रयत्न किया गया था किन्तु जनता ने इस वैज्ञानिक पद्धतियो को पूर्णत अंगीकार नहीं किया। इन बन्दोबस्तो म जातिवादी भू-राजस्व को पूर्णत समाप्त कर सभी को एक श्रेणी म रखने का प्रयास निहित था किन्तु फसल का वर्गीकरण नहीं किया जाना इसका सबसे बडा दोष रहा था। राजस्व की नकद अदायगी तथा ऊँची राशि न राज्य म प्रचलित लाग-बाग प्रथा के अनौचित्य के प्रति प्रजा का ध्यान आकर्षित किया था।[2] बन्दोबस्त का सर्वाधिक प्रभाव बिचौलियों की भ्रष्ट कार्यवाहियो पर पडा। इसके पूर्व राजस्व वसूली म जो मनमानियाँ की जाती थीं बन्दोबस्त के द्वारा नियन्त्रित होने लग गई थी। बन्दोबस्त की प्रत्यक्ष वसूली से वश्य महाजन जाति की राजस्व वसूली भूमिका समाप्त होने लगी थी। अत उनका काय मात्र लेन-देन तक सीमित होने लगा था। किन्तु यह बन्दोबस्त 1899-1900 ई के छप्पनिया काल' के कारण अधिक दिनो तक नहीं चल सका था। इस अकाल म कृषि उपज की 90% हानि हुई थी अत किसान राजस्व देने म असमर्थ हो गय। इसके अतिरिक्त विभिन्न लाग बाग के नकद और जिन्स के अप्रत्यक्ष कराधनो ने भी जन जीवन के आर्थिक भार को बढा दिया था।

अन्य राजस्व लाग बाग

आलोच्यकालीन भूमि अनुदान अभिलेखों तथा पट्टो म अनुदाना द्वारा भाग-भाग (भू-राजस्व) के साथ साथ लागत विलगत' भी अहिता को अनुदान म दिय जात रह थ। यह लागत विलगत क्या थी ? इसका कोई स्पष्ट उल्लेख अनुसन्धान म नहीं होता था। आधुनिक काल म भी लागत शब्द लोक-वाणी व्यवहार म प्रचलित है जिसका शाब्दिक अर्थ 'मूल्य होता है। मूल्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आर्थिक अभिधारणा स लगाया जा सकता है। इसी प्रकार विलगत के माने परम्परा' होता है। इन दोना अर्थो को संयुक्ताथ म प्रयुक्त किय जान पर इसका मतलब 'परम्पराई मूल्य' होगा। लागत विलगत का अपभ्रंश धीरे-धीरे कालान्तर म लाग बाग से प्रचलित होना मान लिया

---

1 यह शोध 1930 ई के लगभग ट्रेंच द्वारा किये गये बन्दोबस्त म समाप्त किये गये थे—मेवाड हाल रजि न 1932, रा रा अ उ

2 द्रष्टव्य—लाग बाग अनुच्छेद।

जाय तो लाग-बाग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।[1] माणिक्य लाल वर्मा के अनुसार प्राचीन काल मे लाग बाग शासक जागीरदार तथा प्रजा के मध्य हार्दिक और उत्सर्गिक सम्बन्ध प्रकट करने वाले व्यवहार थे। प्रजा द्वारा उनकी रक्षार्थ सेना नायको और वीरो को कई प्रकार की भेंट स्वेच्छापूर्वक प्रदान की जाती थी।[2] अत लाग बाग मूलत परम्पराई सामाजिक आर्थिक उपहार थे। समय के साथ इनकी उपहारीक स्थिति शुल्क के रूप मे परिवर्तित होने लग गई थी। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि मराठा अतिक्रमण, जागीरदारी स्वेच्छाचारिता एवं मुकाता प्रणाली ने प्राचीनकालीन सात्विक लागो को 18 वी शताब्दी मे विकृत बना दिया था। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यदि इन लाग-बाग के प्रति जन अभिधारणा का अध्ययन किया जाय तो मेवाड की स्थिति के लिए निस्सदेह कहा जा सकता है कि मराठा अतिक्रमण काल के अतिरिक्त 19 वी शती के एक दो दशक पूर्व तक लोगो मे इनके प्रति कोई विरोध नही था।[3] किन्तु ज्यो ज्यो राजस्व की वसूली मे मुद्रा का प्रसार बढा त्यो त्यो लाग बाग मे भी नकद प्राप्त करने की कार्यवाहियाँ प्रारम्भ हुई। नकद भुगतान नही करने की अवस्था म जिस को प्रचलित बाजार मूल्य म परिवर्तित कर नकद का मूल्याकन कर लिया जाता था। इस मूल्याकन म प्राप्त जिन्स परम्पराई प्रचलन मात्रा के ताल से अधिक होता था। अत 1900 ई तक लाग-बागो के प्रति लोगो म आक्रोश उत्पन्न होने लग गया था। इस आक्रोश मे भारत मे पनप रहे तात्कालिक जन-जागरणो ने हिस्सा बटाया, परिणामत मेवाड मे किसान आन्दोलन की भूमिका का

---

1 माणिक्य लाल वर्मा के अनुसार परम्परागत नियमो द्वारा अनिवार्य एव वाछित देय लाग थी एव अनिवार्य से जो बिना पारिश्रमिक प्राप्त किये देना पडती थी वह बाग कही जाती थी (बीजोलिया सत्याग्रह का इतिहास, अप्र ह प्र पृ 5) किन्तु इसमे स्व वर्मा द्वारा 'बाग' का अर्थ बेगार से लिया भ्रमपूर्ण है क्योंकि मेवाड की प्रचलित बोल-चाल मे वेठ-बेगार अलग से ली और दी जाती थी।

2 बीजोलिया सत्याग्रह का इतिहास—पृ 5, बीजोलिया रिकार्ड—रा रा अ बीकानेर।

3 यदि लाग बाग के प्रति जनाक्रोश होता तो वह राणा शम्भूसिंह के शासन मे होने वाली 1864 ई की प्रथम हडताल तथा राणा सज्जनसिंह के काल की हडताल से स्पष्ट हो सकता था। वी वि पृ 2069-2070 2195 उ ई भा 2 पृ 791

निर्माण प्रारम्भ होने लग गया था।[1] फलत राणा भूपालसिंह के द्वारा 1932 ई मे नई लाग बाग समाप्त कर दिये गये।[2] फिर भी जागीर क्षेत्र तथा सामाजिक परम्पराओं में यह पूर्णत नष्ट नहीं हुए। आधुनिक काल में ब्याह शादी पर लिये जाने वाले जाति दस्तूर, दूढ पर लिया जाने वाला सामाजिक शुल्क, कमोण-काडमा की लागत आदि इनकी उपस्थिति के चिह्न हैं।

विभिन्न जागीरो तथा खालसा क्षेत्रो म लाग-बाग की निश्चित समानता नही रही थी अत हम सम्पूर्ण राज्य म प्रचलित लाग बाग को निम्न बिन्दुओ म वर्गीकृत कर सकते हैं—

(क) कृषि उत्पादन लागत

प्रत्येक फसल पर ग्राम स्वामी अथवा भू-दाता द्वारा किसान से 'रसाला की लागत' प्राप्त की जाती थी।[3] इसमे फसल के प्रकारानुसार मक्की का पूला, उम्यां (गेहू) की पूला फेंकडा (जवार) की पूली लिलवा (कच्चे चने) की पूली साठा (गन्ना) रा भारो गोल (गुड) री भेली, रस री गवड (गन्ने के रस स भरी मटकी), कीर जाति के किसानो से कांदा (प्याज), काकडी आदि लिया जाता था।[4] फसल पकने तथा काटी जाने से पूर्व कूपा और खुची की लागत किसानों स प्राप्त की जाती थी।[5] नकद वसूली मूल्य के प्रचलन होने क पश्चात् बीघाटी (प्रति बीघा) उपज पर प्रति बीघा 1 आना,

---

1 बीजोलिया आन्दोलन के पूर्व मात्रीकुण्डया नामक धार्मिक स्थान पर राणा फतहसिंह के शासन म कृषक-एकता एव जागरण की स्थिति उत्पन्न हुई थी। उ ई भा 2 पृ 852 क एस सक्सेना—राजस्थान म राजनीतिक जन जागरण पृ 40 41

2 कर्नल टॉड ने 4 मई 1818 ई को मेवाड ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समझौते के पश्चात् लाग बाग के प्रचलन को रोकने का प्रयत्न किया था। इसके पश्चात् भी अत्याचारी लाग बाग' को प्रशासकीय वर्ग द्वारा कई प्रयत्न किये जाने के बाद भी रोका नही जा सका था। एनाल्स भा 1 प 240, 564 ट्रीटीज एँगेजमेन्ट खण्ड 3 पृ 43-54 सरक्यूलर रजिस्टर स्टट महक्मा खास भा 1 प 250

3 शोध पत्रिका वर्ष 20 अक 2 (अप्रल जून 1969) प 74

4 उपरोक्त।

5 एनाल्स भा 2 प 596 646, उ ई भा 2 प 757

हांगोनी (एक हून = 50 बीघा) पर प्र वा 4 आना लिया जाता रहा था। कण (कपास) की फसल पर दुपुनो बीघाड़ी म 2 रुपया प्रति बीघा अथवा कण कराद् लिया जाता था। इसी प्रकार हरी वनस्पतियों पर छेनरा री लागत लगती थी।[1] यदि कृषक के पास घास की बीड़े मे स पशु आहार के लिये कड़बा, घास, पायलो एवं रचका देना पड़ता था। व्यापारिक फसल का उपज वाले किसानों से अफीम की खेती पर पोस्ता का दूध, तम्बाकू पर चिलम भराई प्राप्त की जाती रही थी। मण अथवा अम्बाड़ी की उपज पर प्रति मण पर 2 सेर सण या एक रस्सी अथवा 2 आना, खाट (माचा) की निवार (वाण) के लिये मीणा जाति स प्रति घर एक कुण्डला या 12 आना प्रति कुण्डला लागत लगती थी।[2] रोखड़ भूमि पर पशु चराने वाले बावरी तथा अन्य गोचरी करने वाली जातियों से लागत 'छपरा' तथा भेड-बकरी द्वारा बबूल तथा अन्य पड़ो की चराई पर छाला व गाडरा चराई प्रति पूछ चार आना से दो रुपय तक होती थी।

कूता की लागत इसम फसल का लाटा-कूता के समय उगाई कूता अथवा कूता कराड प्रति आसामी 1 रुपया राजस्व निर्धारण करने वाला अधिकारी स लेता था। नकद प्राप्त की जाने वाली लागतों म प्रति हल रोकड रुपया, लाटा या भाग के अतिरिक्त जिस तुलाई पर 'नमण' तथा नीचे बिखरने वाला अनाज भोगवती तथा एक सेर पर एक मुट्ठी कबूतरा (कपोत) लागत ली जाती थी। यह लागत धर्मार्थ दान-पुण्य के निमित्त होती थी। लाटा करने के लिये आये हुए कर्मचारियों की रसद हेतु प्रति मन एक सेर 'अक्ताला' लिया जाता था। यह कर्मचारियों की ईमानदारी पर निर्भर रहता था कि वह अक्ताला-लागत को अधिक या कम वसूल करें क्योंकि इसका 10% हिस्सा शासक अथवा जागीरदार द्वारा लिया जाता था। लाटा कूता पर नियमित राजस्व में मेरण के अन्तर्गत कुँवर-सूखडी, पटेल-पटवारी सहना, कामदार रसोईदार, घड़िया का मटका तथा ग्राम सेवकों म नाई बलाई मंदिर सेवक, आदि का कड़पा लिया जाता रहा था।[3] दफ्तर या कचड़ी खर्च मे खाते की लागत स्याही पाठा के लिए 6 आना स 1 पैसा प्रति रुपया, बीघोड़ी फसल नापने पर डोरी घिसाई डोरी नजराना के लिये प्रति आसामी 1 रुपया पटवारी द्वारा लिया जाता था।[4]

---

1 शोध पत्रिका वर्ष 20 अंक 2 (अप्रेल जून 1969) पृ 74
2 फहरिस्त लाग बाग फाईल 31/ए रा रा अ बी उपरोक्त, पृ वही।
3 एनाम मा 3 पृ 1625 शोध पत्रिका—उपरोक्त पृ 75, 78 79
4 व रि बड़ा बही, वि स 1904, बस्ता 1, उपरोक्त पृ 79-80

शासक द्वारा अपने जागीरदारा से वसूली जाने वाली लागता म खड-लाखड रसद, नजराना प्‌ ता फौज बराड ग‍न बराड भूम बराड, खडणी, मुण्डकटी आदि कालानुसार घटाई बढाई जाती रही थी ।[1]

(ख) वाणिज्य व्यवसाय एव आवास लागत

वाणिज्य-व्यवसायो पर लिये जाने वाल इन अनियमित करो की मात्रा निश्चित नही रही थी। व्यवसायिक लागतों मे कोयला बराड कपडा व्यापारिया से दूध दही वालो से जावण दूध रो लोट्यो (बतन), तलियो से तेल-पाली गाडरी और खटीको से बकरा मधु विक्रताओ से दुवारा बातल' सोने चादी के व्यापारियो से टांका' आदि लिया जाता रहा था। लुहार और सुथार से कुरछी-दातली, एरन पट्टा लकडा पट्टा चमारा से जूतियां, बलाईया से रजा का थान लखारो से लाख पट्टी चूडियां आदि, कुम्हारो स भाडा (बतन) क‍दोई और भडभूजा से भट्टी और भाड की लागत प्राप्त की जाती थी।[2] 19 वीं शता‍दी के उत्तराद्ध से यह लागतें नकद ली जान लगी थीं।[3] ग्राम विवरण के अनुसार जहाजपुर परगना की लागत जमा का विवरण उदाहरणाथ प्रस्तुत है[4]—

लागत महाजन जाति से 125 रुपया सेरादियो से 4 रुपया 2 आना 2 पैसा कीरो (कृषिकारी जाति) से 20 रुपया, कलालो मे 45 रुपया खटीको से 24 रुपया पीनारा (पिंजारा) से 2 रुपया 8 आना, बोला (चमकार) से 58 रुपया, बलाई (कपडे बुनने वाले) से 13 रुपया, नीलगर (रगाई करन वाले) से 10 रुपया 12 आना, गूजर (दूध दही का धधा तथा कृषि काय) 22 रुपया, सुनारो से 20 रुपया। इसी प्रकार 8 आना प्रति भस 1 आना प्रति भैंसा, 4 आना 1 पसा प्रति बल 2 पैसा प्रति छाली (बकरी) 1 पसा

---

1 फहरिस्त लाग बाग फाईल 31/ए, रा रा अ बी राजस्थान हिस्ट्री काग्रेस, खण्ड 8 1975 पृ 89

2 ब रि जमा बही वि स 1777 1901-1904, मण्डी री पीठ बही वि स 1931-1932, पडाखा बही, वि स 1956 बस्ता 1, 3 6, 7 8

3 महता सग्रामसिह कलेक्शन फाईल 9 12, बस्ता 1, ममोईर आफ से‍ट्रल इण्डिया भा 2, पृ 7

4 उपरोक्त—जहाजपुर परगना री लागत रो नामो तथा श्यामलदास कलेक्शन—खारी काना अमद री चिट्ठी।

प्रति भेड (गाडरा) लिया गया था। इस विवरण से तथ्य निरूपण होता है कि बढ देने वाली व्यवसायी जातिया स लागत कम तथा वश्य एव कृषिकारी जातिया से लागत अधिक ली जाती थी।

ब्राह्मण जाति से भी 19 वी शती मे पूछी और काशीवास की लागत ली जाने लगी थी।[1] किन्तु इसके मूल्य निर्धारण का विवरण प्राप्त नही होता है। आवास लागतो मे घर गिनती बराड, चूल्हा बराड जनगणना के समय मु डया और गाव गजरा की लागत लगाई जाती थी।[2]

(ग) धर्माथ एव सामाजिक लागत

मन्दिरो और देवताओ के निमित्त भी प्रजा से धर्माथ लागतें प्राप्त की जाती थी।[3] यह द्रव्य धर्माथ और मदिर सेवाथ ही खच किया जाता था। श्रीनाथ जी री लागत का कही कही पर प्रति घर 1 रुपया लिया जाता था।[4] स्थानीय देवताओ के लिये प्रति घर 8 आना केलु देवरा नाम स।[5] इसी प्रकार केशरिया जी की कशर री लागत, गढबोर री लागत, चन्दन री लागत तथा उपरोक्त वर्णित कबूतरा लागत एक सेर प्रति मन उपज अथवा 8 आना से 1 रुपया तक वसूली जाती थी। धर्माथ प्राप्त लागत, पावणा' कहलाती थी।[6] जागीरदार राणा अथवा प्रजा के गृह उत्सव विवाह, मृत्यु या किसी भी प्रकार के सामाजिक कार्यों पर लागत-नेग प्रजा से लिय जाते थे। पुत्र विवाह पर बीद पगेलागणी पुत्री विवाह पर 'ब्याह चँवरी, पुनर्विवाह पर नाता कागली, विवाह विच्छेद पर 'फारगती फाडो', शादी या मत्यु भोज

---

1 महकमा खास रिवाड—मिसल सख्या 23416, रा रा अ उ, शोध पत्रिका—उपरोक्त, पृ 82

2 उपरोक्त।

3 मेहता सग्रामसिह कलेक्शन, फाईल 9 बस्ता 1 व रि देवस्थान वही, वि स 1924, बस्ता 3

4 महता सग्रामसिह कलेक्शन, फाईल 9, बस्ता 1, एनाल्स, भा 2, पृ 647-648

5 उपरोक्त।

6 व रि वही वि स 1910, बस्ता 1 शोध पत्रिका—उपरोक्त पृ 77 83

पर 'कांसा' लिया जाता था।[1] जागीरदार गांव प्रमुख अथवा राणा के अतिथियों के स्वागत सत्कार हेतु 'पावणा पावरा' शादी गमी पर 'पाग', 'खोल', तथा जूता', गांव गोठ होने पर गोठ के नेग प्रत्येक ग्राम निवासी को देने पड़ते थे।[2] यह नेग यदि जागीरदार की इच्छा होती तो रख लेता था अन्यथा स्वीकार मानते हुए लौटा देता था। इस लौटाने के पृष्ठ में स्वत्त्व ध्य से मुक्ति की भावना रहती थी क्योंकि इन नेगों के स्वीकार करने पर उसे पुन आर्थिक प्रतिष्ठानुसार महमानी नेग देने पड़ते थे। यह नेग-परम्परा शासक और शासित स्वामी तथा दास राजा और प्रजा के मध्य स्वामी भक्ति और प्रजा के कर्तव्यों की सामाजिक आर्थिक दृष्टि से सामुदायिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति थी। किन्तु आलोच्यकाल में इन मधुर सम्बन्धों का व्यवहार परम्परात्मक प्रतिबद्धता द्वारा थोपा जाने लगा था।[3] जब 1894 ई में बीजोलिया के जागीरदार ने ब्याह चँवरी के निमित्त अपनी पुत्री के विवाह पर 5 रुपया प्रति घर लिये जाने का आदेश दिया तब प्रजा द्वारा इसका प्रबल विरोध किया गया। यद्यपि 1899-1900 ई के अकाल के फलत यह विरोध कुछ समय के लिये दब गया था किन्तु इसका प्रभाव 1921 ई के बीजोलियां आन्दोलन में दिखाई देता है।[4]

(घ) आयात निर्यात एवं बिक्री लागत

माल एक जगह से दूसरी जगह ले जाने और राज्य से बाहर भेजने और लाने पर दाण, मापा और बिस्वा के प्रचलित राजस्व के साथ कई प्रकार की लागत ली जाती थी। ऐसी लागत प्रति बलगाडी, प्रति बैल या घोड़या गधा ऊँट पर लिया जाता रहा था। भैसे पर माल लदाई तथा लाने लेजाने पर प्रति भैसा 1 पैसा टकी पाडा प्रति 100 बैल पर 1 रुपया टकी बालद लिया जाता था। अलग अलग द्रव्यों पर अलग अलग लागतों में जिन्स अथवा

---

1 फहरिस्त लाग बाग फाईल 31/ए सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महक्मा खास भा 1 पृ 250, न 89727/20 एफ
2 फो फो (सीक्रेट) क 596 पी 1, 1922-23 ई, शोध पत्रिका, उपरोक्त, पृ 76
3 बीजोलियां सम्बन्धी कागज—माणिक्लाल वर्मा की डायरी (ह प्र)। सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महक्मा खास, भा 1 पृ 250
4 बीजोलिया सम्बन्धी कागजात, बीजोलिया सत्याग्रह का इतिहास (अप्र), पृ 69

नक्द लिया जाता था।[1] कई जागीरदार अपने जागीर क्षेत्राधीन गुजरने वाले व्यापार काफिलों पर रखवाला तथा बोलाई की लागत लेते थे।[2] साधारणत आलोच्यकाल के उत्तरार्द्ध मे दाणी चातरो पर 1 रुपया प्रति गाडी चौतरा लागत, धान की गाडी पर प्रति गाडी 2 आना गुड की गाडी पर प्र गा 4 आना गधा बोझ पर प्रति गधा 2 पैसा, एक बैल के बोझ पर 1 आना लिये जाने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[3] मेवाड राज्य मे गंगापुर के 10 गावो का क्षेत्र ग्वालियर राज्य के अधीन था, अत वहा से व्यापारिक आयात निर्यात पर भिवरती, मनवाड आदि के जागीरदार धुल उडाई की लागत लेते थे जो प्रति रुपया 1 पैसा थी।[4] पशुओं के क्रय-विक्रय पर सिंगोटी की लागत, भूमि विक्रय पर क्रयकर्त्ता से खतलार की लागत वसूल की जाती थी जिसकी मात्रा का विवरण प्राप्त नही होता है। बोली लगाने वाले से दलाली तथा जाजम की लागत लेने की परम्परा भी राज्य में विद्यमान थी। घास-लकडी के बेचान पर 'काठ' तथा जमीन जायदाद बेचन पर 'जगात' लिया जाता रहा था।[5]

(ड) अन्य लागत

राज्य कर्मचारियो द्वारा अपने स्वामी को भी कई लागत देनी पडती थी। सहना बलाई नम्बरदार की नियुक्तियो पर पट्टा री लागत पटलो से पाग बधणी, पटेल-नेग तथा राज्याधिकारियो से लिये जाने वाले दंड और नजराने लागत का स्वरूप ही थी। आलोच्यकाल मे गामोटा री लागत चबूतरा री लागत नामक पचायती नेग (भेंट) के लिये प्रति घर 1 पैसा लिया जाता

---

1 नाथूलाल व्यास सग्रह—रजि न 7, पृ 41-44, सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महकमा खास भा 1 पृ 250

2 द्रष्टव्य—उद्योग वाणिज्य-व्यापार मे उल्लेखित चुगी व्यवस्था दाण कस्टम फाईल—दाण बस्ता 1 व 2 रा रा अ उ।

3 शाहपुरा राज्य की ख्यात (अप्र) खण्ड 3 पृ 63-64 जमनेश ओझा—मेवाड का इतिहास (अप्र शो) पृ 550

4 सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महकमा खास भा 1 पृ 253 न 1291। यह लागत 1932 ई मे बन्द कर दी गई थी।

5 नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 12, पृ 10 (वि स 1806 का पत्र), शोध पत्रिका—उपरोक्त, पृ 81-82 जर्नल आफ दी राजस्थान इन्स्टीट्यूट आफ हिस्टोरीकल रिसर्च, भा 4, अक 4, पृ 10-20

था।[1] मनुम्धर जागीर में जागीरदार द्वारा कर्मचारियो को पदोन्नति देने के लिये लागतें ली जाती थीं। इन लागतो को 'उपरकराई' कहा जाता था। राज्याधिशो अथवा शासन के पत्र व्यवहार की डाक व्यवस्था हेतु 'कासीद-बराड' लिया जाता था। रुपयो की जाँच परखाई पर कसौटी अथवा टच, ऋण लेन पर हुण्डी री लागत अथवा भरणा वसूली की लागतें लगाई जाती रही थीं।[2] सभवत सिक्का के अधिक प्रसार तथा वणानिक टकसाला के प्रभाव स्वरूप खोट सिक्को के निर्माण पर नियन्त्रण रखने के लिए परख या कसौटी लागत का प्रचलन किया गया था।

प्रजा द्वारा लाग बाग का भुगतान नहीं करने की अवस्था मे भूमि स्वामी या ग्रामपति द्वारा धौंस रोजीना और दस्तक की लाग लगाई जाती थी।[3] इसका विस्तृत विवरण सामन्तशाही प्रकरण में उल्लखित किया जा चुका है कि इनम किय गये व्यय तथा बकाया नही चुकान की अवस्था म सम्पति को कब्ज या जब्त कर लिया जाता था। जब तक ऋण की अदायगी नही होती तब तक बधक सम्पति का उपभाग ऋणदाता या लाग लगाने वाला व्यक्ति करता था।[4] छोटी-छाटी कृषि भूमि पर कृषको की बकाया लागता पर अधिकतर ऋणदाता स्थायी अधिकार जमा लेते थे। ऐम ऋणदाताओ म वश्य महाजन जाति के लोग प्रमुख होत थ।

लाग बाग का आर्थिक जीवन पर प्रभाव

लाग बाग का निश्चित मूल्याकन नही होने के कारण वह मनमाने ढग से घटाय-बढाये जा सकते थे। आलोच्यकालीन राजनीतिक अव्यवस्था के परिणामस्वरूप इन परम्पराई राजस्वो म निरन्तर वद्धि होती रहा थी। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि और कृषक जीवन पर पडा था। कृषक को राजस्व

---

1 महता सग्राम सिह कलेक्शन—फाईल 1 बस्ता 1 श्यामलदास कलक्शन, खारीवाली आमद रो चिट्ठो ..

2 शोध पत्रिका—उपरोक्त पृ 79 81 84

3 एनाल्स, भा 1 पृ 230 241, ट्रीटीज ऐंगजमण्ट, भा 3 पृ 44 47 उ ई भा 2 पृ 736

4 ऐसी प्राप्त सम्पत्ति (भूमि) को ऋणदाता द्वारा अन्य को अपन ऋण पेटे अथवा धर्मार्थ प्रदान कर दिया जाता था। ऋण चुकने की अवस्था म यह भूमि पुन लौटा दी जाती थी—सहीवाना भा 1 पृ 5 7, कोठारी पृ 33 37

प्रदान करने के पश्चात् 15% लाभांश प्राप्त होता था।[1] जिसमें से 7% हिस्सा लाग बाग में चला जाता था शेष 9% में उसे कृषि व्यवस्था परिवार-पोषण, ऋण अदायगी तथा जाति-समाज के सामाजिक आर्थिक कार्य करने पड़ते थे। अन्य कृषक जीवन में बचत का प्रश्न ही नहीं उठता था। यही कारण था कि मेवाड़ का अधिकतर कृषक-वर्ग दरिद्र एवं असित् जीवन व्यतीत करता था। उसे अपनी जीविका और पारिवारिक आर्थिक व्यवस्था हेतु वैश्य महाजन या बोहरों की ओर ताकना पड़ता था। ऋणदाताओं का यह धनाढ्य वर्ग प्रदत्त राशि पर चक्रवर्ती ब्याज के चक्र से कृषकों को बाहर नहीं आने देता था। यह चक्र पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता था। अन्ततः स्वयं की कृषि भूमि पर किसान ऋण प्रदाता साहूकारों या अन्य व्यक्ति का 'हाली' (कृषि मजदूर) बनकर रह जाता था या फिर भूमिहीन होकर कृषि मजदूरी का पेशा अपनाने पर मजबूर हो जाता था।[2] लाग बाग का प्रभाव शिल्पी तथा दस्तकारों पर कृषकों जैसा नहीं था फिर भी इनकी स्थिति किसानों से अधिक भिन्न नहीं होती थी। कुशल श्रमिकों के रूप में इनसे लागतों के स्थान पर बैठ-बेगार ली जाती थी। इन बेगारों में इनसे कठोर श्रम कराया जाता था और बदले में लाग से मुक्ति दी जाती थी।[3] इस प्रकार बगैर आर्थिक उपार्जन के उनका बेगार करना उनकी आर्थिक स्थिति और परिवार की अर्थ-व्यवस्था को प्रभावित करता था। जहां कृषक लाग-बाग के अतिभार को वहन करते-करते हाली बन जाता था, वहां कुशल श्रमिक, सामान्य श्रमिक रूप में चाकर बन जाता था। लाग-बाग का सर्वाधिक लाभ कुलीन या अभिजात वर्ग वैश्य-साहूकारों तथा राज्याधिकारियों को रहता था। वे लाग-बाग की मूल्यांकन अनिश्चितता के फलतः मनमाने करारोपण करते थे एवं महाजन-कृषक, शिल्पी तथा अन्य जातियों की लागतों को देते हुए एवज में उनकी सम्पत्ति के स्वामी बन जाते थे। इस प्रकार साहूकारों को दोहरा लाभ प्राप्त होता था कि सम्पत्ति ब्याज में ही अधिकृत हो जाती एवं मूल धन वैसा ही ऋण ग्रहिता पर बकाया रहता था। राज्य द्वारा इस स्थिति को सुधारने का कोई प्रयत्न आलोच्यकाल में नहीं

---

1 द्रष्टव्य—राजस्व अनुच्छेद यही अध्याय।

2 महता संग्रामसिंह कलेक्शन फाईल 221-259 बस्ता 14, श्यामलदास कलेक्शन पत्र क्रमांक 662, सो ला मो रा, पृ 300-301

3 फहरिस्त लाग बाग फाईल 31/ए

किया गया था।[1] यही कारण है कि 19 वी शताब्दी के पश्चात् मेवाड़ के जन-जीवन में बोहरा गत काम करने वाला वर्ग एवं मुख्य रूप से वैश्य-महाजन जाति समाज नियंता के रूप में दिखाई पड़ते थे।[2] इस वर्ग के अधिकार में हजारों बीघा जमीन गिरवी पड़ी हुई थी जिसके यथार्थ स्वामी स्वयं की भूमि को हाजारे पर अथवा हाली की श्रेणी में सींच रहे थे।

वैंठ बेगार

लाग बाग के जैसे ही वेठ बेगार भी राजस्व शुल्क था। यह शुल्क शारीरिक सेवा के रूप में लिया जाता था। मनुस्मृति के अनुसार शिल्पियों द्वारा भूमि अथवा शिल्प 'कर' नहीं चुकाने की अवस्था में राणा या स्वामी को ऐसे बकाया 'कर' के लिये स्वसेवाएँ प्रदान करनी चाहिये। इन स्व-सेवाओं को मनु ने 'विष्टी' (वेठ) कहा है।[3] कालान्तर में यही विष्टी जो कि बगैर पारिश्रमिक और बाधित होती थी, बेगार कहा जाने लगा था। मेवाड़ में प्रचलित वैंठ-बेगार प्रथा उपरोक्त दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करती थी। इस प्रथा का अत्यधिक प्रचलन का मुख्य कारण भू अनुदानों सामंतिक व्यवस्था थी। भूमि स्वामी अपने स्वत्व प्राप्त भूमि के भू राजस्व तथा अन्य प्राप्त राजस्व प्रति को ग्रहण करने का अधिकार इच्छानुसार किसी को भी देने के लिये स्वतंत्र था अतः ऐसा भूमि के कृषक या शिल्पी दस्तकार अधिकृत स्वामी या मुकातदार की शारीरिक श्रम सेवा देने के कर्त्तव्य से आबद्ध हो जाते थे।[4] इसके अतिरिक्त लाग बाग प्रभावित कर्जदार लोगों से ऋण प्रदाता स्वामी द्वारा बाधित श्रम सेवा प्राप्त की जाती थी। यह ऋण हाली अपनी भूमि अथवा अन्य कारणों से प्राप्त ऋण चुकता करने के पश्चात् दासत्व से मुक्त कर दिये जाते थे किन्तु ऐसे अवसर कम ही आते थे। यह परम्परा सागड़ी प्रथा कहलाती थी।[5] कुम्भलगढ़ परगना के प्रत्येक गाँव में

---

1 महाजन वर्ग को अधिक समर्थन प्रदान करने की आंग्ल नीति का दृष्टान्त, द्रष्टव्य—ट्रीटीज एँगजमेंट भा 3 पृ 49-54 धारा 10 एवं 25

2 उ ई भा 2 पृ 850 मेवाड़ का राज्य प्रबंध पृ 59 127-128

3 भारतीय सामंतवाद से उद्धृत प 49-50

4 एनाल्स भा 1 प 237 प प्र स 9-10

5 सागड़ी प्रथा में अभी तक कई ऋण बंधक हाली उदयपुर संभाग में विद्यमान हैं 1975 76 ई में राजस्थान सरकार द्वारा इसके उन्मूलन हेतु अभियान चलाया था किन्तु पूर्ण सफलता अभी भी प्राप्त नहीं हो सकी है। इस प्रथा में बंधक जमीन के ऋणग्रस्त किसान पीढ़ी दर पीढ़ी ऋणदाता के वंशज की सेवा करते रहते हैं। मूल ऋण का मूल्य चुकता होने पर भी वर्षों पूर्व लिया गया ऋण चिरऋण बना रहता है।

भील जाति के लोगों को ग्राम सुरक्षा एवं राजकीय कार्यों के लिए 'भूम' प्रदान की जाती थी। इन भूमिया भीलों से चौकीदारी के साथ साथ शारीरिक श्रम कार्य भी लिया जाता रहा था। इसीलिये इन्हें वेठीया भी कहा जाता था। इन वेठीयों से वेगार ली जाती थी।[1] जिस प्रकार राणा, जागीरदार अथवा ग्राममुखिया लाग बाग को कम अधिक कर सकता था उसी प्रकार अपनी प्रजा से वेगार भी ले सकता था। किसान को अपने खेतों के साथ भूमि-स्वामी के खेत जोतने और सींचने पड़ते थे गायरी जाति को गोचरी करनी पड़ती थी खाद के लिये अपनी भेड़ बकरियां स्वामी के खेतों में बिठानी पड़ती थीं सेवक जातियां द्वारा उनके घर की सफाई आटा पिसाई, आदि बेगारी कार्य करने पड़ते थे। कुम्हार जाति द्वारा पानी भरने, भाड जाति द्वारा खेतों में निराई-गुडाई करने और घास कटाई बेगार में की जाती रही थी। गढ़ कोट महल आदि बनवाने अथवा मरम्मत करने के लिए विभिन्न दस्तकारों व शिल्पियों से बाधित श्रम लिया जाता था।[2] जलाने की लकडी लाने इमारती लकडी फड़वाने आदि के लिये भील तथा अन्य सेवक जातियों से वेगार में श्रम लिया जाता रहा था। इसी प्रकार सुनार, सुथार तथा दर्जी जैसे कुशल श्रमिकों की शिल्प सेवाएँ वेगार में गिना जाती रही थीं। शिल्पियों और कृषकों के बेगार से सेवा करने का अन्य कारण आवास लागत रही थी। कोई भी व्यक्ति ग्राम स्वामी या क्षेत्र स्वामी की बगर स्वीकृति गांव छोड़ कर अन्यत्र नहीं जा सकता था।[3] यदि ऐसा करता तो यातायात के साधनाभाव के कारण शीघ्र पकड़ लिया जाता था। अतः कठिन आर्थिक परिस्थितियों से मजबूर व्यक्ति अपने क्षेत्र में जीविका-यापन दास के रूप में कार्य करने लग जाता था। ऐसे दास यदि खेत के लिये रखे जाते तो हाली और केवल गृह कार्य करने को रखे जाते तो चाकर कहलाते थे। इन चाकरों का 'रोटी दे कर काम लेने' के नाम पर रक्त दोहन किया जाता था। रात दिन समय-असमय स्वामी की इच्छानुसार कार्य करते रहना इनका कर्त्तव्य और काम लेते रहना स्वामी का अधिकार माना जाता था। 19 वीं शती के उत्तरार्द्ध में मुद्रा द्वारा वेतन पद्धति के प्रचलन से स्वामी

---

1 फो पो प्रोसीडिंग फाईल न 596 पी (सीक्रेट) 1, 1922-23 ई वी वि, प 136 राम पाण्डे एग्रेरेरियन मूवमेन्ट, प 36-38

2 राजपूताना एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट 1921 ई, फारन पालिटिकल प्रोसीडिंग—उपरोक्त।

3 टीट्रीज, एँगजमेण्ट खण्ड 3 पृ 49-54, धारा 28

द्वारा ली जाने वाली बेगार धीरे धीरे समाप्त होना प्रारम्भ हो गई थी किन्तु जागीर क्षेत्र म यह प्रथा 20 वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक चलती रही थी।

वर्तमान काल मे कृषि एव भूमि व्यवस्था का रूप बदल चुका है परन्तु आलोच्यकाल मे विवचित उपयुक्त व्यवस्था एक विशिष्ट प्रकार क आर्थिक सगठन का प्रतीक है। मेवाड के ग्रामीण क्षत्रो म यह आर्थिक व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण का एक विशेष स्वरूप प्रस्तुत करती थी। इस आर्थिक व्यवस्था के साथ जाति जुड जाने से यह व्यवस्था और भी अधिक जटिल बन गई थी। सामाजिक आर्थिक सम्बन्धो का यह स्वरूप उस समय की विशिष्ट स्थिति का परिचायक थी।

अध्याय 4

जातियाँ एव व्यवसाय

किसी भी समाज रचना में स्तरीकरण का अपना स्थान है। स्तरीकरण से हमारा अभिप्राय उस व्यवस्था से है जो किसी आधार पर व्यक्तियों को समूहों में न केवल विभाजित करती है अपितु उसके आधार पर ऊंचाई और नीचाई के स्तरों का निर्माण भी करती है। स्तरीकरण का यह रूप गतिशीलता के आधार पर या तो खुला हो सकता है या बद हो सकता है। भारतीय समाज सरचना मे स्तरीकरण का वद स्वरूप जाति व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। इस कथन की यहा आवश्यकता नहीं कि स्तरीकरण की यही व्यवस्था मूल रूप म समाज की अन्य व्यापक व्यवस्थाओं पर भी प्रभाव डालती है। जाति प्रथा का जो भी स्वरूप वतमान भारत में मौजूद है वह इस विशिष्ट स्तरीकरण का परिचायक है। आधुनिक भारत में धीरे धीरे यह सरचना भी बदल रही है पर अलोच्यकाल की व्यवस्था इस सरचना का विशिष्ट रूप था। पिछले दो अध्यायों मे आलोच्यकाल की राजनीतिक एव आर्थिक रचनाओं के स्वरूपों की विवेचना थी, इस अध्याय म सामाजिक सरचना के स्वरूप की विवेचना है।

आलोच्यकालीन मवाड की सामाजिक रचना म वर्ण व्यवस्था केवल भावनात्मक रूप मे विद्यमान रह गई थी।[1] जाति और धम इस काल म व्यवसाय और वग को प्रभावित किय हुए थे। 18 वी शती तक का मवाडी समाज, धम क आधार पर दो भागों हिन्दू और मुस्लिम धम म वर्गीकृत था। हिन्दू समुदाय म वदिक जन और आत्मवादी (जनजाति क लोग) तथा मुस्लिम समुदाय म शीया और सुन्नी उपभाग विद्यमान थ। पुन धार्मिक विभेदों के अनुसार वदिक शव, शाक्त तथा वैष्णव म, जन श्वेताम्बरी और दिगम्बरी मे व आत्मवादी भी शुद्ध प्रकृति उपासक और वैदिक प्रभा-

---

1 सुरभा मज धीर बण स्वावे धरम चतो मह वरण यह ।
मरते वद माटम क्षत्रियां क, राजा कुल सीताः रहे ॥ 3 ॥
प्राचीन राजस्थानी गीत भा 3 पृ 141 उदयपुर वणन छद (ह प्र)
छद 89 90

धालिम ईश्वरवादी के मतमतान्तरो म विभाजित थ । इस धार्मिक विभाजन के बारे म कवि श्यामलदास लिखते हैं कि शवा म सन्यासी, नाथ गोसाई, आचार्यों म कई प्रकार के भेद व्याप्त हैं, वैष्णवो म रामावत नीमावत, माधवाचार्य और विष्णु स्वामी नामक चार सम्प्रदायो म फिर रामस्नेही, दादू पंथी, कबीर पंथी, नारायण पंथी आदि कई शाखा प्रशाखाएँ फैल गई है जिनके आचारो विचारो म उपासना पक्ष की दृष्टि से अन्तर है । शाक्तो मे भी वाम मार्गी तान्त्रिक और दक्षिणायन वदिक उपासक लोग हैं ।[1] इसी प्रकार जन के दोनो मतान्तरो म मूर्तिपूजक और अमूर्तिपूजक के दो उपभेद रह थ जिनम समेगी और महात्मा मूर्तिपूजक धम गुरु तथा ढूंढिया साधु अमूर्तिपूजक धम-गुरु कहलाते रहे ह ।[2] मुस्लिम समुदाय म भी मुसलमान और बोहरा मुसलमान मतावलम्बी विद्यमान रहे थ ।[3] 19 वी शताब्दी क उत्तरार्द्ध म ईसाई

---

1 वी वि पृ 143

2 मवाड म जैन आचार्यों की परम्परा का उल्लेख 10 वी शताब्दी क भृतपुराय (भटवर) गच्छ के आचार्यों स प्रारम्भ होता है (उ ई, भा 2 पृ 122)। 1758 ई मे इन आचार्यों की परम्परा क एक शिष्य भीखम ने अलग पथ चलाया । आचाय भीखम के प्रथम तरह शिष्यो के कारण इस तरह पथ कहा गया था (वी वि पृ 144-145)। आचाय परम्परा अमूर्ति पूजक साधना म विश्वास करती रही है ।

3 बोहरे लोगो का सम्भवत मवाड आगमन राणा अमरसिंह द्वितीय के पूव हो गया था क्योंकि राणा के समकालीन खरतरगच्छ क यति खेतल द्वारा लिखित उदयपुर गजल म इनकी स्थिति क बारे म लिखा गया है कि—बहुरें मंडते व्यापार वचे कु त खग तरवार (प द्रह अगस्त, साप्ताहिक, वष 29 अक 14)। बोहराओ के बुरहानपुरी तथा दाऊदी नाम क भद व्याप्त है । मुस्लिम समुदाय का मवाड म आवासन 14 वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे प्रारम्भ हो लग गया था किन्तु अधिक तर मुस्लिम राणा अरिसिंह एव भीमसिंह द्वारा राज्य सना की सेवा हेतु गुजरात, सिध तथा उत्तर भारत स बुलाये गये थ (वी वि पृ 1558 1740 41) मुस्लिम परिवारो मे कइयो ने राज्य से भूमि पट्टे एव जागीरें प्राप्त की थीं (सो ला मी रा पृ 220)। मवाड के वह साम ता व 16 उमरावों के स्थान म राणा अरिसिंह द्वारा मुस्लिम उमराव का स्थान आदिल बेग को प्रदान कर उसे राज्य का सत्रहवाँ उमराव बनाया गया था—वी वि पृ, 1567

समुदाय भी मवाड के समाज का एक अग बनना प्रारम्भ हो गया था।[1] यह समुदाय स्थान भेद के अनुसार शुद्ध ईसाई और एग्लो-इण्डियन की श्रेणिया मे वर्गीकृत था। राणा सज्जनसिंह क शासन काल (1874-1884 इ) म हिन्दू समुदाय के अन्तगत सिक्ख तथा आय समाजियो के मतावलम्बी भी सम्मिलित होन लग थे।[2] इन सभी धार्मिक समुदायो का जन सख्यात्मक प्रतिशत 19 वीं शती के अन्त तक निम्न रहा था[3]—

1884 के आसपास धम क अनुसार जनसख्या का आनुमानिक वितरण

समुदाय	मतावलम्ब	प्रतिशत लगभग
1 हिन्दू	शव शाक्त और वैष्णव	73 48%
	आत्मवादी (आदिवासी)	13 34%
	जैन	9 25%
	सिक्ख	0 01%
	आय	0 01%
2 मुस्लिम	सुन्नी	3 05%
	शिया	0 40%
3 ईसाई।	कथोलिक और प्रोटस्टेण्ट	0 02%

धर्म सहिष्णु समाज

धार्मिक समुदायो की उपरोक्त स्थिति समाज मे धार्मिक दूरी अथवा भेदभाव प्रस्तुत नही करता थी। एक हि दू व्यक्ति जैन धम को उतना ही

---

1 1877 इ म पादरी जम्स शैपट द्वारा प्रोटस्टण्ट शाखा के युनाईटेड फ्री चच ग्राफ स्काटलण्ड मिशन के अन्तगत उदयपुर मे गिरजाघर बनाया गया तबसे इस मिशन द्वारा धम परिवतन करन का काय प्रारम्भ किया था (मेवाड रजीडन्सी पृ 38)। आदिवासिया म इन मिशनों द्वारा धम परिवतन की घटनाग्रा का आज भी देखा जा सकता है।

2 मवाड रेजीडन्सी, पृ 37, 52, के एस सक्सेना—राजस्थान मे राजनैतिक जन जागरण, पृ 46

3 मेवाड रेजीडेन्सी पाट बी मे उल्लखित जनसख्या के आधार द्वारा निर्मित विवरण।

आदर की दृष्टि से देखता था जितना कि अपने धर्म को।[1] जैन भी एकलिंगजी लक्ष्मीजी कालिका देवी आदि शैव, शाक्त, वैष्णव प्रतीकों मे श्रद्धा रखते थे।[2] यहा तक कि आदमवादी लोग एकलिंग (शिव), कालिका देवी (शाक्त), *श्रीनाथजी (वैष्णव) तथा कालियाजी (ऋषभदेव) की पूजा मे* विश्वास रखते थे।[3] मुस्लिम समुदाय और हिन्दू समुदाय म पारस्परिक धार्मिक भावना का आदर किया जाता था।[4] यद्यपि ईसाई समुदाय मेवाड

---

1 मवाड के राणा सदव धम सहिष्णु रहे थे। आलोच्यकाल मे राणा जगतसिंह द्वितीय ने रामला, कटडी, अर्णेटा और काया नामक गाँव अजमेर की दरगाह को भेंट किये थे (सो ला मी रा, पृ 221) इनकी रानी भटियाणी ने द्वारिकानाथ मन्दिर का निर्माण तथा उसके खच हेतु भूमिदान दिया था (वी वि पृ 1526) राणा राजसिह द्वितीय की माता ने देबारी का राजराजेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया था (उ ई भा 2, पृ 663), राणा भीमसिह की बहिन बाई चन्द्रकुँवर ने ऋषभदेव के मन्दिर मे भागवत पुराण पढने के लिये भट्ट मगन राम को भूमिदान दी था (ताम्र पत्र वि स 1874 [1817 ई] —सो ला मी रा, पृ 223) राणा जवानसिंह द्वारा महाकालिका मन्दिर की प्रतिष्ठा (उ ई, भा 2 पृ 731) राणा स्वरूपसिंह द्वारा जगतशिरोमणी तथा राणा शम्भुसिंह द्वारा गोकुल चन्द्रमां और विष्णु मन्दिर की प्रतिष्ठा (वी वि पृ 2048-49, उ ई, भा 2, पृ 805) एव देवस्थान खच बही वि स 1914 (1857 ई)—ब रि उ बस्ता मे चढाई जाने वाली भेंट म हिन्दू-मुस्लिम धम के प्रतीको मे कोई भेद नही किया जाना इसका उदाहरण है कि मेवाड *धम सहिष्णु राज्य रहा था।*

2 कोठारी, पृ 114, राज्य म जनता द्वारा बनाये गये वतमान हिन्दू जन मन्दिर इसक उदाहरण है।

3 *शिव रात्रि पव पर भील लोगो का एकलिंगजी के दशन करने आना,* उनके लोकनत्य गवरी म राई (पावती) तथा बुड्या (शिव) की उपस्थिति दीपावली के दिना म श्रीनाथजी के चावल लूटना तथा उदयपुर से 55 कि मी दूर *दक्षिण म स्थित धुलेव ग्राम के ऋषभदेव को अपना* इस्ट मानना प्रमाण रहे है।

4 मुस्लिम नाग हिन्दुओ के सामाजिक धार्मिक उत्सवो और त्योहारों मे बगर भेद भाव *भाग लेते थ। होली पर गले-मिलना गुलाल लगाना*

के समाज म धमसहिष्णु स्थान नही बना पाया था किन्तु इसके प्रति कोई विद्वेष व्याप्त नही था।[1] इस प्रकार मेवाडी समाज धमसहिष्णु और साम्प्रदायिक भावना मुक्त समाज रहा था।

आलोच्यकाल म धम के अतिरिक्त विशेष रूप स हिन्दू धम मे सामाजिक सरचना जाति व्यवस्था पर आधारित थी। ससार का कोई भी समाज वग-हीन नही रहा है क्योंकि वग समाज की वास्तविकता है। वग म एक-दूसरे को समझने वाले व्यक्तियों का समूह रहता है। एक समूह की भावना विचार एव नियम दूसरे समूह की स्थितियो से अन्तर स्थापित करत हैं जो कि सामाजिक वर्गों म श्रेणीबद्धता बनात हैं। भारत म यह वग स्तरण वशानुक्रमण पर आधारित पतक तथा ज मगत है, जिसे जाति के रूप म जाना जाता है।[2] आलोच्यकाल मे वग स्तरण जाति समाज [3] जातियो की स्थिति, उनका

जादू-टोनो मे विश्वास रखना, झाड फूक नजर आदि म श्रद्धा रखना आदि इस्लाम-विरुद्ध काय होते हुए भी इन्हे अपनाए हुए थे। इसी प्रकार हिन्दुओ द्वारा मुहर्रम के ताजिया के नीचे स बच्चो को निकालना मुस्लिम पीरो मे विश्वास रखना तथा मुस्लिमो द्वारा हिन्दू नाम पीर दास व हिन्दुओ द्वारा मुस्लिम नाम भेरु बख्श फकीरा गुजर आदि हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक सहिष्णुता के प्रतीक रहे थे। व्यास सग्रह रजि न 2 पृ 2, सो ला मी रा, पृ 103, मवाड और मुगल सम्बन्ध, पृ 223

1 ईसाई समुदाय द्वारा अपनी धम सस्थाओ के अन्तगत अन्य धर्मों के प्रति भ्रान्त प्रचार कर आदिवासी भील, मीणाओ को प्रोटेस्टेण्ट धर्मानुयायी बनाया जाता रहा था किन्तु इसका कोई तीव्र विरोध जनता द्वारा नही किया गया था।

2 सा एच कुले—सोशियल ओर्गेनाईजेशन, पृ 11

3 जन्मगत जाति वग (खण्डीय समाज), जातिगत नियम व आदेश अन्त-विवाह, श्रेणीबद्धता (ऊच नीच), भोजन व व्यवहार (छत अछूत विचार) नागरिक और धार्मिक असमथताए तथा पैतृक व परम्परागत व्यवसाय आदि जाति समाज के प्रमुख लक्षण हैं। जाति समाज की विस्तत अभिधारणा के लिय द्रष्ट य—एस वी केतकर—हिस्ट्री आफ कास्ट इन इण्डिया तथा गोविन्द सदाशिव घुर्ये—जाति, वग और व्यवसाय।

सामाजिक अ तराल तथा पैतृक परम्परागत व्यवसाया के आधार पर वर्गीकृत था।

ब्राह्मण वर्ण की जातिया

जाति की सरचना को विस्तत स्वरूप मे वर्ण व्यवस्था के साथ जोडा जा सकता है। श्रेष्ठता के रूप म इस श्रेणीबद्धता म सर्वोच्च स्वरूप ब्राह्मण जातियो को प्राप्त था पर ब्राह्मण जातिया भी विभिन्न उपजातिया मे विभाजित थीं। ब्राह्मण जाति की भिन्न-भिन्न 37 उपजातिया राज्य मे प्राप्त होना प्रामाणिक हैं।[1] 18 वी शताब्दी क पूव म कई ब्राह्मण उपजातिया मेवाड मे विद्यमान थी।[2] किन्तु आलोच्यकाल म कई ब्राह्मण परिवार जीविका की खोज म अन्य राज्या तथा प्रान्तों से आकर मेवाड म बस गये थे। इनम बागड से बागडिया जोधपुर से जोधपुरिया सिरोही से सिरोहिया आदि मुख्य रहे थे।[3] गुजरात राज्य से पारख और भट्ट मेवाडा ब्राह्मण उत्तर प्रदेश से कनोजिया सारस्वत (सहजाति सनाढ्य) गौड, श्रीगौड आदि ब्राह्मण परिवारो को राणाओ द्वारा उनके व्यवसायात्मक कौशल तथा सामाजिक धार्मिक कर्म कराने का आमन्त्रित कर मेवाड मे बसाया गया था।[4] स्थानीय नामा स जानी जाने वाली उपजातियो म आमट के आमटा तथा मेनार के मेनारिया प्रमुख थे।[5] ब्राह्मणी कृत्य एव प्रवटक के अनुसार भी ब्राह्मण जातिया मे भेद रहा था।[6] छोटे बडे का सम्यात्मक भेद भी एक ही जाति को दो जातियो म विभाजित किया हुआ प्राप्त होता है, इनम आमेटा चौबीसा और पालीवाल उपजाति मुख्य थी।[7] यह सभी उप जातिया मूल म

---

1 सेन्सेज आफ मेवाड स्टट भा 2 पृ 236-37
2 औदिच्य, नागर दशोरा श्रीमाली, नागदा पालीवाल गौड आदि उद्धृत—मध्यकालीन मेवाड (गोपाल व्यास) एम ए इति परीक्षा (1972) हेतु शोध निबध (अप्र) पृ 87
3 विभिन्न पट्टा बहियो तथा ताम्र पत्र से सकलित—ज रि तथा ताम्रपत्र रजिस्टर सग्रहित ताम्रपत्र फोटो प्रतिया—रा अ उदयपुर
4 उपरोक्त विवरण।
5 श्री लाड औदिच्य आमटा भा 1 पृ 34 जाति वर्ग और व्यवसाय पृ 20
6 चतुर्वेदी, द्विवेदी त्रिवेदी पाठक आचार्या व्यासा पुरोहित आदि।
7 सन्सज आफ मेवाड भा 2 पृ 236-37 अध्ययन की दृष्टि से यह जातिस्वरूप आज भी विद्यमान है।

की विकृत एव विघटित अवस्था और खण्डित व्यवहारो के कारण सामाजिक राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने मे यह जाति असमर्थ रही अथवा उनकी अर्न्तनिर्माण प्रणाली न सामाजिक नेतृत्व करने म इन्ह पिछडापन बनाये रखन के लिए प्रेरित किया। फिर भी सामाजिक-धार्मिक प्रतिष्ठा और सम्मान के स्तर पर ब्राह्मण जाति का समाज मे महत्व था।[1] राणा शम्भूसिंह ने ब्राह्मण जातिया के भेद-भाव को समाप्त करने के लिये चौरासी तथा सम्मुख[2] भोजन प्रथा प्रारम्भ की थी। किन्तु उसका यह प्रयास ब्राह्मण जातिया की संकीर्ण विचारवृत्ति के फलस्वरूप सफल नही हो सका था। यद्यपि चौरासी का भोजन करना ब्राह्मणो ने स्वीकार कर लिया था पर सभी ब्राह्मण जातिया अलग अलग दिन अपना अपना जाति म कच्चा या पक्के भोजन की सामग्री ले कर अलग अलग भोजन करत रह थ।

परम्परागत पतृक व्यवसाय

अध्ययन अध्यापन पौरोहित्य ज्योतिषराय धार्मिक कर्म काण्ड पाठ-पूजन इत्यादि व्यवसाय ब्राह्मणोचित वृत्तियां मानी जाती थी।[3] 19 वीं शताब्दी क इतिहास लेखक श्यामलदास के अनुसार मेवाड म अधिकाश ब्राह्मण ग्रामीण अवस्था म धर्मार्थ (उदक) भूमि प्राप्त किय हुए कृषक जीवन व्यतीत करत थ अध्ययन अध्यापन के नाम पर गायत्री मत्र के अक्षरो तक से अनभिज्ञ निरक्षर थ। जाति पहिचान के लिये यज्ञोपवीत मात्र चिन्ह होता था। शहर या बृहत् ग्राम मे रहने वाले ब्राह्मण राज्य सेवा अथवा व्यापार और कणिका भिक्षा (बस्ती) द्वारा पेट पालत रह थ। इन लोगो म किंचित् मात्र साक्षर पचाग पठन जन्मपत्री वर्ष फल आदि द्वारा कुछ पुराणो की कथा पढ़ कर जीविका चलाते थे। वेदाभ्यासी व शास्त्रपाठी ब्राह्मण सपूर्ण राज्य म गिन चुने रहे थे जो भी जाति संकीर्णता म फस कर देशोपकारक

---

1 ब्राह्मण जाति के सामाजिक सम्मान का मुख्य कारण मेवाड क राणा रहे थ। वह ब्राह्मण को हिन्दू सस्कृति का सरक्षक तथा स्वय को उसका पालक मानते थ। राणा के विरदो म हिन्दू सूय आदि इसका प्रतीक है। ब्राह्मण भूमि दान राजस्व मुक्ति एव ब्राह्मण आशीर्वाद आदि इस जाति के सामाजिक महत्व को प्रतिष्ठित किय हुए रहा था।

2 श्री लाड औदिच्य आमेटा पृ 18 जिसम सभी ब्राह्मण एक पंक्ति म भोजन करत हैं।

3 भीम विलास पृ 211 श्री लाड—उपरोक्त, पृ 36

ध्यान से विमुख थे।[1] ब्राह्मण जातियों से सम्बन्धित कुछ प्रमुख तथ्य निम्न थे—

(1) समाज में ग्रामीण तथा शहरी ब्राह्मणों के दो वर्ग विद्यमान रहे थे।

(2) ब्राह्मण कृत्यों के अतिरिक्त अन्य व्यवसायों पर निर्भर थे।

(3) समाज में निरक्षर ब्राह्मण अधिक थे।

(4) शासन अथवा समाज द्वारा धर्मार्थ भूमि ब्राह्मणों को प्रदान की जाती रही थी।

(5) सभी ब्राह्मण जाति व्यवहारों व नियमों में रूढ़िवादी थे।

ब्राह्मण निश्चित ब्राह्मण जाति की स्थिति को यदि हम प्राप्त अवलेखों के सन्दर्भ में देखें तो समाज के सामाजिक धार्मिक संस्कारों का संपादन कराने के लिए प्रत्येक जाति और कुटुम्ब के पुरोहित हुआ करते थे। यह पुरोहित लोग अपने यजमानों से भेंट द्रव्य तथा वार्षिक यजमानी प्राप्त करते थे।[2] उच्च एवं कुलीन लोगों (शासक, जागीरदार, राज्याधिकारी एवं सम्पन्न) में पुरोहिताई का कार्य अधिकांश में बड़ा पालीवाल ब्राह्मण करते थे।[3] राणा के पुरोहित राज्य में बड़े पुरोहित कहलाते थे जिनको धार्मिक स्तर पर उच्च पद एवं प्रथम श्रेणी के जागीरदारों जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त थी।[4] पुरोहित कार्य करने वाले ब्राह्मणों की एक अन्य श्रेणी कर्मान्तियों की रही थी। यह लोग मृतक-संस्कार तथा क्रिया-काण्डा करवाते थे।[5] अतः यह पुरोहितों की श्रेणी

---

1 वा वि पृ 185

2 यजमानी में जिन्स पटिया (खाने का कच्चा सामान) वेश (पहिनने का कपड़ा) दिये जाते थे। यह सामान प्रत्येक फसल की कटाई पर अथवा समय-समय पर सामाजिक रिवाज के अनुसार दिया जाता था। नकद द्रव्य के प्रचलन का आधिक्य नहीं होने से राज्य भण्डार से नामा के रूप में जिन्स प्रदान किया जाता था। द्रष्टव्य—कम्पनी खाना रिकार्ड नामा बहियाँ।

3 राज्य के सभी ठिकानों के पुरोहित बड़ा पालीवाल ब्राह्मण रहे थे। इनमें कई भूतपूर्व पुरोहितों के मकान उदयपुर में बने हुए हैं।

4 ताम्रपत्र वि स 1767 (1717 ई), 1788 (1731 ई) 1798 (1741 ई)—रा म उ ठ इ, भा 2 पृ 787-88 814, 1028-29

5 वी वि पृ 2113 उदयपुर में दाधीच एवं श्रीमाली को मिरासी ब्राह्मण भी कहा जाता है। इनका मुहल्ला इनके पैतृक कार्य के नाम पर कर्मान्तियों का मोहल्ला कहलाता रहा है।

से निम्न माने जाते थे। औदिच्य भट्टमेवाडा दशोरा, आमेटा आदि कथा-वाचक और ज्योतिष का काय करते थे। राज्य द्वारा विशिष्ट ब्राह्मण परिवारो को इस काय के लिए भूमि द्रव्य तथा राज्य ज्योतिष कथा भट्ट व्यास आदि का सम्मान दिया जाता था।[1] आचार्या लोग वैद्यक का काय करते थे। इनके पश्चात् ततीय श्रेणी पुजारी और पचागपाठी ब्राह्मणो की रही थी। राज्य के प्रत्यक मन्दिर का पुजारी ब्राह्मण होता था।[2] वह मन्दिर के निमित्त अनुदान की गई भूमि अथवा भेंट से अपना निर्वाह करता था। पचागपाठी ब्राह्मण ग्राम बस्तियो व शहर म वस्ती-काय (कणिका भिक्षा) करते थे।

राजकीय सेवा

राज्य की सेवा करने वाली ब्राह्मण जातिया म पाणेरी नामक जाति राणाओ के धमकोष रसोडे तथा पाणेरे और कपडे के विभाग (आगिया री ओवरी) मे काय करत थे।[3] राज्य के शिलालेख लिखवाने, सस्कृत मे राज्य पत्रो को लिखने[4] सधिदूत तथा राजनैयिक कार्यों के लिए भट्टमवाडा नागर जाति के लोग नियुक्त किय जाते रह थे। सनाढच जाति म राणा अरिसिह के प्रधान बडवा अमरचन्द का परिवार राणा जगतसिह द्वितीय

---

1 वैद्यनाथ मन्दिर प्रशस्ति वि स 1772 (1715 ई) प्रकरण ततीय, सन् 1800 ई म राणा भीमसिह द्वारा दिया गया पट्टा (सदभ सो ला मी रा पृ 79) भीण्डर निवासी आमेटा ब्राह्मण वल्लभजी के पूवजो को जागीर म विशेषाधिकार स्वरूप हाथी की सवारी का सम्मान प्राप्त रहा था।

2 वही वि म 1902 बख्शीखाना रिकाड बस्ता 1, महता सग्रामसिह कलेक्शन फाईल 257 बस्ता न 14 श्यामलदास कलक्शन—धर्माथ गाँवो का विवरण फाईल क्रमाक 92

3 कपड भण्डार बही वि स 1827 (1770 ई) 1837 (1780 ई), 1874 (1817 ई) तथा रसोडा बही वि स 1830 (1773 ई) 1847 (1790 ई), 1855 (1798 ई) उ ई भा 2 पृ 674, 998-1001 सो ला मी रा, पृ 82

4 उ ई, भा 2, पृ 664

से राणा भीमसिंह तक राज्य म विभिन्न सेवाम्रो म रत रहा था।[1] बडा पालीवाल जाति के पुरोहित वग म राणा जगतसिंह द्वितीय के शासन मे दीनानाथ को जहाजपुर परगने का हाकिम बनाया गया था।[2] इसका परिवार भिन्न भिन्न राणाम्रो के समय राज्य के उच्च पदा पर म्रासीन रहे थे।[3] राज्य परिवार को शिक्षा देन वाले ब्राह्मण धमगुरु भी राज्य सवा म नियुक्त किये जाते थ जिनको राज्य द्वारा वेतन म्रथवा भूमि प्रदान की जाती थी।[4] जनानी ड्योढी पर चौबिसा जाति के ड्योढ़ीदार तथा म्रामेरा जाति क लोग कामदार (लिपिक) का काय करते थे।[5] राज्य सनिक सेवा में ब्राह्मणो की नियुक्ति नही की जाती थी किन्तु सेनाधिकारी के पदा पर कई कुलीन वग के ब्राह्मण पैतक परम्परा म सेवा करते थे।[6]

व्यापार काय

कुछ ब्राह्मण जातियाँ पैतक-व्यवसाय के रूप मे व्यापार करती थी। इन जातियो मे श्रीमाली जाति के लोग दूध बेचन तथा हलवाई का व्यापार करते थे। नागर, पारख, श्रीमाल म्रादि जाति के ब्राह्मण हीरे जवाहरात परखने गोटा किनारी बेचने का धन्धा करते थ। किन्तु ब्राह्मण जाति मे

---

1 ग्रमरचन्द का पिता शम्भुराम, राणा जगत द्वितीय के रसाने का हाकिम रहा था। राणा प्रताप द्वितीय न ग्रमरचन्द को ठाकुर का खिताब व जाजिम प्रदान कर परामशदाता बनाया। उसका लडका लालशकर राणा हम्मीर तथा भीम के काल मे ग्रच्छे पद पर था। उ ई मा 2 पृ 998-999 1001

2 उपरोक्त पृ 1028-29

3 राणा शम्भुसिंह के काल म पुरोहित श्यामनाथ सुन्दरनाथ राज्य की पचसरदारी (रिजे सी कासिल) के सदस्य तथा मुसाहिब (परामशदाता) तथा राणा सज्जनसिंह के समय इनके परिवार के पदमनाथ, इजलास खास के सदस्य रहे थे। उपरोक्त पृ 787-88, 814

4 देवस्थान जमा-खच बही वि स 1900 (1843) रा म्र उ सहीवाला भा 2 पृ 27, 64

5 हिसाब दफ्तर महकमा खास 19 वी शती की पडाखा बहियो के विवरण से उद्धृत, रा म्र उ।

6 वी वि, पृ 1714

व्यापार करने का काय अधिक उत्तम नहीं माना जाता था। फिर व्यापारी-ब्राह्मणों की सख्या राज्य मे उल्लेखनीय भी नही रही थी।[1]

कृषि कम

धार्मिक या राज्य सेवा के बदले में भूमि या गाव अनुदान ग्रहिता ब्राह्मण कालान्तर म भिन्न-भिन्न परिवारो के रूप म लघु कृषक बन जाते थे। इन लघु कृषको मे कई किसान ब्राह्मण हिजारी (अन्य के साथ कृषि हिस्सेदार) तथा हाली (कृषि दास) का काय करत थ। ब्राह्मण जोतदार अथवा जागीरदार किसान से भू-राजस्व नही लिया जाता था अपितु इसके बदले मे उन्हे सामाजिक-धार्मिक सवाएँ करनी पडती थी।[2] कृषक ब्राह्मण जातिया म अधिकतर नागदा, चौबिसा, आमेटा सुखवाल, श्रीमाली जातियाँ मुख्य रही थी।

अन्य सेवा काय

सेवक तथा काटिया नामक दा जातियाँ ब्राह्मणा म अन्य जाति की सेवा तथा अशौच भोजन करन वाला निम्न जातियाँ मानी जाती रही थी।[3] सेवक ब्राह्मण जन मन्दिरो म खाना बनान तथा जैन सम्प्रदाय की सामाजिक सेवा का काय करते थे। सेवक जाति को कही कही भोजक भी कहा जाता था।[4]

ब्राह्मण जातियों की स्थितियो से स्पष्ट हाता है कि आलोच्यकाल म

---

1 हिन्दू ट्राईब्स एण्ड कास्टस भा 3 पृ 19-23। व्यापार करने वाले ब्राह्मणो की बस्तिया उदयपुर और भीलवाडा मे प्राप्त होती हैं। इनमे भीलवाडा के खण्डेलवाल व उदयपुर म नागर पारख तथा श्रीमालियो के पुरखे आलोच्यकाल में व्यापार करते थे जिनके परिवार अभी तक पैतृक काय करते हैं।

2 श्यामलदास कलक्शन—क्रमाक 980 पट्टा प्रति वि स 1760 (1703 ई) 1765 (1708 ई), पट्टा परवाना रजिस्टर क्रमाक 242 पट्टा प्रति वि स 1785 (1728 ई) क्रमाक 785 रा अ उ कोधालेडी ग्राम का दान पत्र, वि स 1770 (1713 ई), उ ई, भा 2, पृ 622

3 हिन्दू ट्राईब्स एण्ड कास्टस भा 3, पृ 19-23

4 उपरोक्त।

ब्राह्मण छत एव अद्विज व्यवसाय के अतिरिक्त सभी प्रकार के व्यवसाय करते थ। किन्तु एक ब्राह्मण जाति, दूसरी ब्राह्मण जाति से खानपान-विवाह आदि म अन्तर्जाति का भेदभाव रखती थी। यह अश भेद शहर और ग्राम निवास के अनुसार पुन विभक्त रहा था। समाज म ब्राह्मणो को सामाजिक सम्मान प्राप्त था। राज्य द्वारा भी ब्राह्मणो का सम्मान किया जाता था। उन्हें महाराज विप्रराज, गुसाई आदि क सम्बोधनो से सम्बोधित किया जाता था। विशिष्टता प्राप्त ब्राह्मणो का राणा खडे हो कर स्वागत करता और ताजीम देता था। विद्वान् ब्राह्मणो को राज्य सेवा मे उच्च पद दिय जात थे।[1] विपारगत ब्राह्मणो को बाहर स आमन्त्रित कर राज्य म बसाया जाता था।[2] सम्पन्न ब्राह्मण भी लोकोपयोगी जनकल्याणात्मक और धर्मार्थ कार्यों द्वारा ब्रह्म धर्म की प्रतिष्ठा व सम्मान को बनाय रखत थ।[3] 19 वी शती क अन्तिम काल म बाह्य खान पान तथा प्रशासनिक नियुक्तियां तथा राज्य सेवा के व्यामोह के फलस्वरूप ब्राह्मणो की सामाजिक स्थिति म आन्तरिक परिवर्तन प्रारम्भ होने लगा था किन्तु बाह्य रूप म ब्राह्मण ब्राह्मण का सम्मान ही पाता था। उनकी सामाजिक-धार्मिक प्रतिष्ठा म कोई अन्तर उत्पन्न नही हुआ था। 19 वी शताब्दी क अन्त तक सम्पूर्ण समाज में ब्राह्मणो का 9 22% प्रतिनिधित्व रहा था।

राजपूत

ब्राह्मण जाति के पश्चात् सामाजिक श्रेणी म द्वितीय स्थान क्षत्रिय कहलाने वाली राजपूत जातियों का था। इस जाति में भी वश कुल शाखा (गोत्र) और प्रशाखाओ (खाप) क अनेक भेद विद्यमान थ। वश के रूप मे प्रत्यक राजपूत कुल अपने को तीन वश म स किसी एक स सम्बन्धित करता रहा था। इनम अयोध्या नरेश राम से उत्पन्न सूर्य वश द्वारिका नरेश कृष्ण

---

1 उ ई भा 2 पृ 790

2 विवरणार्थ द्रष्टव्य—अमरसिंहाभिधक सग्रामसिंह महोदयम् अमर नप काव्य रत्न का पुष्पिका (ह प्र), प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर ग्र क 714-810, मरु भारती—वर्ष 1, अक 3, उ ई भा 2, पृ 831

3 साध्यगिरी मठ शिवालय प्रशस्ति, माघ सुदि 2, 1812 (1755 ई) पचोलिया के मदिर की प्रशस्ति—वैशाख सुदि 8, 1800 (1753 ई), उ ई भा 2, पृ 646

से सम्बंधित चन्द्र वंश तथा शेष ऋषि वशिष्ठ द्वारा आबू यज्ञ से उत्पन्न अग्निवंश के मध्य सम्पूर्ण जाति वर्गीकृत रही थी।[1] विवाह सम्बन्ध की दृष्टि से उच्चोच्च परम्परा विद्यमान थी। एक ही वंश के राजपूत-कुल परस्पर विवाह कर सकते थे। किन्तु अग्नि वंशीय राजपूत का पुत्र सूर्य और चन्द्र की कन्या से विवाह नहीं कर सकता था जबकि सूर्य वंशीय राजपूत पुत्र के लिये अन्य दोनों वंश से सम्बन्ध हो सकते थे।[2] खान-पान व्यवहार में वंश भेद व्याप्त नहीं था। इन तीनों वंशों में कथित 16 कुल सूर्यवंशीय, 16 चन्द्रवंशीय एवं 4 अग्निवंशीय राजपूत उपवंश आलोच्यकाल में भावनात्मक कथनों में छत्तीस कुल कहलाते थे।[3] किन्तु मेवाड़ में केवल 13 कुल विद्यमान रहे थे।[4] इस कुल व्यवस्था का पुनर्वर्गीकरण खापों में और खापों से पतक अथवा जागीर ग्रहिता के मुखिया नाम द्वारा उप-खापों में राजपूत वर्गीकृत रहे थे।[5] स्थानिक भेद पर आधारित तलद्रा, दायमा, कछवा, केवाड़ा आदि राजपूत जातियां थीं[6] परन्तु यह किसी न किसी खाप से सम्बंधित होती थी।

सिसोदिया कुल

राज्य के शासक सिसोदिया कुल के सदस्य थे अतः राजपूत जातियों में इस कुल का विशेष महत्व था। मेवाड़ के शासक सम्पूर्ण भारत की हिन्दू जातियों और विशेष रूप से राजपूत कुलों में विशिष्ट सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान का पद रखते थे। यदि कहीं राजपूत जातीयता का संशय उत्पन्न हो जाता तो राणा (मेवाड़ का शासक) के निर्णय को अंतिम माना जाता था।[7] प्रदेश के शेष राजपूत-कुलों की सामाजिक प्रतिष्ठा का स्तर

---

1 एनाल्स भा 1 पृ 99 125

2 इरावती कर्वे—कीनशिप आर्गेनाइजेशन इन इण्डिया पृ 166 167

3 वी वि पृ 186-188

4 सिसोदिया (गुहिलोत) चौहान, पवार झाला राठौड़, सोलंकी डोडिया कच्छावा गहलोत जादव (भाटी) पड़ियार (इंद) बड़गुजर एवं गौड़—मेवाड़ से सेज—पृ 236-237

5 सिसोदियों की खाप—चूण्डावत, शक्तावत राणावत जगावत आदि तथा उप खापों में चूण्डावतों की कृष्णावत दूलावत, सारंगदेवोत द्वारावत आदि—उ ई भा 2, पृ 611-612, उपरोक्त।

6 उपरोक्त।

7 श्यामलदास कलेक्शन—पत्र संख्या 976, वी वि प 2104, उ ई भा 2, प 800

उनकी जागीर स्थिति एव राणा प्रदत्त सम्मान द्वारा निर्धारित रहा था। इसमें सिसोदिया-कुल के राजपूत 19 वीं शताब्दी के पूर्व तक सामाजिक-राजनैतिक शक्तियो के नियामक एव नियता बने रहे थे।[2] शासकीय सम्बोधनो में इस कुल के राजपूत सदस्य भाईजी, बावाजी, बाबाजी आदि सज्ञाओ से पुकारे जाते थे। राज्य की महत्त्वपूर्ण आर्थिक लाभ की जागीरो पर इसी कुल के जागीरदारो का अधिकार था। राजपूत जाति की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का विवेचन सामन्तशाही मे अन्तर्गत अलग से किया जा चुका है। किन्तु यह स्पष्ट है कि शासन और आर्थिक उत्पादनो पर राजपूत जाति के नियन्त्रण ने सामाजिक स्तर मे अपना स्थान ब्राह्मणो के पश्चात् होते हुए भी शक्ति, प्रतिष्ठा और सम्मान की दृष्टि से समाज म अभिजात वर्ग तथा अपने आप को महत्त्वपूर्ण जाति बनाये रखा था।[3]

राजपूत जाति के लोग राजकीय सेवा अथवा राजपूत जागीरदारो की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यवसाय को अपनाना अपने कुल की मर्यादा के विरुद्ध मानते थे। अत प्रशासकीय कार्य और सैनिक सेवा इनके जीविकोपार्जन का मुख्य साधन था।[4] 18 वीं शती तक राजपूत जातियाँ मेवाड पर होने वाले आक्रमणो व प्रतिआक्रमणो के काल म मुगलो और मरहठो के विरुद्ध अपने सैनिक कर्त्तव्य का पालन करती रही थी। परन्तु निरन्तर युद्ध, आर्थिक विपन्नता और पारस्परिक मतभेदों ने जाति के राजनीतिक सगठन मे विघटन लाना प्रारम्भ कर दिया था। 18 वी शती के उत्तरार्द्ध से सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि वशों के गौरवशाली पुत्र अपनी गौरवान्वित जाति-परम्पराओ को भूल कर अज्ञान के अधकार, कुल वमनस्य और विद्वेष मे डूबने लग गये। राणा बापा कुम्भा, सागा प्रताप, झाला मान चूण्डा आदि की देशभक्ति वीरता विद्वत्ता, स्वामीभक्ति और पित भक्ति के आदर्श इस समय से लुप्त होने प्रारम्भ हो गये थे जबकि मेवाडी राजपूतो मे इन महान् प्रतीकों का रक्त विद्यमान था। इस समय की राजपूत सस्कृति का चित्रण मेके नामक एक अग्रेज लेखक के अनुसार इन शब्दो म व्यक्त किया जा सकता है कि एतिहा जाति के अधिकांश लोग स्वभाषा को कठिनाई स पढ लिख सकते थे अपनी प्रजाति शासकीय कर्त्तव्य, पवित्र अधिकारो, अपने क्षत्र

---

1 साम तशाही अध्याय।

2 हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्टस भा 3 पृ 118-119

3 केम्पबेल एथनोलाजी आफ इण्डिया पृ 86-87 हिन्दू ट्राइब्स, उपरोक्त पृ 119 जाति वर्ग और व्यवसाय पृ 71

राज्य तथा देश के सम्बन्धों को भूल कर प्रव राजपूत अपना समूल समय घणित सगति अथवा दास दासियों की चापलूसी में नष्ट करते थे। इनमें कई तो नौकरों द्वारा शासित होते रहे थे। मद्य व अफीम के प्रति सेवन के परिणामस्वरूप उनमें कई दुर्गुण उत्पन्न होते गये थे। अपनी झूठी और दम्भपूर्ण प्रवृत्ति और जीर्ण गौरव निर्वाह के हेतु कर्ज से दबते रहे थे एवं मृगमरीचिकायुक्त प्रतिष्ठा व सम्मान प्राप्त करने की तृष्णा में सब कुछ करने को तैय्यार रहते थे।[1] इस स्थिति का प्रमुख कारण राजपूत जाति में निश्चित उत्तराधिकार प्रणाली का अभाव, सामन्तीय प्रवृत्तियों की उच्छृंखलता व राणाओं की निर्बल अवस्था रहा था। 18 वीं शताब्दी में प्रत्येक राजपूत अपनी पैतृक सम्पत्ति का पृथक हिस्सेदार बनने लगा था अथवा राणा की सेवा द्वारा पृथक जागीर प्राप्त कर जागीरदार कहलाने लगा था।[2] इसका फल था कि 19 वीं शती में राज्य की जागीरों के रूप में छोटी-छोटी जमीनों की खण्ड और सिरमी जागीरें बढ़ गई थीं।[3]

जागीरदारी कृषि कार्य

19 वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में राज्य को ईस्ट-इण्डिया कम्पनी द्वारा संरक्षण दिये जाने के पश्चात् राजपूतों के लिये सैनिक सेवा का क्षेत्र सीमित होने और प्रशासकीय सेवाओं में अन्य जातियों का प्रभाव बढ़ जाने के कारण जागीरदारों की स्थिति में परिवर्तन होने लगा था। कई छोटे-छोटे जागीरदार कृषि पर निर्भर रहने लगे थे। इन कृषिकर्मी जागीरदारों की तीन आर्थिक श्रेणियाँ हो गई थीं—(अ) दूसरों से खेती कराने वाले बड़े जागीरदार, (ब) स्वयं और दूसरों के साथ खेती करने वाले मध्यम जागीरदार तथा (स) स्वयं खेती करने वाले जागीरदार। प्रथम श्रेणी के जागीरदारों की आर्थिक अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था किन्तु द्वितीय श्रेणी वाले शनैः शनैः तृतीय में और तृतीय कृषक राजपूत या अन्य सम्पन्न राजपूत के खेतों पर हिजारा (सहभागी) बन कर सेवा करने लगे

---

1 जी आर एबेरीजमके (Aberigh Mackay), दी चीफ आफ सेन्ट्रल इण्डिया, भा 1 पृ 30 31

2 वी वि पृ 188-189, मेनारिया, मेवाड़ का इतिहास (अप्र शो), पृ 217

3 व रि उ पट्टा बहियाँ वि स 1905 1907, 1910, 1911 आदि—रा अ उ।

गये थे। इतना होते हुए भी व्यापार-वाणिज्य का पेशा करना भी जाति-परम्परा के विरुद्ध मान कर राजपूतो ने इस पशे को नही अपनाया था।[1]

वीरात्मक प्रदर्शन

19 वीं शताब्दी मे युद्धविहीन शान्तिकाल में राजपूत जाति की वीरात्मक गतियाँ प्रदशनो और प्रतीको द्वारा अभिव्यक्त होती थीं। इसमें प्रमुखत नवरात्री उत्सव पर खाण्डा' करने की प्रथा को लिया जा सकता है। नवमी को यदि कोई राजपूत एक ही समय में तलवार से भसे की गदन काटने मे असफल हो जाता तो उसे उदयपुर के राज्य दरबार और महलो में प्रवेश से वर्जित कर दिया जाता था। वह जाति पचायत म उठ-बैठ नहीं सकता था जब तक कि वह उसी वप पुन नवरात्री पर अपने बल को प्रतिष्ठित नहीं कर देता था।[2] प्रत्येक राजपूत जगली और खू खार जानवरो के शिकार करने को आनन्द मानता था। राजपूत जाति के प्राचीन शौय और शक्ति के रूप म इनका महत्व नगण्य होते हुए भी विरासती-गुणो की झलक की प्रतिछाया का प्रदर्शन राजपूती गुण प्रकट करता था।

दास या चाकर राजपूत

राजपूत जाति श्रेणी में दास अथवा चाकर राजपूतो की इकाई आलोच्यकालीन समाज म एक स्थान रखती थी। यद्यपि प्राचीन काल से भारत में युद्धबन्दियो अथवा पराजित राज्यों के नर-नारियो को विजेता द्वारा दास-दासियो के रूप मे प्रयोग लिया जाता रहा था।[3] किन्तु कालान्तर मे इन दासो की एक जाति बन गई। राजपूतो द्वारा अन्य जाति की स्त्रियो को रखैल (उपपत्नी) रखने की प्रथा और निधन बच्चे बच्चियो को क्रय विक्रय के रिवाज ने भी इस जाति के उदभव तथा विकास मे सहयोग दिया था।[4] 18-19 वी शताब्दी के मेवाड ही नही अपितु सम्पूर्ण राजपूताने की रिया-

---

1 हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, पृ 118

2 वी वि, पृ 128, सो ला मो रा, पृ 85

3 रसीया की छत्री का शिलालेख, वि स 1331 (1274 ई) कुम्भलगढ प्रशस्ति, खण्ड 4 पद्य 197 252, 268

4 वी वि पृ 982, 1778-79, 1808-1809 2085 ह इ भा 2 पृ 732, 795, से मज आफ इण्डिया 1961 खण्ड 14 राजस्थान, भा 6 पृ 8, द्रष्टव्य—परिवार, विवाह एव प्रथाएँ

सता मे चाकर-राजपूतों की विशाल सख्या विद्यमान रही थी। मेवाड के राजलोक रिकार्डों से प्रमाणित होता है कि गोला राजपूतो को उच्चतर राजपूत कन्याओ के विवाह मे दहेज के रूप म भेजा जाता था। इस पर राजपूत की प्रतिष्ठा निभर करती थी कि उसन कया विवाह में कितने दास दासी (दावडे-दावडी) प्रदान किय हैं।[2] इन दास दासिया का प्रयोग, शासक जागीरदार तथा सम्पन्न राजपूत अपने प्रशासकीय, यवस्थापकीय तथा काम तृप्ति के लिय करते थे। दास दासिया के नाममात्र विवाह करा दिये जाते थ, जिससे स्वामी से उत्पन्न पुत्र का पिता मात्र विवाहित पति कहलाता रहे। राजपूत लाग इस जाति की स्त्रियो के साथ खान पान मे छूत नही मानत थे जबकि पुरुषो के साथ खान पान व्यवहार की स्थिति भिन्न थी। दास राजपूतो की सामाजिक प्रतिष्ठा और स्तरीकरण शासक अथवा स्वामी से उसके यक्तिगत सम्ब घा की दूरी और समीपता पर निभर रहता था। यह सम्ब ध ही दासो की आर्थिक स्थिति को व्यक्त करत थे। कई दास राजपूत अपनी योग्यता और स्वामीकृपा के द्वारा राजपूत जाति श्र णी म निम्न तथा उपेक्षित हाते हुए भी अपना सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव और सम्मान रखते थे।[3]

वैश्य महाजन जातियां

प्राचीनकालीन वश्य वण का प्रतिनिधित्व करन वाली महाजन जाति मे समयानुकूल जाति मिश्रण प्रक्रिया चलती रही थी। जन धम की धार्मिक सहिष्णुता से प्रभावित हो कर राजपूता तथा कई समाजोपेक्षित जातियो के लोगो ने जन धम को अगीकार किया था।[3] कि तु काला तर म जाति वादी

---

1 उदयपुर राजलोक रिकॉड वि स 1781-1850 (1724-1793 ई), च द्रकु वर री वार्ता पत्र 60 त्रिया विनोद, पद्य 64 द्रष्ट य—परिवार, उपरोक्त।

2 वी वि पृ 1579 1692, 1901 2046, उ ई, भा 2, पृ 667 725, 741, 782 83

3 कोठारी, पृ 1, उ ई, भा 2, पृ 1108। पुरालेखविद्‌ मुनि जिन-विजय राजपूत जाति के थे। चित्तौडा महाजनो म कुछ परिवार द्वारा रापी-पूजन स स्पष्ट होता है कि निम्न जातिया ने जन धम अगीकार किया था। ओसवालो मे मोची मेतरवाल गोखरू इत्यादि परिवर्ती जाति के अश है—मेवाड स सज, पृ 238-39

अलगाव भावना प्रबल होती गई। इससे भी ब्राह्मण और राजपूतो के अनुरूप शाखा, प्रशाखा, गौत्र आदि के खण्डिय-भेद उत्पन्न होते गये। 18-19 वीं शताब्दी के मेवाड में कथित 84 जातियो मे से 12 जातियाँ विद्यमान रही थी।[1] इन जातियो के अतिरिक्त अद्ध जाति का महाजन समूह विद्यमान था।[2] इस समूह के साथ अन्य महाजन खान-पान का व्यवहार रखते थे किन्तु विवाह-सम्बन्धो मे ऊँच-नीच का भेद माना जाता था।

महाजनो की सभी जातियाँ अन्तर्विवाही थी।[3] *गौत्र और प्रशाखा* के अनुसार बहिर्विवाही सम्बन्ध प्रचलित था। ऊँच-नीच का सामाजिक भेद-विभेद विवाह सम्बन्धो से नापा जाता था। जैसा कि स्पष्ट किया गया है कि जैन धर्म की उदारता के परिणामस्वरूप अन्य जाति के लोग 'दीक्षा ग्रहण' द्वारा जैन हो जाते थे। परन्तु रक्त शुद्धता एवं जाति श्रेणी की श्रृंखला मे इन्हें दसा बीसा के क्रम म सम्मिलित किया जाता रहा था।[4] जैन महाजन के अतिरिक्त वैष्णव महाजन भी होते थे किन्तु इन धार्मिक वर्गों का उनके पारस्परिक खान पान और विवाह मे कोई अवरोध नही होता था।[5]

परम्परात्मक व्यवसाय

राजपूताने के अन्य राज्यो की तरह मेवाड मे भी व्यापार-वाणिज्य, रुपयो का लेन देन तथा उद्योग का व्यवसाय महाजन लोगों के हाथ में रहा

---

1 श्री श्रीमाल श्रीमाल, ओसवाल, पोरवाल माहेश्वरी हूमड अगरवाल, बीजावर्गी नागदा, नरसिहपुरा, चित्तौडा, बघरवाल—टॉड एनाल्स, भा 3 प 1724 वी वि प 189 मेवाड सेंसेज पृ 238-239। इन जातियो मे ही कई स्थानिक जातियाँ थीं।

2 इस अद्ध जाति के सदस्य महाजनो द्वारा अन्य जाति का स्त्रियो से उत्पन्न सदस्य होते थे जिन्हे पचाल अथवा पाचडा कहा जाता था—टाड, एनाल्स उपरोक्त वी वि, पृ 190

3 वी वि उपरोक्त।

4 उपरोक्त प 190। आज भी दसा बीसा का खण्डभेद अग्रवाल जाति म प्रचलित है। यह खण्ड अतिशुद्ध (बीसा), शुद्ध (दसा) व अशुद्ध (पांचा) के रूप म निर्मित हुए होंगे। ओसवालो मे भी बडा साजन और छोटा साजन के भेद व्याप्त हैं—वी वि पृ 1712

5 मेवाड सेंसेज पृ 238-39

था।[1] व्यवसायी महाजनो को वनिया बोहरा और सेठ कहा जाता था।[2] किन्तु अलग अलग व्यवसाय के अनुसार आडत का धन्धा करने वाले आडतिया सोने-चादी का धधा करने वाले शर्राफ मन्डी म क्रय-विक्रय की मध्यस्थता करने वाले दलाल, कौडी का धन्धा करने वाले कौडियात कपडे के व्यापारी बजाज औषधि विक्रेता महाजन पन्सारी कहलाते रहे थे।[3] महाजन जातियां मे ऐसा कोई वाणिज्य व्यवसाय नही था जो कि वश्य समाज की प्रतिष्ठा और सम्मान के प्रतिकूल माना जाता हो और जिसके कि कारण उनका समाज मे सामाजिक स्तर विश्रेणित होता हो।[4]

कृषक महाजन

राज्य तथा जागीरो की प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बधित महाजनो को काय और सवा के रूप में भूमि प्रदान की जाती थी। इसके अतिरिक्त बहुत से महाजन खुद या बपौती की कृषि भूमि रखत थे। ऐसे कृषक महाजन स्वय खेती नही कर हाली (कृषि मजदूरो) अथवा हिजारियो स खेती कराते थ।[5] इन महाजनो की श्रेणी जागीरदार-महाजनो की थी जिनकी सख्या नगण्य रही थी।[6]

प्रशासनिक एव स य सेवा

पैतक व्यवसाय के अतिरिक्त महाजन लोग राज्य एव जागीर की प्रशासनिक सेवाओ मे भी काय करत थ। इन सवाओ म प्रशासन व्यवस्था, लेखा व्यवस्था स य व्यवस्था न्याय व्यवस्था तथा अधीनस्थ सेवा प्रमुख रही थी।[7] प्रशासन और सन्य व्यवस्थापन के उच्च पदो पर इस जाति के

---

1 सो ला मी रा प 90, मेनारिया, मेवाड का इतिहास (अप्र शो), पृ 218

2 सेतल कृत उदयपुर गजल, उ ई भा 2, पृ 709

3 उदयपुर गजल उ ई भा 2, प 709

4 उपरोक्त मेवाड छद (अप्र), श्री अभय जन ग्रन्थालय बीकानेर की प्रति, *डा जावलिया के सग्रह से उद्धृत।*

5 कोठारी प 34-36 94 135-136 सो ला मी रा, प 90

6 कोठारी महता गलूडया और बापना परिवार (घराना) महत्वपूर्ण रहा था।

7 ब रि—कचेडी—खरच वही वि स 1903 (1846 ई) चाकरी वही वि स 1908-1919 (1856-1862 ई) बस्ता स 1 एव 2, रा अ उ, कोठारी कलेक्शन, पत्र क्र 9 10 (रा अ उ) वी वि, प 1712 उ ई भा 2, प 611

मेहता, कोठारी गांधी, गलुड्या आदि घराने के लोगों ने अधिक काय किया था। मेहता और कोठारी के परिवार विशेष सम्पूर्ण आलोच्यकाल में राज्य के प्रधान पदो पर एकाधिकार स्थापित किये रहे थे।[1] प्रशासनिक सेवाओ मे वंशानुगत काम करते रहने के प्रभावस्वरूप दोनो घराने समाज मे सामाजिक-आर्थिक प्रतिष्ठा और पदो पर विभूषित रहे थे। राज्य के शासक इनकी हवेलियो पर उपस्थित हो कर इनका आतिथ्य स्वीकार करते और इनको सम्मान देते रहते थे।[2] आर्थिक शक्ति के दृष्टिकोण से यह घराने प्रथम श्रेणी के जागीरदारो के जसे अधिकार रखते थे।[3]

इन महाजन घरानो ने समय समय पर सैन्य सचालन और सैन्य नायकी का काय भी किया था। किन्तु सम्पूर्ण जाति ने अहिंसा के जैन विश्वास रखने के कारण सैन्य सेवा मे अधिक रुचि नही दिखलाई। इसीलिए हम आलोच्यकाल म उन्ही वैश्य-वीरो का नाम पाते हैं जो कि राज्य सेवा मे उच्च पदो पर नियुक्त रहे थे।[4]

---

1 राणा अरिसिंह राणा हम्मीरसिंह, राणा भीमसिंह के शासन मे मेहता अगरचन्द मेहता देवीचन्द, राणा भीमसिंह जवानसिंह, सरदारसिंह तथा स्वरूपसिंह के राज्यकाल म मेहता रामसिंह मेहता शेरसिंह राणा शम्भूसिंह, सज्जनसिंह तथा फतहसिंह के शासन मे मेहता पन्नालाल। इसी प्रकार राणा जगतसिंह द्वितीय व राणा राजसिंह द्वितीय के समय मे कोठारी चतुर्भुज, राणा स्वरूपसिंह व शम्भूसिंह के काल म कोठारी केसरीसिंह एव राणा सज्जनसिंह के समय मे कोठारी बलवन्तसिंह राज्य के प्रधान रहे थे। ब रि पट्टा बहियाँ वि स 1901-1904, 1908 1919, 1926 1933-35 बस्ता स 1 से 3 एव 6, वि स 1930 री टीपणी रोजगारी--व स 5, रा अ उ, कोठारी, पृ 10 14, 65, मेवाड के प्रसिद्ध घराने (उ ई भा 2) पृ 997-999, 1005-6, 1010-11, 1014-15, 1020 21 1030-32

2 कोठारी, पृ 16, उ ई भा 2, पृ 678 एव 743

3 उपरोक्त, वी वि पृ 1938

4 राणा संग्रामसिंह द्वितीय के काल म कोठारी भीमजी फौजबख्शी, मेहता सावलदास, राणा अरिसिंह कालीन मेहता अगरचन्द, राणा भीमसिंह के शासन मे मेहता मालदास, मोजाराम बोल्या सोमचन्द गाधी, मेहता देवीचन्द राणा स्वरूपसिंह के काल में मेहता शेरसिंह, अजीतसिंह,

सेठ जोरावर मल का घराना भी राज्य के बकस के रूप म प्रसिद्ध रहा था। राणा भामसिंह के उत्तरकाल म कनल टाड द्वारा इसे इन्दौर से आमन्त्रित कर राज्य कोषाधिकारी नियुक्त किया गया था।[1] इसके परिवार के लोग राणा फतहसिंह के शासन काल तक राजा, प्रजा और जागीरदारा को आर्थिक ऋण देने और साहूकारी ब्याज का व्यवसाय करते रहे थे।[2] ब्रिटिश सरकार के खिराज चुकाने, जागीर-व्यवस्था चलाने एव सामाजिक रूढियो का प्रतिप्रदशन करते रहने के कारण राज्य का राजपूत साम त वग अधिकतर साहूकारो एव ऋणदाताओ के आश्रित बन गया था।[3] परिणामत वैश्य वग राज्य की आर्थिक स्थिति का प्रमुख केन्द्र बनता चला गया और इसीलिए महाजन जाति 19 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे राजनीतिक शक्ति का प्रमुख स्तम्भ बनती गई थी।[4]

कायस्थ

9 वीं शताब्दी के लगभग कायस्थ जाति ने हिन्दू समुदाय म वर्णविहीन स्थान बना लिया था।[5] कायस्थ शब्द के नामांकरण और जाति उत्पत्ति के विषय पर विद्वानो के मतभेद होते हुए भी[6] यह सत्य है कि इसकी उत्पत्ति

सवाईसिंह राणा सज्जनसिंह के समय म मेहता लक्ष्मीलाल आदि सफल सैन्य नायक रहे थे—सहीवाला, भा 1, पृ 61 कोठारी पृ 3, वी वि पृ 939 1561 62 1699, 1708 9, 1933-34, 1943 1950, 1953 2220 21 व 2046 47 उ ई भा 2, पृ 612, 651-52 658-59 675 677 692 व 748

1 उ ई भा 2, प 709
2 कोठारी, प 63 64, उ ई उपरोक्त प 843 व 850
3 कोठारी पृ 137
4 डॉ कालूराम शर्मा के अनुसार वश्य समाज ने ब्रिटिश सत्ता का विश्वास प्राप्त कर समाज मे अग्रणी स्थान प्राप्त किया था (उन्नीसवी सदी के राज का सामाजिक एव आर्थिक जीवन, प 213) किन्तु यह सत्य नही है। द्रष्टव्य—भूमि व्यवस्था एव उद्योग वाणिज्य व्यापार अध्याय।
5 सोशियो इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नादन इण्डिया प 98
6 डा आर जी भण्डारकर डा एच डी साखलिया व डा डी सी सरकार के मतमतान्तर के लिये ग्रन्थ—उपरोक्त, प 99

के साथ ही यह जाति अभिजात वर्ग से सम्बन्धित रही थी।[1] मेवाड़ के समाज मे इस जाति की माथुर शाखा के लोग विद्यमान थे।[2] इसमे पुन प्रशाखा के रूप मे भटनागर की श्रेणी प्राप्त होती है जो कि पंजाब के भटनेर क्षेत्र से देशाटन करने वाले थे।[3] दिल्ली के समीप डासया गाँव से मेवाड मे आने वाले डासया भटनागर तथा चित्तौड के निकट खराड म बसने वाले खैराडा भटनागर के दो गोत्र, 19 वी शताब्दी के पश्चात् तक चलते रहे थे।[4] काय के रूप मे भटनागर पुन अलग-अलग प्रशाखाओ मे वर्गीकृत हो गये थे। राजकीय आदेशो पट्टो परवानो आदि पर राणा चूण्डावत और शक्तावत जागीरदारो की ओर से अधिकृत सही' (स्वीकृति) का निशान लगाने वाला घराना 'सहीवाला' राजकीय-मत्रालय का काय करने वाला घराना 'बख्शी' और प्राचीनकालीन पचकूल (पचायती निर्णय) की समिति का घराना 'पचोली' कायस्थ कहलाने लगे थ।[5] खान-पान के व्यवहार मे कायस्थ जाति स्वत त्र थी।[6] विवाह सम्ब धो मे अ तर्शाखा और प्रशाखा मे ही विवाह होते रह थ। इस जाति के खान-पान व्यवहारो के कारण ही सम्भवत इस जाति को विचलित ब्राह्मण (कायाभ्रष्ट ब्राह्मण) माना जाता रहा था।[7]

राज्य सेवा

प्रकार्यात्मक दृष्टि से कायस्थ जाति विद्वता मे ब्राह्मण गुणो, राजस्व-व्यवस्था म वैश्य गुणो तथा वीरता म राजपूत-गुणो से युक्त रही थी।[8]

---

1 सोशियो इकोनोमिक हिस्ट्री ग्राफ नाथन इण्डिया, पृ 100-104, सो ला मी रा, पृ 93

2 मथुरा के माथुर बगाल के गौड कायस्थ इलाहाबाद के श्रीवास्तव मुख्य भेद थ जिनमे स्थान व कार्यानुरूप पुन प्रशाखाएँ हो गइ, जसे—कटारिया, निगम सक्सेना आदि। उपरोक्त।

3 सहीवाला भा 1 पृ 1, उ ई, भा 2, पृ 1035

4 उपरोक्त।

5 टाड एनाल्स भा 1, पृ 556 57, सहीवाला भा 1 पृ 16-17

6 मास मदिरा प्रयाग के लिए इस जाति म प्रतिब ध नहीं था। वी वि पृ 191

7 सोशियो इकोनोमिक हिस्ट्री, पृ 99

8 डा गोपीनाथ शर्मा के अनुसार इस जाति म ब्राह्मण एव वश्य गुणो का सामजस्य रहा था—सो ला मी रा, पृ 93

इस जाति के लोगों ने आलोच्यकाल में इन वंशपरम्परा प्रदत्त गुणों को जीवित रखते हुए राज्य की सैनिक और असैनिक सेवाएँ करते रहे थे। इस जाति के स्मरणीय सदस्यों में कायस्थ दामोदर दास और कायस्थ श्यामनाथ, राणा अमरसिंह द्वितीय के प्रधान, सैन्य नायक तथा फौजबख्शी रहे थे।[1] राणा संग्रामसिंह द्वितीय के काल में पंचोली कान्हा ने राज्य की महत्वपूर्ण कूटनीतिक एवं सैन्य सेवा की थी।[2] बिहारीदास पंचोली नामक कायस्थ ने राणा जगत द्वितीय के प्रधान, कूटनीतिज्ञ और सेनानायक के रूप में ख्याति अर्जित की थी।[3] राणा प्रताप द्वितीय के काल में देवजी पंचोली राणा अरिसिंह के काल में जसवन्तराय पंचोली राणा भीमसिंह के समय में किशनदास पंचोली राज्य के मुसाहिब रहे थे।[4] सहीवाला अर्जुनसिंह ने राणा स्वरूपसिंह के समय में राज्य के प्रधान पद पर कार्य किया था।[5] इसी प्रकार राज्य सैनिक सेवा में इन्हीं घरानों के सदस्य प्रमुख रहे थे।[6] फारसी तथा संस्कृत के विद्वान् अध्यापकों में राणा भीम कालीन मुंशी चन्दूलाल, राणा सरदारसिंह के काल में लाला चोखालाल राणा स्वरूपसिंह के शासन में लाला कृष्णदयाल एवं राणा शम्भूसिंह के समय में लाला गंगाप्रसाद और मुंशी केसरीलाल प्रमुख रहे थे।[7]

राज्य और जागीर के अधिकारी कामदार सैन्य नायक अध्यापक आदि अधिकतर इसी जाति के लोग रहे थे।[8] अभिजात एवं सामन्त लोगों से

---

1 वी वि पृ 729-30 775
2 इसी के नाम पर उदयपुर स्थित एक मुहल्ला 'कान्हजी का हाटा' कहलाता है—सहीवाला, भा 1 पृ 11-14, वी वि पृ 972
3 वी वि पृ 957, 963 व 975, उ ई भा 2 पृ 614, 996-998
4 भीम विलास पृ 31 पद 10, टाड—एनाल्स, भा 1 पृ 453, 534 वी वि पृ 178, 1548, उ ई भा 2 पृ 640
5 सहीवाला भा 1, पृ 81, भा 2 पृ 3 27 29 30, वी वि पृ 2025 2123, 2190, उ ई, भा 2 पृ 1037
6 सहीवाला, भा 1, पृ 46, वी वि, पृ 729-30 775, 1714 1992 1997 2028 उ ई भा 2 पृ 777
7 सहीवाला भा 2, पृ 42, 60, 72, कोठारी पृ 218
8 उपरोक्त भा 2, पृ 29-30, 64 66 व 72-73, भा 3 पृ 8 9 आदि।

सम्बंधित रहने के फलत इन्हें इनाम तथा जीविका के लिए जमीन जायदाद प्राप्त होती रहती थी।[1] इस प्रकार भू-ग्रहिता कायस्थ स्वत कृषक की श्रेणी म आ जात थे किन्तु इनकी भूमि पर कृषि काय इनके घरेलू दास अथवा गाँव के अन्य कृषकों द्वारा किया जाता था।

सामाजिक आर्थिक प्रतिष्ठा व सम्मान की सामाजिक शृंखला म यह जाति राजपूत एव वैश्यो के समानान्तर स्थिति बनाये रही थी। किन्तु जाति समाज की श्रेणीबद्धता मे इस जाति के स्थान वैश्यो के पश्चात् रहा था।

चारण भाट

कायस्थ जाति के समान ही चारण भाट जाति भी हिन्दू समुदाय की वर्ण विहीन जाति कही जा सकती है। डा शर्मा लिखत है कि गुण और कम म यह जाति ब्राह्मण और राजपूत जाति क मध्य की स्थिति मे रखी जा सकती है।[2] किन्तु विद्वान ने चारण और भाट को अलग अलग जाति म वर्गीकृत किया है[3] जो कि सत्य नहीं है। इस कथन की सत्यता निम्न तथ्यों म देखी जा सकती है—

(अ) दोनों वग वश इतिहास की सग्राहक जाति रहे थे।[4]

(ब) दोनों वग अपन अपने यजमानो मे प्रतिष्ठित और सम्मानित रहे थ।[5]

---

1 माफी की जमीनें इन्ह सेवा-काल तक प्रदान की जाती थीं अत सेवाकाल म ही अपने प्रभाव और निवेदन द्वारा माफी को बपौती (पैतक) म परिवर्तित कराने की कई पुष्टिया प्राप्त होती हैं। एस पट्टो के लिए द्रष्टव्य—क रि पट्टा माफी और पट्टा बापी वि स 1844 फाल्गुन सुदि 5 वि स 1918 फाल्गुन सुदि 7, वि स 1929, फाल्गुन बदि 6 का परवाना—सहीवाला भा 2 पृ 3-24

2 सो ला मी रा पृ 94, विद्यानुराग, कवित्व और याचक के ब्राह्मणी गुणा तथा सामिष खान पान की स्वत त्रता व शक्ति उपासना के राजपूती गुणा का इस जाति म सामजस्य रहा था।

3 सा ला मी रा, पृ 94 97

4 ए मेमोयर आफ से ट्रल इण्डिया भा 1 पृ 517, हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्टस भा 3 पृ 54 60 श्री वि पृ 982

5 वी वि पृ 177 78 180 880, ओलाड औदिच्य आमेटा, पृ 24 31

(स) याचकता के अंशों में अन्तर होते हुए भी दोनों वर्ग की जीविका साधन याचवाई पर निर्भर रहा था।[1]

(द) चारण लोग राजपूत जाति एवं राजकुल से सम्बंधित होने के कारण अधिक सम्मानित रहे थे जबकि भाट लोग जनसाधारण से सम्बंधित होने के कारण कम सम्मानित होते थे। किन्तु सामाजिक प्रतिष्ठा के माप पर दोनों में कोई अन्तर नहीं रहा था।[2]

(क) चारण, लोगों में शैक्षिक मान की अधिकता होने से राजस्थानी वात, ख्यात रासो और साहित्य में लेखक रहे थे जबकि भाट अधिकतर अपढ होने के कारण पीढीनामा वंशावली और कुर्सीनामा के संग्रहकर्त्ता थे।[3]

(ख) कविराजा श्यामलदास जो कि स्वयं चारण जाति के थे, उन्होंने भाटों की अलग जाति का उल्लेख नहीं किया है।[4]

(ग) दोनों वर्गों का सामाजिक आर्थिक स्तर बराबर सा रहा था।[5]

इन दोनों वर्गों के ऊँच नीच के सामाजिक अन्तर को एक ही जाति की दो उप-जातियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें पारस्परिक विवाह सम्बंध तथा खान पान व्यवहार इसी कारण नहीं होता था। किन्तु दोनों के

---

1 सो ला मी रा पृ 95-96

2 वी वि, पृ 177 780, 2107 उपरोक्त।

3 उपरोक्त पृ 176-180 उ ई, भा 2 पृ 1042 43, श्रीलाड औदिच्य आमेटा पृ 30

4 श्यामलदास ने भाट जाति को अपनी जाति से सम्बंधित नहीं लिखा इसका प्रमुख कारण राणा अमरसिंह द्वितीय के समय भाट राजद्रोह के फलस्वरूप कई भाट दमनात्मक कार्यवाही से तंग हो कर बनजारे बन गये थे। इस बनजारा जाति से चारणों का सम्बन्ध स्थापित करना विद्वान को अच्छा नहीं लगा होगा। फिर 19वीं शताब्दी में भाटों की याचकता का स्तर इतना गिरा दिया था कि उनसे चारण सम्बंध बतलाना स्वजाति का अपमान था, अतः भाटों पर इसीलिये लेखक द्वारा नहीं लिखा गया था।

5 दोनों वर्गों को राज्य धर्मार्थ गाँव अथवा कृषि भूमि अनुदान देता रहा था—वी वि पृ 181, 183, 779, 996 1707, 1909 आदि, उ ई भा 2, पृ 608

अन्तर्जाति विवाहों में बहिर्गोत्र सम्बन्ध प्रचलित रहे थे।[1] भाटों की लालसा-युक्त याचक प्रवृत्ति ने इस जाति की सामाजिक स्थिति को प्रतिष्ठा से अप्रतिष्ठा की ओर अग्रसर किया[2] जबकि चारणों की सामाजिक स्थिति यथावत् बनी रही थी। किन्तु उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान के अंशों में उभयगामी परिवर्तन के कारण चारण केवल ख्यात, बात और रासो के उद्‌भावक ही नहीं रहे अपितु शनैः शनैः शासक तथा जागीरदारों के सुख-दुख के साथी, परामर्शदाता और सभासद् के स्तर तक पहुंचने लगे थे।[3]

पतक व्यवसाय

वंश-परम्परागत डिंगल साहित्य लेखन,[4] वंशावली, पीढ़ीनामा, कुर्सीनामा लेखन तथा विवाह आदि सामाजिक उत्सव व संस्कारों पर प्रशस्तिगान का यजमानी कार्य इस जाति का मुख्य व्यवसाय रहा था। इस सामाजिक सेवा के बदले में यजमान की सामाजिक श्रेणी और आर्थिक स्थिति के अनुसार जीविका प्राप्त होती थी। राज्य की ओर से इं ट माफी (कर मुक्त) भूमि, गाँव इत्यादि प्रदान किये जाते रहे थे।[5]

कृषि कार्य

यजमानी प्राप्त भूमि धारक लोग कृषि कार्य भी करते थे।[6] इस कार्य

---

1 इन गोत्रों में भादा, आशिया, आढा, आहाडा, महिरिया, दधिवाडिया, बारहठ आदि प्रमुख थे—वी वि, पृ 177, 772 व 1707

2 सो ला मी रा, पृ 96। अपनी अर्थ-आकांक्षा पूर्ण नहीं होने पर भाट लोग किसी भी व्यक्ति अथवा वंश का इतिहास मनमाने ढंग से बदल कर सामाजिक उत्सवों या समारोहों में प्रसारित करते थे।

3 ए मेमोइयर आफ सेन्ट्रल इण्डिया, भा 1, पृ 517-18, उ ई, भा 2, पृ 1033-35। मेवाड़ में कवि श्यामलदास इसके उदाहरण रहे थे।

4 द्रष्टव्य—प्राचीन राजस्थानी गीत, भा 1-12

5 टाड—एनाल्स, भा 3, पृ 1654-57, वी वि, पृ 179, 181, 779, 1707 एवं 1909। इसी प्रकार लाख पसाव (1 हाथी, 2 घोड़ा मय जेवर, सोने चाँदी की पालकी और म्याना, 2 ऊँट, 2000-5000 रु नकद, 1000-5000 रु वार्षिक आमद का गाँव, 5000 रु का जेवर आदि—वी वि, पृ 966) पसाव मिलते रहते थे।

6 अचलदास खीची री वार्ता, वि स 1822 (1765 ई), पत्र 18, सो ला मो रा, पृ 97

मे इस जाति को लाभ अधिक रहता था क्योंकि जहाँ समाज से उनको नियत वार्षिक यजमानी प्राप्त होती रहती थी वहाँ कृषि उपज कर-मुक्त होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ बनाती थी।

प्रशासनिक एव सनिक सेवा

कृषि कर्म के अतिरिक्त इस जाति के लोग सनिक एव असैनिक सेवाओ मे लगे हुए थे। 18 वी शती मे मरहठो क विरुद्ध इस जाति के कई वीरो ने उल्लेखनीय सैन्य सेवाएँ की थी।[1] 19 वी शताब्दी म आन्तरिक उपद्रवो को दबाने क लिए सफल सैनिक कार्यवाहियो मे भाग लिया था। असैनिक सेवाओ मे बारहठ शिवदानसिंह तथा श्यामलदास के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने क्रमश राणा भीमसिंह तथा शम्भूसिंह व सज्जनसिंह के शासनकाल में शासक के मुख्य परामर्शक एव राज्य मन्त्रालयों म उच्च पदो पर काय किया था।[2] श्यामलदास की ख्याति वीर-विनोद ग्रन्थ क रचयिता एव इतिहासकार के रूप में अविस्मरणीय है।[3] इसे राज्य की ओर स प्रथम श्रेणी के जागीरदारो जसी सामाजिक प्रतिष्ठा और कविराजा की उपाधि तथा ब्रिटिश भारत सरकार की ओर से महामहोपाध्याय का खिताब दिया गया था।[4]

---

1 राणा अरिसिंह व हम्मीरसिंह कालीन आढा पन्ना राणा भीम कालीन चारण सौदा, बारहठ भोपालसिंह आढा दूल्हसिंह स्वरूपसिंह के शासनकाल मे चारण खुमाणसिंह ब्रजलाल राणा शम्भूसिंह व सज्जन सिंह के काल मे आढा चण्डीदान श्यामलदास आदि—वो वि प 1561 1700, 1714-18 1993, 2106, डा कालिकारजन कानूनगो—स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री पृ 47, इस काय के लिये इन्हें उदक ग्राम प्रदान किये हुए थे—ब रि उ परगना वही वि स 1901-1904 1913 बस्ता स I वि स 1908-1919 बस्ता स 2, वि स 1926 बस्ता स 3, वहीखाता चकबन्दी वि स 1933 बस्ता स 5, खतूणी बही वि स 1877, बस्ता स 6, स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री प 47

2 वी वि प 184, 1707, 1770, उ ई भा 2 प 1035

3 यह ग्रन्थ राणा शम्भूसिंह के शासन म लिखना प्रारम्भ किया गया था जो राणा फतहसिंह के काल म पूर्ण हुआ था—उ इ, भा 2, प 1034-35

4 उपरोक्त।

व्यापार कार्य

राणा अमरसिंह द्वितीय के काल में भाटो और चारणो द्वारा पैतृक कार्य के साथ सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने बेचने का वाणिज्य कार्य अपना लिया गया था। इस प्रकार के कार्यरत लोग बनजारा कहे जाने लगे थे।[1]

जाति के राजनीतिक विशेषाधिकार

शासक वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण चारणो को राज्य तिलक पर आशीष देने तथा शरणा (अपराधी को सक्षरण देने) का विशेषाधिकार 18 वी शताब्दी के पश्चात् तक विद्यमान रहा था।[2] किन्तु ब्रिटिश भारत सरकार के संरक्षण पश्चात् यह अधिकार अवैधानिक स्वीकृत कर समाप्त कर दिया गया था। फिर भी राजपूतो और सामाजिक स्थितियों पर इनका सामाजिक प्रभाव 19 वी शती तक बना रहा था।

जाति समाज की स्थिति और प्रकार्य मे उपरोक्त जातिगत व्यवस्था विभिन्न व्यवसायो में सलग्न होते हुए भी जाति-व्यवसाय के नियमो से आबद्ध रही थी। उनका जाति कर्म ही उनकी जीविका का मुख्य साधन रहा था। यह सभी जातियाँ द्विज वर्ण में मानी जाती रही थी। अब हम हिन्दू समुदाय की उन जातियों का अवलोकन करेंगे जो कि विभिन्न व्यवसायो द्वारा निर्मित हुई थीं और सामाजिक श्रेणी मे उनका स्थान पिछड़ा एव शूद्र जातियो मे माना जाता रहा था।

कृषि व्यवसायी जातियाँ

वैसे तो उपरोक्त जातियो के विवरण से ऐसा आभास होता है कि सभी जातियाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कृषि कार्य से सलग्न रही थी किन्तु करसा (किसान) की श्रेणी मे जाट जणवा धाकड डांगी और माली जातियाँ मानी जाती थीं।[3] मेवाड राज्य की जनसख्या मे इनका

---

1 वी वि प 201 779 हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्टस भा 3, पृ 54 60 बनजारा का शब्द सस्कृत के वाणिज्यकार तथा प्राकृत वणज्जआर का अपभ्रंश है जिसका अर्थ वाणिज्य-व्यवसाय से है।

2 वी वि प 996 1235, 1909 स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री, प 40

3 एनाल्स, भा 1, प 577 यटे—मेवाड, प 44-45 मेवाड रेजीडेन्सी, प 37

प्रतिनिधित्व 17% था ।[1] यह जातियाँ स्वजाति नियमों विवाह सम्बन्धी एवं खान-पान व्यवहारों में वर्गीकृत रही थीं। किन्तु ऊँच नीच का भेद-भाव इनमें व्याप्त नहीं था। सामाजिक आर्थिक पद स्तर पर सभी किसान अपने को 'करसा' कहलाने में गर्व समझते थे। ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित होने से सामाजिक सम्बन्धों में सहानुभूति व प्रेम के सूत्र से यह जातियाँ आबद्ध रहती थीं। इन जातियों में विवाह स्वजाति में ही किया जाता था फिर भी विवाह नियम द्विज जातियों के समान कठोर नहीं थे, विधवा-विवाह पुनर्विवाह तथा विवाह विच्छेद सुगमतापूर्वक रीति और नाता की परम्परानुसार हो जाते थे। इसलिए समाज में इन्हें नातायती जातियाँ कहा जाता था।[2]

राज्य सेवा

कृषक समूह से सम्बन्धित होने के कारण इन जातियों से पटेलों का निर्वाचन किया जाता था। यह निर्वाचन शासक और जागीरदार की इच्छा पर निर्भर था अन्यथा मनोनीत भी कर लिया जाता था।[3] 18 वीं शताब्दी के मराठा-उपद्रव काल में यह पद पैतृक एवं परम्परागत बन गया था। फलस्वरूप पटेलों के प्रजा और राजा हितैषी कार्यों तथा पक्षपातरहित स्थिति में कई अवगुण उत्पन्न हो गये थे। पैतृक स्थिति ने पटेलों को स्वार्थी लालची, स्वेच्छाचारी, प्रजापीडक बना दिया था। मराठों को खुश रखने का राज्य कोष में पूर्ण लगान जमा नहीं कराते और प्रजा से मनमानी लागत वसूल करते थे।[4] पटेलों का प्रमुख कार्य भूमि कर की वसूली, राज्यादेश का जन-प्रचार, बटाई या मुकाते में राज्यांश नियत करना आदि था। राणा भी इनका सम्मान करता और राजादेश इन्हीं लोगों के नाम पर भेजता था। पटेलों को राज्य सेवा के लिये कर मुक्त कृषि भूमि और राजस्व वसूली का $\frac{1}{40}$ हिस्सा दिया जाता था।[5]

सामाजिक-आर्थिक माप में चौधरी या पटेलों को छोड़कर शेष कृषक

---

1 एनाल्स भा 1, पृ 577

2 जगदीशसिंह गहलोत—राजस्थान का सामाजिक जीवन पृ 57

3 टाड—एनाल्स, भा 1 पृ 581, शर्मा—मेवाड़, पृ 44 48, मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास, भाग 2 पृ 540

4 टाड—एनाल्स—उपरोक्त पृ 580-81

5 उपरोक्त।

समाज श्रेणी में निम्न वग मे प्राते थे।[1] सामन्तवादी व्यवस्था मे इनके लिए सामाजिक आर्थिक स्तर उच्च बनाने का अवसर न तो दिया गया और न इन्होंने अपने अस्तित्व एव अधिकारो की चेतना जागृत करने का प्रयत्न ही किया था। 1922 ई का बीजोलियाँ और बगूं किसान आंदोलन इसका अपवाद था जो कि आधुनिक समय मे राजस्थान की प्रथम कृषक क्रांति के रूप मे जाना जाता है।

पशु पालक जातियाँ

कृषक जातियो मे सामाजिक स्तर पर पशु पालने वाली जातियो मे अहीर गुजर नामक गाय भैस पालक जाति गायरी नामक भेड बकरी पालक तथा रेबारी नामक ऊँट-पालक जाति मुख्य रही थी।[2] राज्य की जनसंख्या मे इन जातियो का जनप्रतिनिधित्व 6% रहा था।[3] इन जातियो के लोग मूलत कृषक थे किन्तु कृषि कम के साथ साथ दूध दही घृत, पशु क्रय विक्रय एव पशुओ की ऊन से कम्बल एव गर्म वस्त्र बनाने का वाणिज्योद्योग करते थे। गायरी जाति के लोग ग्राम्य जन के पशुओ के गोचर का काय भी करते थे जिसके बदले फसल-कटाई पर प्रति पशु नेग मिलता था। शहर मे इस काय को करने वाले माहवारी रकम लेते थे जो कि प्रति पशु 1 आना होती थी।[4] पशुओ के प्रजनन कराने पर इन्हे सरपाव मे धोती और पगडी प्रदान की जाती थी। खाद के लिय इनके पशुओ को खेत पर बिठाने के लिए कृषका से इन्हे धान्य का हिस्सा दिया जाता था।

पशुपालक जातियो का सामाजिक-आर्थिक स्तर मूल कृषक जातियो से अच्छा था। गुजर जाति के कई परिवार राजघरानो और ठिकानो से सम्बधित रहे थे। राजपूत-प्रथा के अनुसार शिशु को मा का दूध नही दिया जाता था अपितु इस काय के लिये गुजर स्त्रियो को उपयुक्त माना

---

1 श्यामलदास ने सामाजिक वग की श्रेणीबद्धता मे इसका स्थान दूसरा लिखा है (वी वि प 203) किन्तु यह वग सामाजिक श्रेणी-स्थिति के अनुसार निम्न ही रहा था।

2 भीम विलास, पृ 215। श्यामलदास ने इन जातियो को ततीय वग मे रखा है (वी वि पृ 208) किन्तु यह मूलत कृषक वग मे निम्न जातियो की श्रेणी मे माने जाते रहे थे।

3 मवाड रेजीडेन्सी के प्रकरण 21 की जनसंख्या के आधार पर।

4 चौहान—राजस्थान विलेज पृ 162

जाता था। इन स्त्रियों को धाय माँ तथा इनके पुत्रों को धाय भाई या धाबाई कहा जाता था। अध्ययनकाल म इन धाय भाई गुजरो का अलग वग धाबाई जाति के रूप म प्रतिस्थापित हो गया था।[1]

धाबाई

धाय भाई जाति के सदस्य राजपूतो से सम्बंधित होने के कारण सामाजिक आर्थिक दृष्टि स प्रतिष्ठित और सम्मानित रहे थे। राज्य द्वारा इन्ह जागीर भूमि प्रशासनिक तथा सनिक पद प्रदान किये जाते थे।[2] 18 वी शती की राज्य सेवा में राणा सग्राम द्वितीय कालीन धाबाई नगराज राणा अरिसिंह कालीन धाबाई कीका राणा भीमसिंह के समय म धाबाई हन्टू फत्ता आदि उल्लेखनीय प्रशासक एव सनिक रहे थे।[3] 19 वी शताब्दी मे धाबाई जाति के सदस्य राज्य की अधीनस्थ सवा म नियुक्त किये जाने लगे थ। इन सेवाओ मे प्रमुख रूप से शिकार विभाग का प्रब ध शिकार यात्राओ की यवस्था शिकारों मे शासक व जागीरदारो की सहायता करना अन्य यात्राओ की सुरक्षा व्यवस्था आदि का काम मुख्य था।[4] इस काल म धाबाई लोग पशु-पालन के साथ साथ पूर्णत कृषक जीवन व्यतीत करने लग थे।[5]

---

1 टाड—एनाल्स भा 1 पृ 501-502

2 धायभाइ कुण्ड प्रशस्ति (गोवधनविलास) वि स 1799 (1742 ई) चत्र सुदि 1 धायभाई मन्दिर प्रशस्ति वि स 1821 (1764 ई) मूल प्रति वी वि, पृ 1771-74। अन्य सन्दभ के लिये वी वि, पृ 974, 1520, 1537 1560 1562 1672 1673 उ ई भा 2 पृ 639 40 663-64 सरदेसाई कोमेमोरेशन, पृ 70

3 वी वि, उपरोक्त, मेनारिया—मेवाड का इतिहास (अप्र शो), पृ 198

4 द्रष्टव्य—बख्शीखाना रिकाड तथा पडा खा बहियाँ—19 वी शताब्दी रा अ उ शिकार खच वही वि स 1930-31 बस्तो जागीर धाबाई धनराज का घरेलू रिकाड—शिकार रा पाना।

5 ब रि—पट्टा बही, वि स 1901 1903 1905, बस्ता स 1 खतावणी वही वि स 1917, बस्ता स 2 खाता चक्बन्दी वही वि स 1931 बस्ता स 5 यग—मेवाड, पृ 44

शिल्प एव दस्तकार जातिया

इस वग की जातियो में चतारा सुनार छीपा सिकलीगर पटवा, उस्ता खेरादी, महीदोज कसारा, जडिया मोची गाधी लुहार कुम्हार एव बलाई मुख्य जातिया रही थीं।[1] इन सभी के सामाजिक सम्बन्ध तथा व्यवहार जाति के अन्दर ही रहा था। विवाह सम्ब ध म कठोरता नही थी। भोजन व्यवहार मे *जाति-दूरी* का भेद सभी जातियो म व्याप्त था। द्विज जातियो से इनकी सामाजिक दूरी का आधार खान पान स देखा जा सकता था। मोची, बलाई तथा मुस्लिम शिल्पिया क अतिरिक्त अन्य सभी के हाथ का पानी वश्य राजपूत तथा छ्यातो ब्राह्मणा द्वारा ग्रहण कर लिया जाता था। चतारा, सुनार जडिया कसारा पटवा सिकलीगर आदि का शिल्पी *जातियों की अन्तर्श्रेणी म प्रथम स्तर था।*[2] यह जातिया अभिजात एव सम्पन्न वग से सम्बधित रहती थीं अत दरिद्र वग में इनका स्तर सम्मानित था। जाति समाज की श्रेणीबद्धता म यह सभी जातियाँ 'कारु' कहलाती थी।[3] कारु (कारीगर) जातिया का सामाजिक स्तरण द्विज जातियों से

---

1 भीम विलास, पृ 215 टाड—एनाल्स (हिन्दी) भा 1, पृ 491, वी वि पृ 1670 उ ई भा 2 पृ 662, 1112-13। इन *जातिया के हिन्दी नाम क्रमश चित्रकार स्वर्णकार* वस्त्र छपाई करन वाले अस्त्र-शस्त्र बनाने वाले, गू थने वाले, बन्दूक बनान वाले, सुथार वस्त्र सिलाई करने वाले, तावा पीतल के बतन घडने वाले, आभूषणा म मीनाकारी करने वाले जूत बनाने वाले, टोकरी बुनकर लोह का सामान बनाने वाले मिट्टी के बतन बनाने वाल तथा रेजा बनाने वाल हैं।

2 सर्वेक्षण के अनुसार उदयपुर नगर की जाति आवासन की रचना म सुनारा की गली, चतारा गली, जडियो की ग्रोल कसारो की प्रोल आदि *राज्य-प्रासाद के निकट बनी हुई है। यह निकटता उनके स्तरीय महत्व* को प्रकट करती है। आवासन के लिये द्रष्टव्य—आवास निवास रहन-सहन प्रकरण।

3 टाड—एनाल्स (हिन्दी) भा 1, पृ 491 कल्चरल हिस्ट्री आफ गुजरात, प 47। उदयपुर सभाग म अभी भी ग्रामीण जन कारीगरा को कार तथा अन्त्यज को कम न के रूप म कमीन-कारु जातियो का सम्बोधन करते हैं।

निम्न तथा शूद्र जातियो से उच्च था। लुहार, सुथार छीपा, गांधी और कुम्हार जातियो का स्तर जातिगत-तथ्रेणी मे द्वितीय तथा मोची, बलाई आदि ततीय स्तर पर थी।[1] उस्ता नामक शिल्पी मुस्लिम समुदाय से सम्बंधित होने के कारण इसका विवचन मुस्लिम जाति के अनुभाग मे करेंगे। द्वितीय तथा ततीय स्तर की शिल्पी जातियां जनसाधारण से अभिजात वग तक के लोगो से सम्बंधित रहती थी अत इनका काय क्षत्र गाव से शहर तक था। ग्राम्य-शिल्पी अपन उद्योगा के साथ साथ कृषि काय भी करते थ। इनका मूल काय ग्राम्य जनो की न्यून आवश्यकताओ की पूर्ति रहा था, जिसके एवज म कृषक वार्षिक अन्न उत्पादन से खलिहाना नेग दत थे।[2]

राज्य सेवा

राज्य सवा म भी कई शिल्पी दैनिक, माहवारी अथवा वशानुगत काय करते थे। ऐसे शिल्पियो को राज्य की ओर स कपड़ा अन्न का नामा राशि अथवा जमीन जायदाद प्रदान की जाती थी।[3] इन शिल्पी जातियो के उप-वग व्यवसाय क आधार पर विद्यमान थ, जिनम राज भोई राज सेवा का काय करत थे।[4] बलाई नामक जाति के लोग रेजा (कपड़ा) बुनने के काय

---

1 मेरादीवाड़ा छीपा गली, गाछीवाड़ा कुम्हारवाड व मोचीवाड़ा का उदयपुर नगराय वर्गीकरण एव आवासन स्तर पर आधारित द्रष्टव्य—आवास निवास रहन-सहन प्रकरण।

2 राज्य का राजस्व दिय जान के पश्चात् किसान अन्न की ढरियो स अलग-अलग हिस्से बना कर शिल्पियो के नग एव नूत का हिस्सा अलग करता था (यह परम्परा आज भी विद्यमान है)। विस्तत-भू व्यवस्था प्रकरण।

3 ब रि खरच रो बहिड़ो वि स 1904 1905 व 1907, परगना बही वि स 1913, बस्ता स 1, पट्टा बहियां वि स 1908 1919 बस्ता स 2, रोजनामा बही, वि स 1919 बस्ता स 3 टीपणी रोजगारी, वि स 1930 बस्ता स 5 साबत रो बहिड़ो वि स 1932 आदि। श्यामलदास कलेक्शन—जारी वालो आमद रो चिट्ठो—कौमी हालत।

4 भोइयो मे कार भोई (शिल्पी काय करने वाल) फूल माली (फूल बचने वाले)। इसी प्रकार कुम्हारो में सलावटी कुम्हार (पत्थर गढने व मकान की चिनाई करने वाले), हांडिया कुम्हार (मिट्टी के बतन बनाने वाले) तथा कुम्हार (पानी भरने वाले) का वर्गीकरण आज भी समाज मे उपलब्ध है।

के साथ अन्य उच्च जातियों एवं राज्य के खेतों पर मजदूरी करते थे। ग्रामीण राज्य सेवा के पद पर इसी जाति के लोगों से गाँव-बलाई की नियुक्ति और निर्वाचन किया जाता था। आलोच्यकाल में यह पद वंशानुगत हो गया था। यह पद भी पटेल या पटवारी के अनुसार ही राज्य और प्रजा के मध्य शृंखला का काम करता था जिसमें पटेल या पटवारी के लिये ग्राम-कृषि की स्थिति एवं सूचना एकत्रित करने तथा राज्याधिकारियों की सेवकाई का मुख्य काम रहा था। इस सेवा की जीविका के रूप में पटेल के समान ही इन्हें राज्य की ओर से कर-मुक्त भूमि प्रदान की जाती थी।

आर्थिक स्थिति में शिल्पी जातियों का स्तर दयनीय रहा था। उद्योग-शिल्प पर पूर्णतः निर्वाह नहीं होने तथा 19 वीं शती के उत्तरार्द्ध में अंग्रेज सरकार की आर्थिक नीति से प्रभावित आयात निर्यात के कारण इनमें से अधिकतर लोग कृषि कार्य अपनाने लग गये थे।

सेवक जातियाँ

इस वर्ग की जातियों में कन्दोई तम्बोली तेली नाई बारी, पिंजारा (मुसलमान) खटीक कलाल धोबी ढोली इत्यादि प्रमुख रही थी।[1] यह सभी नातायत जातियाँ थी। इनमें सामाजिक सम्बन्ध अन्तःसमूह रहे थे। इन जातियों का पारस्परिक जाति-भेद कार्य की विशेषता एवं उसके प्रकार पर निर्भर करता था जैसे मिठाई भोजन बनाने वाले कन्दोई पान लगाने वाले तम्बोली तेल निकालने वाले तेली [2] बाल काटने व साफ करने वाले नाई पत्तल दोना बनाने वाले बारी आदि जाति के लोग, मांस-विक्रेता खटीक शराब विक्रेता कलाल कपड़े धोने वाले धोबी उत्सव गायन वादन करने वाले ढोली से सामाजिक आर्थिक स्तर में उच्च थे। सामाजिक धार्मिक कार्यों में नाई, बारी तम्बोली महत्त्वपूर्ण सेवक जातियाँ थी। जिनके बगैर उत्सव दुःसाध्य रहता था अतः उच्च स्तर के समूह में इनका स्थान विशिष्ट था। यह सभी जातियाँ यजमानी पर अपना निर्वाह करती थी।

यजमानी प्राप्त कर्त्ता जातियों के अन्तर्गत कुछ जातियों का आर्थिक जीवन उनके कृषि कार्य तथा पैतृक व्यवसाय पर आधारित था। कृषि कार्य

---

1 टाड—एनाल्स भा 1, पृ 367, वी वि पृ 1579, 1729 राजस्थान विलेज पृ 44

2 तेल निकालने वाले घाणी तेली तथा पत्थर का काम करने वाले भाटोड तेली कहे जाते रहे हैं।

करने वाले इस वर्ग के लोग अधिकतर कृषि मजदूरी (हाली) का काय करत थे।[1] इनका आर्थिक स्तर अन्य सहोदर जातियो के अनुक्रम म निम्नतर था।

निम्न जातियाँ

हिन्दू समुदाय की समाज व्यवस्था मे जाति समाज की निम्नतर श्रेणी मे भगी और चमार नामक जातियाँ थीं। चमार जाति की उपजातिया म मत पशु का चमडा सफाई व पकान वाले बोला, ग्राम्य चमकारी करन वाले रेगर तथा सूग्रर पालने वाल भांबी मुख्य जातियाँ थीं। मुस्लिम चमकारा को कसाई कहा जाता था। शौच सफाई तथा बस्ती सफाई काय करन वाले भगी (हिन्दू) और हेला (मुस्लिम) कहलाते थ। इनकी बस्तियाँ शहर और गाँव से बाहर बनाई जाती थीं। सावजनिक कुआ व जलाशय का प्रयोग वर्जित था[2] यह जातियाँ भी अन्तर्जाति विवाह मानती थी इनम विधवा विवाह तथा नाता प्रथा का प्रचलन भी था। यह जातियाँ समाज का महत्व पूर्ण सेवा करते हुए भी समाज द्वारा दलित रही थी। इसका मुख्य कारण तत्कालीन समाज म विकृत हिन्दू व्यवस्था व पोगा ब्राह्मणवादी प्रभाव था। इनके आवासन भोजन वस्त्राभूषण तथा रीति रिवाजो पर समाज और राज्य का कठोर नियन्त्रण रहता था। कोई भी व्यक्ति इसके विरुद्धाचरण करने का साहस नहीं कर सकता था। क्योंकि इन आचरणो को बनाय रखने की जिम्मेदारी जाति पचायतो की रहती थी।[3]

---

1 *इन जातियो के कुछ लोग अपनी सूझ-बूझ तथा प्रशसनीय सेवा द्वारा* शासक या जागीरदारो की समीपता प्राप्त कर अपनी स्थिति अच्छी बना लेत थ, उदाहरणाथ—1748 ई म तेली जाति के एक व्यक्ति को सरदारगढ ठाकुर ने अपना मुसाहिब (परामशदाता) बना कर जागीर प्रब ध उसे सौंप दिया था—(वी वि पृ 1729) किन्तु इस प्रकार न व्यक्तियो की सख्या नगण्य रही थी।

2 उदयपुर गोगुंदा भीण्डर, सलूम्बर देवगढ बनेडा भीलवाडा आदि *बस्तियो का सर्वेक्षण वी एस भटनागर—राजस्थान ड्यूरिंग 18 th* सेन्चुरी (अप्र शो) पृ 428, सो ला मी रा पृ 99

3 चमकार या हरिजन जातियाँ नये कपडे पहनने का अधिकार नहीं रखती थी। यदि नया कपडा पहिनना हाता तो उस पर कपडे की थगली (टिक्की) लगानी पडती थी—प गिरधरलाल शास्त्री स मौखिक साक्षात् पर आधारित।

चमकार जाति के सदस्य अपने पतक व्यवसाय के साथ कृषि-मजदूरी का काय भी करते थ।[1] इस प्रकार के हुए कृषक श्रेणी मे कीर नामक जाति के लोग नदियो के उथल पानी मे तरबूज तथा खरबूज की खेती द्वारा अपना निर्वाह करते थ।[2]

भगी जाति के सदस्य मेवाड राज्य में अधिक नहीं थे।[3] इस जाति का काय सफाई तथा समाज क मृत व्यक्तियो के दाह कम पर परित्यक्त द्रव्य एव वस्त्र प्राप्त करना रहा था।[4] यह जाति जसा कि उल्लेखित है, समाज की निम्न से निम्नतर जाति गिनी जाति थी। समाज की दया पर पलने वाली इस जाति पर समाज पर दया की जाती रही थी किन्तु इस जाति का जीवन-स्तर मानवता के नाम पर धब्बा रहा था।[5]

अन्य जातियाँ

जाति-समाज के श्रेणी क्रम स उपेक्षित शेष जातियों को हम तीन वर्गों म रख सकते हैं।

(क) घुमक्कड व्यवसायी जातियाँ—गाडोलिया लुहार बालदिया एव बनजारा।

(ख) अपराध कर्मी व लोकानुरजनी जातियाँ— (1) कजर सासी, मोरी, बावरी तथा (2) कालबलिया नट रावत, मेर आदि।

(ग) आत्मवासी अथवा आदिवासी जातियाँ—भील मीणा एव ग्रासिया

(क) घुमक्कड व्यवसायी जाति—गाडोलिया लुहार—गाडोलिया लुहार

---

1 सो ला भी रा पृ 99

2 वर्षा के दिनो म नदी पार कराने का काय भी करते थे। द्रष्टव्य—वाणिज्य व्यापार एव उद्योग प्रकरण।

3 टॉड—एनाल्स भा 3 पृ 1658-59। उदयपुर से 8 कि मी दूर नाई ग्राम में एक हरिजन परिवार रहता है जो अपनी जागीर (काय क्षत्र) मे 12-13 गाव लिए हुए है। इन जागीरो का वितरण मेवाड राज्य का दरबारी भगी जिसे ठाकुर कहा जाता था—करता रहा है। इस ठाकुर के वश म श्री धुलीराम नामक व्यक्ति अभी जीवित है जिसे क्षेत्रीय हरिजन जागीरदार के पद से सम्बोधित करत हैं।

4 वी वि, पृ 2085

5 19 वी शताब्दी म भी स्थिति यथावत् रही थी इसका साक्ष्य आधुनिक भारतीय सरकार द्वारा इनके लिए किये जा रहे प्रयास है।

मूलत लुहार नामक शिल्पी जाति की एक शाखा रह हैं। इस जाति के लोगों का पेशा लोह-धातु से कृषि उपकरणा (घास काटने की दातली हल का फाल, जमीन खोदने की सावल आदि) एव घरेलू उपकरणो (चलनी, सडासी, काटा निकालने का चिमटा बडे चिमटे आदि) का निर्माण करना और बेचना रहा था। यह लोग पारिवारिक समूहो मे बलगाडियो पर देशाटन करत रहत थे। जहाँ काम वहाँ धाम के अनुसार चलना और ठहरना इनका जीवन रहा था। एक ही समूह के लोग अन्तसमूह विवाह नही करत थे। सामिष भोजन पर कोई प्रतिब ध इस जाति मे नही था। गाडोलिया लुहार मे औरतें कम होने के कारण वधु-मूल्य लेने की प्रथा का प्रचलन था। इस जाति म जाति-पचायत का कठोर नियन्त्रण व्याप्त रहा था। यह जाति सामाजिक व्यवहार म दलित हिन्दू जातिया के अधिक निकट रही थी।[1] कठोर परिश्रम द्वारा उपार्जित जीविका पर इनका आर्थिक जीवन निभर रहता था।

बनजारा—यह जाति मेवाड के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र म बालदिया (बल रखने वाले) भी कहलात थे।[2] इनमें हैवासी गवारिया और नट नामक तीन उपजाति भेद थे।[3] इनका आर्थिक जीवन 18 वी शती तक ठीक था किन्तु मरहठा काल मे व्यापार-वाणिज्य का पतन इनके लिए भी आर्थिक सकट उत्पन्न कर गया था। 19 वी शताब्दी के उत्तराद्ध मे यातायात साधनो के विकास ने इनकी आर्थिक स्थिति को अवनत किया था।[4] परिणामत इस जाति के कई लोगो ने कृषि कम कृषि-मजदूरी तथा चोरी डकती का असामाजिक काय प्रारम्भ कर दिया था।[5]

---

1 वी वि पृ 202 विस्तत अध्ययन हेतु पुस्तक—डा सत्यपाल म्हेता—दी गाडोलिया लोहार आफ राजस्थान, इम्पक्स इण्डिया नई दिल्ली 1968

2 टाड—एनाल्स, भा 3 पृ 1657 मवाड मे सेज 1941 ई म बालदिया अलग से लिखा है (पृ ‹78) जो कि व्यवसायात्मक रूप मे बनजारा की उपजाति रही है।

3 हैवासी लोग मुस्लिम गवारिया निम्न जाति तथा बनजारा लाग चारण भाट जाति स च्युत जाति क थे—वी वि पृ 201

4 पोलीटिकल क सलटेशन जुलाई 1880 ई न 186 88

5 इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया प्रोविंशियल सिरीज खड 21 (राजपूताना) सत्यव्रत विद्यालकार—सामाजिक मानव शास्त्र, पृ 246

(ख) अपराधकर्मी और लोकानुरजनी जातियाँ—इस वग की जातियो मे कजर बागरिया, कालबेलिया, सासी, साटिया रावल सरगडा[3] आदि जातियाँ थीं। इन जातियो के विवाह सम्ब ध अ तर्जाति समूह म होते थे। रक्त सम्ब धो के अतिरिक्त इनमे कोई विवाह प्रतिब ध नही था।[2] कजर जाति का परम्परागत व्यवसाय मीणा और चारण जाति की वशावली-विरुद गायकी का रहा था कि तु काला तर मे यह जाति घणित कम एव भिक्षावत्ति करने लग गई थी।[3] कालबेलिया जाति साप का खेल दिखाने और आटा पीसने की चक्की खरल बट्टा गढ कर बागरिया झाड चटाई, आदि बनाने का लघु उद्योग कर जीविका चलाते थे। सरगडा जाति गाने-बजाने तथा रावल लोग रमत (नाटक)[4] द्वारा लोकानुरजन द्वारा प्राप्त द्र य से अपना निर्वाह करते थे। कजरो की उपजाति नट भी खेल तमाशे दिखा कर अपना पेट भरते थे।[5] यह सभी जातियाँ घुमक्कड जीवन व्यतीत करती थी और जगल मे सरकियाँ तान कर रहती थीं। जीविका नहीं चलने की अवस्था मे आसपास की बस्तियो से चोरियाँ कर पट भरती थी।[6]

मेर व रावत—इस जाति वग के सामाजिक क्रम मे मेर और रावत *नामक जातिया मेवाड के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र के वन प्रा तो म रहती थी।* मेर लोगो ने सभवत बार बार होने वाले मुस्लिम आक्रमणो के समय मे मुस्लिम-

---

1 वी वि पृ 201-202, मेवाड से सेज 1941 ई, पृ 578। कजर एव सासी के विस्तत अध्ययन हेतु द्रष्टव्य—से सेज आफ इण्डिया 1961 खण्ड 14, राजस्थान भा 6 पृ 4 9

2 उपरोक्त।

3 वी वि, पृ उपरोक्त। कजर एव रात म 45 कि मी दूर तक चोरी का धावा कर लौट आते थे। यह अपना काय पत्थर आदि फेंक, डरा-धमका कर करते थे—सामाजिक मानव शास्त्र, पृ 245

4 वी वि, पृ 1537

5 उपरोक्त पृ 201, सेन्सेज आफ इण्डिया 1961, खड 14, राज भा 6 डी पृ 4 व 6

6 उपरोक्त, पृ 201-202, उपरोक्त सासी एव कजर के लिए कहावत भी है कि लूट खाकर यह अपना जीवन चला सकते हैं, (से सेज 1961 14 6 डी, पृ 8)। यह स्थिति इस जाति की न्यून तप्ति को इगित करती है।

धम अगीकार कर लिया था। मुस्लिम धर्मी होते हुए भी इनके रीति रिवाज हिन्दू प्रभाव से मुक्त नही हो सके थ।[1] इस जाति के लोग सम्पन्न व्यक्तियो के यहाँ घरेलू दास बन कर अपना गुजारा करत थ।[2] मेर अपने स्वामी के मेर दास दासियो को रक्त सम्ब धी मानत हुए परस्पर विवाह नहीं करत थे।[3] मरो की आर्थिक स्थिति का अनुमान उनकी पैतक दासत्व प्रवत्ति स लगाया जा सकता है। 18 वी शताब्दी के पूव य अपने स्वामी की सेना के सनिक का काय करते थ और इनकी जीविका भी चल जाती थी। कि तु मराठा प्रतिक्रमण काल मे स्वामियो की स्वच्छाचारी प्रवत्ति और निय त्रण-विहीन राजनतिक सामाजिक स्थिति न इस जाति को लुटेरो बना दिया था। अग्रेज सरकार के सरक्षण म आने के बाद इनकी इस प्रवत्ति को रोकने हेतु मेरवाडा प्रदेश का अलग गठन कर इन्ह सनिक कार्यों मे लगाने के लिये नसीराबाद छावनी की नीव डाली गई। 1822 ई मे इस छावनी मे मेर-बटालियन की शुरुआत हुई।[4] इसके साथ ही मरो को कृषि योग्य भूमि प्रदान कर कृषक जीवन व्यतीत करने की ओर भी प्रेरित किया गया था[5] कि तु इसका अधिक सफल परिणाम नही हुआ और यह लुटेरी प्रवत्तियो म रत रहे थे।[6]

---

1 टाड—एनाल्स, भा 2, पृ 787-796, वी वि, पृ 198 200

2 यह गुलाम तीन प्रकार के होते थे— (अ) चोटीकट—ऐसे दासो पर स्वामी का पूर्ण अधिकार होता था (ब) बसीवान—मुस्लिम मर जो कि चोटी कट के जसे गुलाम होते थे कि तु स्वामी और दास के मध्य समझौता होता था एव (स) अगुलीकट—अपनी अगुली काट कर उसके रक्त को स्वामी के हाथ पर रखता था। यह दास स्वामी के पुत्रवत् होते थे कि तु इस दास के माल और जीविका पर स्वामी का अधिकार नही होता था—वी वि पृ 199 200

3 टाड—एनाल्स भा 2 पृ 787-796, वी वि उपरोक्त।

4 पोलोटिकल क सल्टेशन 30 दिसम्बर 1818 ई स 31 11 अप्रेल 1822 ई स 48 व 50 30 दिसम्बर 1848 ई स 264-474 टाड—एनाल्स भा 2 पृ 1153 ट्रीटीज एन्गेजमेण्ट खड 3 पृ 18 111 135, 454, 480, वी वि पृ 1568 1732

5 उ ई भा 2, पृ 710 11

6 इसी प्रकार मोगिया व बावरी जाति के लोग लूटमार करत रहे थे—मेवाड एजेन्सी रिपोर्ट सन् 1872-73, वी वि, पृ 1219 उ ई भा 2 पृ 707 755

(ग) आत्मवादी अथवा आदिवासी जातियां—इस जाति वर्ग के अन्तर्गत भील, ग्रासिया एवं मीणा नामक जातियां रही थीं जिन्हें आधुनिक समय में अनुसूचित जन-जातियों की श्रेणी में रखा गया है। राज्य के भोमट, मगरा, छप्पन, खेराड, उपरमाल के वन्य क्षेत्र में इनकी संख्या अधिक रही थी।[1] यह वर्ग भी शाखाओं के अनुसार वर्गीकृत रहा था।[2] इनमें विवाह सम्बन्धों में भाई बहिन के रक्त सम्बन्धों को छोड़कर शेष पर प्रतिबन्ध नहीं था। इनमें अधिकतर नाता और दापा (वधु मूल्य) की प्रथा विद्यमान थी।[3]

यह आदिवासी जातियां मेवाड़ पर बाह्य आक्रमणों के विरुद्ध निरंतर राज्य की सेवा करती रही थीं।[4] मराठा अतिक्रमण काल में इनकी सामरिक सहायता से मरहठा इतने विक्षुब्ध रहते थे कि इस जाति के सदस्यों को देखते ही जिन्दा जला दिया करते थे।[5] मेवाड़ में स्वच्छन्द सामन्तिक प्रवृत्तियों के फलस्वरूप यह जाति भी शनैः शनैः लूटमार और चोरी द्वारा अपनी जीविका चलाने लगी थी।[6] इस लुटेरी प्रवृत्ति को रोकने के लिए राज्य प्रशासन द्वारा इनके क्षेत्र में बोलाई तथा रखवाली नामक मार्ग-शुल्क लेने का विशेषाधिकार प्रदान किया गया था।[7] फिर प्रशासन इनकी लुटेरी प्रवृत्ति पर नियन्त्रण करने में असमर्थ रहा था। 19 वीं शताब्दी में ब्रिटिश संरक्षण में आने के पश्चात् राज्य और ब्रिटिश सरकार ने इस जाति पर नियन्त्रण स्थापित करने हेतु कई सैनिक कार्यवाहियां की तथा इनके मुखियाओं (गमेती) से शान्ति बनाये रखने के समझौते किये।[8] इन समझौतों द्वारा इनके बोलाई और रख-

---

1 टाड—एनाल्स भा 3 पृ 1715, वी वि पृ 160-197

2 नोनामा, भूमारी, पारगी, वा रा, लाडर, दानजी, मीणों में मोटीस व परिहार मेवाड़ में रहते थे—वी वि पृ 194 व 197, मेन्सेज आफ इण्डिया 1961, ख 14 राज भा 6 बी।

3 द्रष्टव्य—विवाह परिवार एवं प्रथाएँ प्रकरण।

4 टाड—एनाल्स भा 1, पृ 413 वी वि पृ 1697-98, 1742

5 ग्राट डफ—हिस्ट्री ऑफ दी मराठा भा 1 पृ 104

6 पालिटिकल कन्सलटसन—11 अप्रेल 1822 ई, स 48, ट्रीटीज, एन्गेजमण्ट, ख 3 पृ 18 व 454

7 कनल ब्रुक—हिस्ट्री ऑफ मेवाड़, पृ 72-73, उ ई, भा 2, पृ 714

8 उपरोक्त प 74 91 व 714-15

वाली अधिकारो का हान होना था अत यह समझौते विफल रहे थ।[1] अन्तत इनकी घनी बस्तियो वाल केन्द्र—खेवाडा, कोटडा तथा देवली मे छावनिया बना कर इन्हे सनिक कार्यों म लगाने का निश्चय किया गया।[2] इसके पष्ठ मे ब्रिटिश अधिकारियो को इस जाति की स्वामिभक्ति तथा इस पर स्थाई नियत्रण का लाभ था। इनके परम्परात्मक भाग शुल्क के अधिकार को बना रहने दिया गया था।[3] 1881 म राणा सज्जनसिंह क शासन द्वारा इनके जाति नियमो, परम्पराई आर्थिक अधिकारो म अधिकारिक हस्तक्षप के कारण सम्पूण भील जाति ने राज्य का प्रबल विरोध किया था। कई लोग मारे गए। अन्त म राज्य द्वारा इनस समझौता कर इनके सामाजिक-आर्थिक अधिकारों को यथावत् बना रहने दिया गया था।[4]

कई आदिवासी जो कि ग्राम बस्तियो क आस पास रहत थे, गाँवो म बैठ बगार (अवतनिक मजदूरी) द्वारा अपना निर्वाह करते थ। श्यामलदास इनक आर्थिक जीवन के बारे म लिखत हैं कि प्रत्यक गाँव म कुछ घर भील-मीणो के होते हैं, जिन्हे बठिया (मजदूर) के घर कहा जाता है। यह गाँव के लोगो की मवेशी चराई, घास कटाई इमारत बनवाने तथा कृषि मजदूरी का काम करते है इसके एवज म गाँव की ओर से इन्हे कृषि योग्य माफी-भूमि मिली होती है। कहीं कही यह गाव की चौकीदारी का काम करते है। गाँव के किसान, जागीरदार और राज्य कमचारी लोग इनस आधा सेर जव मक्की अथवा भरपेट रोटा की दनिक दानकी (भत्ता) पर बेगार के काम म

---

1 पो क 30 जनवरी 1839 ई स 39, उपरोक्त वी वि प 1952-56 उ ई भा 2 प 763-64, 779

2 1841 ई म मेवाड भील कोप की स्थापना ट्रीटीज एन्गेज ख 3, प 18 व 454 हिस्ट्री आफ मेवाड (ब्रुक) प 84-85 उ ई, भा 2 प 739। किन्तु यह प्रयत्न भी अधिक सफल नही हुए थे। द्रष्टव्य—राजपूताना एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोट (कनल इडन) 1865 66 ई 1866 67 ई (कनल हेचिसन)—1869 की मेवाड एजसी रिपोट।

3 इण्डिया एण्ड नेटिव प्रिन्सेज (ट्रेवल इन सेन्ट्रल इण्डिया) प 137, 139 150

4 वी वि प 192, 2217 28, उ ई भा 2, प 822 24 राज-स्थान मे राजनीतिक जन जागरण प 72-75

हमाली का काम लेते हैं।[1] वनवासी एव वस्तीवासी भील-मीणो के उपरोक्त आर्थिक जीवन से यह निष्कष निकलता है कि इनका जीवन कठिन और सघषपूर्ण होता था। यद्यपि इनकी आर्थिक आवश्यकताओ मे तन ढकने के लिए एक दो गज कपडा घास फूस की टपरी महुआ की शराब तथा एक मुट्ठी मक्की की घूघरी इनके सतुष्ट जीवन के लिए काफी होते थे।[2]

आसिया भील नामक अन्य कृषक भील कही कही भूमिया-भील के रूप मे जाने जाते थे। यह वग सामाजिक स्तरण म उपरोक्त भीलो से अशास उच्च रहा था। इनकी शाखा प्रशाखा राजपूतो से मिलती-जुलती रही थी।[3] यह भी खान पान व्यवहार एव विवाह सम्बन्धो म उपरोक्त भीलो के जाति नियमो को मानते थे। इनका आर्थिक जीवन कृषि पर निभर होने के कारण सामान्य आदिवासियो से अच्छा रहा था।

मुस्लिम धम समुदाय

हिन्दू समुदाय के पश्चात् राज्य की जनसख्या मे द्वितीय स्थान मुस्लिम समुदाय का रहा था। हिन्दू जाति व्यवस्था से प्रभावित भारतीय मुस्लिम भी विभिन्न स्तरणो मे बटे हुए रहे थे।[4] इन स्तरणो मे[5]—

प्रथम स्तर—अशरफ समूह का रहा था। इनम सैयद, शेख एव पठान मुसलमान आते थ।

---

1 बी वि, पृ 166, श्यामलदास कलेक्शन—खारीवालो आमद रो चिट्ठो।

2 इण्डिया एण्ड इटस नेटिव प्रि सेज पृ 143, बी वि, पृ 192, श्री चन्द्र जैन—वनवासी भील और उनकी सस्कृति पृ 3 एव 35

3 मे सेज आफ इण्डिया 1961 खण्ड 14, राज भा 6 बी पृ 7

4 ऊच नीच की दृष्टि से कनिगम ने सय्यद मुगल, शेख तथा पठान (हिस्ट्री आफ दी सिक्खस, पृ 31) एव राम बिहारीसिह तोमर ने अशरफ-उच्च मुस्लिम अजलफ—किसान, मोमीन मन्सूरी और अब्राहीमी व अरजल—हलालखोर लाल बगी व अबदल (भारतीय सामाजिक व्यवस्था पृ 128) मे विभाजित किया है।

5 डॉ गौस के अप्र शोध से उद्धृत—(सन्दभ—डी एन मजूमदार—रेसेज एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया, पृ 310 किंग्सले डेविस—ह्यूमन सोसाइटी पृ 30, गहलोत—राजस्थान का सामाजिक जीवन, पृ 12

द्वितीय स्तर—धर्म-परिवर्तित मुस्लिम का था। (डा गौस मुस्लिम राजपूत लिखते हैं) इसमे कयामखानी, मेवाती आदि थे।

तृतीय स्तर—पाक व्यवसायी जातियों का था। इसमें जुलाहा दर्जी, कसाई हज्जाम, कुजड़ा, धुनिया धोबी फकीर महावत आदि थे।

चतुर्थ स्तर—नापाक जातियों का था— महत्तर, जिन्हें हेला कहा जाता था।

मुस्लिम धर्म की मुस्लिम वर्ग निरपेक्षता का प्रभाव मेवाड़ के समाज में प्रचलित नही था। विभिन्न स्तरो मे उपस्तरीय भेद विभेद का प्रभाव विवाह सम्बन्धो व सामाजिक व्यवहारो पर नमनीय नियन्त्रण रखती थी।[1] मुस्लिम जाति व्यवस्था पर हिन्दू जातिवादी प्रभाव के साथ-साथ धर्म परिवर्तित मुस्लिम—हैवासी बनजारा मेव मेर खिल्जी कायमखानी आदि के कई रीति-रिवाज हिन्दू-रिवाजो के अनुसार प्रचलन में थे।[2]

मेवाड़ राज्य मे मुस्लिम समुदाय का मुख्य कार्य सैनिक सेवा रहा था। आलोच्यकाल मे मराठो के विरुद्ध प्रशसनीय सैनिक सेवाओ के फलत कई परिवारो को जमीन-जागीर प्रदान की गई थी।[3] सैनिक सेवाओ के लिए कई परिवार बन्दूक, तोप तथा बारूद बनाने का कार्य करते थे जिन्हे उस्ता एव सोरगर कहा जाता था। 19 वी शती में मेवाड़ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समझौता होने के बाद सैनिक आवश्यकता नहीं होने के कारण मुस्लिम परिवार अन्य व्यवसाय की ओर उन्मुख हुए। इसमें अधिकतर कृषि कार्य करने लगे थे। कृषक मुस्लिम का एक व्यवसायी वर्ग कुजड़ा जाति से जाना जाता रहा है।[4]

---

1 उच्च स्तर का व्यक्ति निम्न स्तर से कन्या ले सकता था किन्तु निम्न स्तर के व्यक्ति का विवाह उच्च स्तर में नही हो सकता था, यह परम्परा वर्तमान काल में भी विद्यमान है।

2 कब्र पूजना चढ़ावा चढ़ाना गाना-बजाना मोहरम को बाजो के साथ निकालना, मृत्यु के बाद तीजा की बैठक बीसा या चालीसवा करना, कुछ जातियो में तोरण का प्रयोग करना आदि—हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्टस, भा 3 पृ 78-86, गहलोत—रा सा जी पृ 50

3 भीम विलास, पृ 60 63, टाड—एनाल्स भा 1 पृ 232 33 वो वि, 1566 67, 1693, 1715, 1719-20 उ ई भा 2 पृ 657, 667, 681

4 ब रि —जमा बहियां वि स 1901-1904, बस्ता स 1

कृषक वर्ग के अतिरिक्त अन्य व्यवसायी वर्गों में रंगरेज (कपड़े रंगाई का काम करने वाले) चूड़ीगर (चूड़ी बनाने वाले) सिकलीगर (अस्त्र-शस्त्र बनाने वाले) पिंजारा (रूई धुनने वाले), जुलाहा (कपड़े बुनकर) इत्यादि के साथ ही समाज सेवी निम्न स्तर के लोगों में हज्जाम कसाई, भिश्ती तथा हलालखोर मुख्य थे।[1] व्यवसायी मुस्लिमों का आर्थिक जीवन स्तर शिल्पियों दस्तकारों तथा निम्न जातियों के अनुरूप रहा था। किन्तु शासक और जागीरदारों से सम्बंधित व्यवसायी मुसलमानों की स्थिति साधारण मुस्लिमों से उच्च थी।[2]

राज्य की असैनिक सेवा करने वाले मुसलमानों में फीलखाना (हस्तीशाला) के महावत नाव के कारखाने के नाविक (नावड़चा) अस्तबल के साईस पायगादार हाथियों को प्रशिक्षण देने वाले जलेबदार, राज्य सवारी में छड़ी लेकर चलने वाले छड़ीदार राजकीय कमठाणों के बढ़ई लुहार, पत्थर गढ़ने वाले सलावट चुनाई करने वाले मिस्त्री, नक्काशी करने वाले नक्काश आदि मुख्य थे।[3] इस श्रेणी से उच्च वर्ग वाले राज्य के मुस्लिम सेवकों में हिसाब किताब रखने फारसी व उर्दू की लिखा पढ़ी करने वाले मुंशी तथा पढ़ाने का काम करने वाले उस्ताद लोग थे। इन राज्य सेवकों का राज्य की ओर से वेतनस्वरूप भूमि अथवा नकद दिया जाता था।[4] सैनिक सेवा में जमादार हवलदार सूबेदार अजीटन और मेजर के पदों पर भी कई मुस्लिम लगे हुए थे।[5]

---

1 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन—परगना जहाजपुर री लागत रो नामो, खानासुमारी बही वि स 1914 बस्ता स 1 एव 13, श्यामलदास कलेक्शन—खारीवालो आमद रो चिट्ठो।

2 बख्शीखाना रिकॉर्ड का आधार—पावणी बहियाँ एव पट्टा बहियाँ। विधवाओं तथा अनाथों को भी पावणी दी जाती थी—वी वि पृ 1792

3 ब रि—खच बहियाँ सवत् 1908-1919 बस्ता स 2, रा म उ

4 ब रि—रोजनामा बही, वि स 1919, पावणी बही वि स 1924 बस्ता स 3 टीपणी रोजगारी वि स 1930, बस्ता स 4 व 5, वी वि पृ 1792 1938, सहीवाला, भा 2, पृ 34, 42

5 19 वी शती की पल्टणों में—एकलिंग भीम शम्भु और सज्जन पल्टन में कायरत नायक व सैनिक खच—हिसाब फौज खच, वि स 1919-

धर्माधिकारियो के अन्य वर्गों म काजी तथा मौलवी लोग थे। इनकी जीविका धर्मार्थ भूमि या दान पर चलती थी। ऐसे धार्मिक पुरुषो को कई विशेष सम्मान तथा अधिकार भी होते थे जिसके अनुसार वे सामाजिक न्याय तथा व्यवस्था बनाये रखते थे।[1]

बोहरा मुस्लिम

आर्थिक रूप मे समृद्ध तथा सामाजिक श्रेणी मे शिया मत को मानने वाले बोहरा मुस्लिम राज्य मे विद्यमान थे। बोहरा व्यापारियो का सर्वप्रथम विवरण राणा शम्भूसिंह के काल म प्राप्त होता है। सम्भवत विशेष व्यापारिक सुविधाओ से प्रेरित होकर यह लोग मेवाड म आये होगे। राणा सज्जनसिंह क समय मे उदयपुर के वणिक व्यापारियो द्वारा की गई हडताल (1878 ई) का बोहराओ द्वारा समर्थन नही किया गया था। फलस्वरूप राणा ने इनको अधिक प्रोत्साहन देकर राज्य मे विशेष व्यापारिक सुविधाए प्रदान की थी।[2] यह लोग साहूकारी ब्याज, इत्र, साडियों पर जरी का काम, मोती माला आदि पिरोने का कार्य, कपडे और मनिहारी विक्रय-फेरी का धन्धा करते रहे थे। 19 वी शती के उत्तरोत्तर में लोह व्यवसाय के थोक व्यापार पर इन्होंने अधिकार जमा लिया था। इनकी आर्थिक स्थिति मुस्लिम समुदाय मे अच्छी रही थी।[3] राज्य सेवाओ मे नियुक्त कई मुस्लिम राज्य के आदिवासी क्षेत्रो म रुपयों के लेन देन तथा वाणिज्य का धन्धा करते थ। राणा शम्भूसिंह के शासन मे उल्लेख मिलता है कि हैदर हिप्तुल्लाह ईसाताजखाँ तथा रसूल बोहरा नामक व्यक्ति मगरा जिल म ऊंची

1932 पडाखा वही, वि स 1930 1967, वी वि, पृ 1933-35 1938 2231 2248-49 सहीवाला भा 2 पृ 42 उ ई भा 2, पृ 815

1 राणा अमर द्वितीय प्रदत्त वि स 1764 (1707 ई) का पट्टा एव राणा सग्राम द्वितीय प्रदत्त वि स 1782 (1725 ई) का पट्टा— फोटो प्रति—रा अ उ सग्रह सो ला मी रा पृ 103

2 वो वि पृ 2121, 2195, उ ई, भा 2, पृ 871

3 उदयपुर नगर की छोटी और बडी बोहरवाडी भीण्डर सलूम्बर और बडी सादडा जागीर की बोहरवाडियो म निर्मित 19 वीं शती के निवास इसके प्रमाण हैं। इन मकानो की अच्छी अवस्था का अकन आधुनिक समय म भी किया जा सकता है।

दरा पर रुपया ब्याज देते थे और बदले म भील लोगा की सम्पूर्ण उपज पर अधिकार कर उन्हें दास बना लेते थे।[1]

इसाई समुदाय

इस समुदाय का मेवाडी समाज म प्रवेश 1818 ई की मेवाड-ईस्ट इण्डिया कम्पनी समझौते के पश्चात् प्रारम्भ हुआ था। राज्य मे एजे सी तथा रेजीडेन्सी के ब्रिटिश कमचारी धम प्रचारक पादरी देशी इसाई, सनिक कमचारी इस समुदाय मे सम्मिलित रहे थे।

जनगणना की सांख्यिकी के अनुसार 19 वी शती के अन्तिम त्रिदशक मे इनकी जनसख्या का विवरण निम्न था[2]—

1881 ई	130 प्राणी			
1891 ई	137 प्राणी			
1901 ई	243 प्राणी			
		देसी	यूरोपियन	यूरेशियन
		184	48	11

सिक्ख तथा अन्य जाति के लोग 19 वी शती के अन्तिम वर्षों म मेवाडी समाज के हिन्दू समुदाय मे अस्तित्व धारण करने लगे थे जिनकी सख्या 10 से अधिक नहीं रही थी।[3]

उल्लेखित अध्ययन के निष्कषत कहा जा सकता है कि सामाजिक उच्चोच्च परम्परा और पैतक व्यवसायो ने जातियों की आकृति और कार्यों का नियमन कर रखा था। इस नियमन के अनुसार ब्राह्मण और ब्राह्मणी कृत्य उदग्र रूप से सर्वोच्च एव चमारी काय निम्नतम रहे थे। प्रत्येक जाति म पुन ऊँच नाच की अनुप्रस्थ सामाजिक दूरी व्याप्त थी उदाहरणाथ-वेदपाठी और पुरोहित काय करने वाले ब्राह्मण अधिक सम्मानित तथा सव

---

1 वी वि, पृ 2090। आधुनिक काल म भी काटडा क्षेत्र म कई मुस्लिम परिवार पैतक साहूकारी का धधा करत हैं।

2 मेवाड रेजीडेन्सी पृ 38

3 उपरोक्त प 52, राजस्थान में राजनतिक जन जागरण, प 46

भाई करने वाले कम सम्मानित माने जाते थे।[1] व्यक्ति की जाति प्रतिष्ठा, सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक प्रतिष्ठा का स्तर उसके पद तथा आर्थिक शक्ति से देखा जाता था। राजनीतिक पद, प्रतिष्ठा और शक्ति का मुख्य आधार राज्य का शासक था। यह शासक समाज की प्रभु जाति राजपूतों का प्रतिनिधित्व करता था अतः आर्थिक स्तर पर यह जाति समाज की शक्तिशाली इकाई रही थी। शक्तिशाली इकाई के कृपा पात्रों लोग समाज के अभिजात्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे।

अभिजात्य वर्ग के आश्रित जातियाँ एवं लोग जिनमें अधिकतर द्विज जाति और उच्चश्रेणी के शिल्पी व दस्तकार रहे थे, मध्यम वर्ग का निर्माण किये हुए थे। इस वर्ग में धर्मार्थ भू-धारी जातियाँ भी सम्मिलित थी।

कृषिकर्मी एवं दस्तकारी कार्य करने वाली अधिकतर जातियाँ निम्न वर्ग की थी। इन जातियों पर उच्च एवं मध्यम वर्ग का सामाजिक-आर्थिक दबाव रहा था। इनका जीवन दासत्व में लिप्त था। इसी वर्ग में कुछ जातियाँ जो अछूत थी सामाजिक सम्मान की दृष्टि से सर्वथा दलित रही थीं। सामाजिक आर्थिक अधिकार के नाम पर तिरस्कार इनकी जीविका थी और समाज का अनवरत सेवा इनका धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता रहा था।

यद्यपि उच्चोच्च परम्परा और जन्मजात स्थितियों ने जाति भेद पनपा रखे थे किन्तु एक-दूसरे की जाति की मान-मर्यादा और उसके नियमों का आदर करते हुए व्यवहारिक और आर्थिक सम्बन्धों में जातियाँ अन्योन्याश्रित थी। इन अन्तर्सम्बन्धों में यजमान और यजमानी परम्परा ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था। इस प्रकार जाति व्यवसाय की दृष्टि से मेवाड़ का समाज ग्रामीण-सभ्यता और आदिम संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते हुए आत्मनिर्भर, आर्थिक व्यवस्था वाला रूढ़िवादी परम्परागत वातावरण अपनाये हुए रहा था।

---

1 यह ऊँच नीच की परम्परा सभी जातियों में विद्यमान रही थी—जैसे जागीरदार राजपूत उच्च गोला राजपूत निम्न व्यापारी महाजन उच्च सेवक महाजन निम्न भूमिया कृषक उच्च, हाली कृषक निम्न आदि।

अध्याय 5

परिवार, विवाह एव प्रथाएँ

किसी भी समाज का इतिहास तत्कालीन सामाजिक सस्थाओ के स्वरूप एव तत्कालीन समय के समय स्वीकृत एव प्रचलित प्रथाओ से भी सबधित है। कम से कम दो सामाजिक सस्थाएँ—परिवार एव विवाह ऐसी सस्थाएँ हैं जो न केवल मानवीय व्यवहार का नियन्त्रण पक्ष हैं अपितु समाज के नियामक पक्ष का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी प्रकार से प्रचलित समय में प्रथाएँ भी उस युग की व्यवस्था सबधी बहुत से दृष्टिकोणो को प्रस्तुत कर सकती हैं। समाज के कई खण्डो की स्थिति इन प्रथाओ के व्यवहार के साथ जुडी हुई है। रूढिवादी समाज में प्रथाओ का स्वरूप और अधिक विचित्र था, विशेष रूप से स्त्रियो की सामाजिक स्थिति के सबध मे।

रूढिवादी समाज से ही परिवार अपने सदस्यो की सामाजिक आर्थिक स्थिति उनके स्थान और सम्मान का निर्धारण करता आया है। इसके अन्तर्गत जन्मजात स्थितियाँ सामाजिक स्थान और सम्मान[1] सामाजीकरण की प्रक्रिया, परम्पराओ प्रथाओ आचरणो का ज्ञान सहयोग की भावना आदि व्यक्ति द्वारा ग्रहण किया जाता था। एक प्रकार से परिवार सामाजिक जीवन की प्रथम पाठशाला है।[2] आर्थिक पक्ष में परिवार द्वारा सदस्यो के आर्थिक उत्तरदायित्व और श्रमविभाजन का सचारण सम्पत्ति का सग्रह और वितरण तथा अबाध, अपाहिज व वृद्ध की सुरक्षा और कल्याण का निर्वाह होता है। पारिवारिक व्यवस्थाएँ तथा व्यवस्था पूर्ति के लिए विवाह नामक सस्था का तथा तत्सम्बन्धी प्रथाओ तथा परम्पराओ का आलोच्य काल में स्वरूप का अध्ययन इस प्रकरण का उद्देश्य है।

परिवार

मेवाड में सम्पत्ति का आधार भूमि था।[3] भू-आश्रित आर्थिक

---

1 व्यक्ति की जन्मगत प्रतिष्ठा ही सामाजिक प्रतिष्ठा निर्धारित करती थी- जातियाँ एव व्यवसाय अध्याय।

2 द्रष्टव्य—शिक्षा प्रचलन एव प्रबन्ध अध्याय।

3 मेवाड राज्य में जीविका का मुख्य साधन कृषि रहा था। प्रत्येक व्यक्ति

व्यवस्थाग्रो के परिणाम स्वरूप एक परिवार कई पीढियो तक पैतक भूमि से बधा रहता था। आलोच्यकालीन भूमि अनुदानो के उल्लेख व्यक्तिगत अधिकारो के स्थान पर वशानुगत अधिकारों को प्रतिष्ठापित करते थे।[1] कृषिकर्मी परिवारो मे सयुक्त परिवार मे बधे रहने का अन्य आर्थिक कारण कृषि के लिए श्रमशक्ति की आवश्यकता थी। आर्थिक उपार्जन के लिये कृषक-परिवार के सदस्य श्रमविभाजन की प्रक्रिया द्वारा सयुक्त जीवन को कई पीढिया तक बनाये रखते थे।[2]

प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष भूमि के कृषि उत्पादन का लाभांश प्राप्त करता था अत राज्य का आर्थिक जीवन मुख्यत भूमि पर आधारित रहा था। द्रष्टव्य—जातिया एव व्यवसाय और भूमि व्यवस्था अध्याय।

1 (अ) थारा बटा, पोता पडपोता खाता जाज्यो (तुम्हारे पुत्र पौत्र, तथा प्रपौत्र प्रदत्त भूमि का उपयोग करत रहें)—वी वि पृ 1567, सीक्रेट डिपोजिट रिकार्ड—भू अनुदान पत्र प्रति क्रम-112 139 160 170 319 347, 353 359 483 इत्यादि—रा श्र उ, राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पुरातत्व एव पुरालेख, भा 1 पृ 270

(ब) प्रत्येक धार्मिक अनुदान पर 'स्वदत्ता परदत्तां वा यो हरेतु वसु-धराम्। कृमिभू त्वा पितभि सहपच्यते ॥ अथवा स्वदत्ता परदत्ता वा य हरति व सुधराम। षष्ठि वष सहस्त्राणी विष्ठाया जायते कृमि ॥ का उल्लेख भी सयुक्त अधिकारों को हनन करन वालो को धार्मिक भय दिखलाता था—वि स 1770 (1713 ई) आषाढ सुदी 12 का ताम्र पत्र, वि स 1807 (1750 ई), आषाढ बदी 4 की भटियाणी सराय मन्दिर की प्रशस्ति (वी वि पृ 1174, 1526), कोठारी पृ 33-36

2 यन्त्र शक्ति के अभाव म कृषि-कार्यों में मानव शक्ति की आवश्यकता की पूर्ति मजदूर रख कर अथवा सयुक्त परिवार के सदस्यो की सामूहिक श्रम-शक्ति द्वारा की जा सकती थी। उदयपुर सभाग के आदिवासी क्षेत्र मे शोधकर्त्ता के व्यक्तिगत सर्वेक्षण द्वारा स्पष्ट होता है कि भील जाति म बहु विवाह का अभिष्ट कारण आर्थिक रूप म मजदूरी की बचत एव सयुक्त श्रमशक्ति की प्राप्ति रहा है। इसी आधार पर शोधकर्त्ता ने इसका उपकल्पना को प्रतिस्थापित किया है।

शिल्पी, दस्तकार एव निम्न जातियो मे परिवार की आय का मुख्य साधन यजमानी द्रव्य रहता था ।[1] यह द्रव्य व्यक्ति के स्थान पर परिवार की सामूहिक सत्ता को दिया जाता था । अत इस सामूहिक आय पर परिवार का सयुक्त अधिकार माना जाता रहा था । इसके अतिरिक्त व्यावसायिक जातियो के परिवारो मे भी श्रम-विभाजन की आवश्यकता ने इन जातियो म सयुक्त एव सामुदायिक जीवन की परम्परा को बनाये रखा था ।[2]

उपरोक्त आर्थिक कारणो के अतिरिक्त सयुक्त परिवार व्यवस्था के मेवाड मे बने रहने के पृष्ठ में कई सामाजिक परिस्थितयो का योगदान रहा था । लोक-भय और लाज के कारण वद्ध कर्त्ता के रहत हुए युवक अपने परिवार का फाडा (विभाजन) कराने के बारे मे सोच भी नही सकते थे ।[3] कुल तथा कौटुम्बिक भावना की दृढ परम्परा ने आर्थिक रूप में सपत्ति विभाजन होने के पश्चात् भी सामाजिक दृष्टि स परिवारो को सयुक्त बनाये रखा था ।[4] 'जो दृढ राखे धम (कत व्य) को तिहि राखे करतार' की जीवन-

---

1 ब्राह्मण जातियो मे इस उपाजन को बस्ती' व अ य जातियो मे 'सामोटा' कहा जाता रहा था। यह उपाजन परम्परा उदयपुर सभाग के ग्राम्याचलो मे अभी तक विद्यमान है । गावो म सुनार बढई लुहार, कुम्हार नाई आदि परिवार अपनी जीविका फसल कटाई पर सेरन' के रूप म ग्रहण करते थे जो कि यक्तिगत नहीं होकर पारिवारिक होती थी—एनाल्स भा 3 पृ 1625

2 रेबारी गायरी गाछी आदि परिवारो मे कृषि काय, गोचर काय या अ य व्यवसाय श्रम विभाजन पद्धति के अनुसार सयुक्त परिवार मे ही सभव थे, द्रष्ट य-जातिया एव व्यवसाय प्रकरण, महाजन जाति के लोग वाणिज्य-व्यापार का बहुमार्गी काय सयुक्त परिवार द्वारा कर सकते थे भाष्य सु दर-उदयपुर गजल पद 34 66, कोठारी-पृ 12

3 यात पचायतों के पच ऐसे मामलो को निपटाने के पूव अधिकतर यह प्रयास करते थे कि ' घर रा भा डा बाजे ही एर घर रो सप ब यो रहें ताई घर रा मान ह नी तो परायो गोल मीठो लाग, जग हँसाई व्हे' -(मेवाडी हितोपदेश) कनल टाड ने भी तत्कालीन पारिवारिक सगठन का द्रष्टा त राणा सग्रामसिह द्वितीय के कथनो में उद्धत किया है—एनाल्स भा 1, पृ 480 वी वि पृ 965

4 प्रत्येक सामाजिक धार्मिक कार्यों पर धरधणी (गृह स्वामी या कर्त्ता) के नियत्रण मे दो से चार पीढी तक रक्त सम्ब धी कौटुम्बिक उत्तरदायित्व

साध्य भावना की विशिष्ट भूमिका ने भी समाज मे सयुक्त परिवार के आदर्श को जीवित रखा था। धर्म के रूप म कर्त्त व्य का निर्वाह करने की लालसा हेतु व्यक्ति अपने पारिवारिक धर्म के लिये स्व माता पिता, दादा दादी तथा परिवाराश्रित अन्य अनाथ सदस्यो की उदरपूर्ति का प्रयत्न करता रहता था। यह धर्मयुक्त भावना व्यक्ति के सम्मुख सयुक्त परिवार से विमुख होने के प्रति धार्मिक-सकट का भय बनाये रखती थी।[1] सामाजिक रूढिया के नियन्त्रण, पारस्परिक आर्थिक स्वार्थों सामाजिक-धार्मिक भावनाओ एव नैतिक कर्त्त व्यो ने मेवाडी समाज म सयुक्त परिवार प्रणाली को बनाये रखने म योगदान दिया था। ऐसे सयुक्त परिवारो म पति पत्नी दादा दादी, काका-काकी भतीजे अविवाहित अथवा विधवा बहिनें, भाई, पुत्र पुत्रिया, पुत्र-पत्निया भाई पत्निया तथा उनकी सतानें सम्मिलित रहती थीं।[2]

का निर्वाह पारस्परिक प्रेम व सहयोगपूर्ण हम-युक्त' भावना द्वारा एकत्रित होकर व्यक्त करते थे—वि स 1774 (1717 ई) आषाढ सुदी 1 की सुरताण बावडी प्रशस्ति कोठारी कलेक्शन—विवाह रे नूंता री पानडी-रा अ उ बी वि प 1177, 1521। यह उदाहरण आधुनिक काल म भील मीणा जैसी आदिम जाति की प्रथा से देखा जा सकता है कि भील युवक अपना विवाह होते ही अलग टापरा (घर) बसा लेता है किन्तु सामाजिक व्यवहारो मे परिवार के मुखिया (कर्त्ता) का नियन्त्रण मानता रहता है।

1 अश्वमेध री कथा (ह प्र), पत्र 10, अमर चन्द्रिका (ह प्र) पत्र 6, वात सग्रह (ह प्र) पत्र 60

2 सुर्तान बावडी की प्रशस्ति वि स 1774 (1717 ई), प्रभुवातारण वाडो मन्दिर की प्रशस्ति वि स 1819 (1962 ई) ग्रायभाई के पुल के मन्दिर की प्रशस्ति, वि स 1820 (1863 ई) प्रति द्रष्ट य-बी वि पृ 1177 1521 1670 73 अश्वमेध री कथा—उपरोक्त वात सग्रह—उपरोक्त सहीवाला भा 1 पृ 4-15 कोठारी, पृ 103-104, 132, 134 व 137। विवाह के समय पुरोहित द्वारा दिया जाने वाला विवाहोपदेश—तू सास ससुर, ननद देवर पर शासन करने वाली बन बड सुहागन हो पोते पडपोते से खेले आदि सयुक्त परिवार तथा इसके सगठनात्मक स्थिति को इगित करता है—गुटका विवाहाचार (ह प्र) पृ 130

राजपूत जाति एव परिवार

सयुक्त परिवार की उपरोक्त स्थिति मेवाड की प्रभु जाति राजपूतो मे कुछ भिन्न अवस्था लिये हुए थी। राजपूत परिवार के दाता (कर्ता) की जीवित अवस्था मे उसके पुत्र (कु वर) अविवाहित पुत्रिया (कु वरानिया), पुत्र वधुए (बहुरानियां) पौत्र पौत्री (भँवर भँवरी) प्रपौत्र-प्रपौत्री (तँवर-तँवरी) आदि सयुक्त परिवार मे रहते थे किन्तु दाता की मत्यु के पश्चात् जागीर सपत्ति का मूल अधिकार बड़े लड़के के स्वत्व मे रह जाता था, शेष पुत्रो को जागीर का ग्रास' (रोटी खच) या भाई-भाग दिया जाता था। इस प्रकार राजपूत परिवारो मे अधिकतर व्यक्तिवादी परिवार थे।[1] सामाजिक-पारिवारिक-सम्बन्धो मे इस जाति के परिवारो का प्रारूप उपरोक्त जैसा ही रहा था। अन्य जातियो के बटवारे के स्वरूप सपूर्ण सपत्ति का विभाजन था। प्रामाणिक तथ्यो के अभाव में अन्य जातियो का विवरण प्रस्तुत करना सभव नहीं है।

पारिवारिक विघटन

सयुक्त परिवार के सामाजिक जीवन की उपरोक्त स्थिति का यह अर्थ नही है कि मेवाड मे व्यक्तिवादी परिवार का कोई स्थान नही था। 19 वीं शताब्दी के उपलब्ध प्रमाणो से विदित होता है कि विस्तृत परिवार का आर्थिक दबाव कृषिभूमि की सीमितता, स्त्रियो के पारस्परिक वैमनस्य एव गृह-कलह के परिणाम स्वरूप वशानुगत सपत्ति का बाटा (बटवारा) घर-धणी की जीवित अवस्था म भी कर लिया जाता था।[2] 19 वीं शताब्दी मे लिख गए एतिह्य साहित्य विवरणो स स्पष्ट होता है कि तत्कालीन भौतिक-

---

1 टॉड—एनाल्स, भा 3, पृ 1370-1371। 60 से 80 हजार वार्षिक राजस्व की जागीर पर 3 से 5 हजार का भाग छोटे भाइयो का दिया जाता था। यह उनके बपौता का अधिकार माना जाता था। वशावली क्रमाक 827 828 872, 878 882 आदि से उद्धृत, मेवाड रेजीडन्सी पृ 89, 91

2 अश्वमेध री कथा (ह प्र) पत्र 8, लाल मेवाडी री वात (ह प्र), पत्र 91, बारहमासी रा दूहा (ह प्र) पत्र 153 महता सग्रामसिंह कलक्शन—वि स 1899 रो बहिड़ो बस्ता स 14, रा रा अ बी

वादी वातावरण का प्रभाव समाज में फैलना प्रारम्भ हो गया था ।[1] इसी कारण मेवाड की ग्रामीण सस्कृति म 'तू' और मैं' की भावना व्याप्त होने लग गई थी । माया के रूप म स्त्री तथा धन पारिवारिक कलह का कारण बनने लग गया था ।[2] अध्ययनकालीन पुराभिलेख प्रमाणो से भी प्रकट होता है कि 19 वी शती के उत्तर काल मे आग्ल प्रशासन द्वारा किये गये भूमि-सुधारो एव न्याय व्यवस्थाओ के परिणाम स्वरूप व्यक्तिवादी परिवार विकास की ओर बढने लग थे ।[3] किन्तु इतना होते हुए भी पुत्र अपने वद्ध माता-पिता एव निर्बल पारिवारिक सदस्यो को आवश्यकतानुरूप स्व आर्थिक उपाजन से खच देते हुए नैतिक कर्तव्य का पालन करता था ।[4] निष्कर्षत कहा जा सकता है कि मेवाड में सयुक्त परिवार एव व्यक्तिवादी परिवार साथ-साथ जीवित थे परन्तु मख्यात्मक रूप म सयुक्त परिवारो का स्थिति अधिक रही थी ।[5]

---

1 लाल मेवाडी री वात (ह प्र), पत्र 91, डोकरी री कथा (ह प्र), पत्र 58

2 डोकरी री कथा—उपरोक्त—
यारो बाप सू होई । तरीया पुरख रहै दोई ।।
माया सरब है मेरी । हवेली खोसी ल्यू तेरी ।।
सनेही सासरया भावे । कटूम्बी दखी दु ख पावे ।।
मात पिता कू दे गारी । बोले नही सबद विचारी ।।

3 ब रि—महकमा अदालत दावाणी रो बहिडो, वि स 1930 (1873 ई) बस्ता 5 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन, फाईल स 81-85, ब स 3 फा स 546-576 ब स 28 फा स 577-600, ब स 29 मिसल महकमा खास—धाबाई भेरुलाल—चतरभुज विवाद, क्र स 299-300 रा म उ ।

4 राजस्थान डिस्टिक्ट गजेटियर (भीलवाडा जिला) पृ 104

5 पुरोहित देवनाथ कलेक्शन—वि स 1786 की बही । घर गिनती बराड" नामक लागत (शुल्क) सयुक्त परिवार से तथा चूल्हा बराड' की लागत व्यक्तिवादी परिवार से लिया जाने वाला कर' रहा था—*एकलिंग सुरह लेख वि स 1860(1803 ई), टाड—एनाल्स भा 1,* पृ 169, ट्रीटीज ऐंगेजमेन्ट खण्ड 3 पृ 51, वी वि , पृ 760 61, 963 । आधुनिक समय में भी कई जातियो के सामाजिक दस्तूरो म 'घर-दीठ' परम्परा का प्रचलन सयुक्त परिवार प्रथा का मेवाडी समाज मे प्रचलित प्रभाव को सिद्ध करता है ।

पैतृक सपत्ति एव उत्तराधिकार

मेवाड म उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम प्रचलित नही रहा था। मिताक्षरा [1] जातिगत नियम, तथा सामाजिक परम्पराम्रा द्वारा उत्तराधिकार विवाद निश्चित किय जाते थे। मनुस्मति के म्रनुसार पिता की मत्यु के पश्चात् पैतक सपत्ति का म्रधिकारी बडा पुत्र माना जाता है तथा म्रन्य म्रनुजपुत्र मात्र म्राश्रित के रूप म सपत्ति का म्रधिकारी होता था। [2] इस परम्परा का प्रतिदश हम मवाड की प्रमु जाति राजपूतो मे प्राप्त होता है। शासक की मत्युपरात उसका बडा पुत्र गद्दी का स्वामी बनाया जाता था म्रौर म्रप भ्राताम्रा को ग्रास भूमि जागीर प्रदान कर दी जाती थी। [3] इसी प्रकार जागीरदार जागीरो म तथा भोमिया म्रपनी भूमि म से म्रपने म्रनुजो को रोटी खच' के निमित्त म्राशिक हिस्सा प्रदान करत थे। [4] मनु ने मत कर्त्ता की विधवा के निर्वाह हतु सपत्ति का भाग प्रदान करना बडे पुत्र का कत्त व्य बतलाया है। इमके साथ यह यवस्था भी बतलाई है कि विधवा इस त्रय वधक म्रथवा पुत्र स्वीकृति के बगैर दान नहीं कर सकती है म्रौर यह सपत्ति विधवा की मत्यु के बाद पुन बन पुत्र की मानी जाती है। [5] मेवाड मे मा की दष्टि स स्त्रियो का सम्मान सामाजिक घम रहा था। उनके भरण पोपण का दायित्व उसके पुत्र सामुहिक म्रथवा व्यक्तिगत रूप मे करते थे। [6]

---

1 मिताक्षरा विवेचन सयुक्त परिवार का समथन करता है कैलाशनाथ शर्मा—पारिवारिक समाज शास्त्र पृ 69

2 द्रष्टव्य—म्रोमप्रकाश—प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ 221

3 द्रष्टा त—राणा सग्रामसिह द्वितीय का प्रथम पुत्र राणा जगतसिह द्वितीय मवाड की गद्दी पर बठा जब कि शेष पुत्र महाराज नाथसिह, म्रजु नसिह एव बाघसिह को जागीर सिवरती तथा करजाली की जागीरें 'ग्रास म प्रदान की गई थी, दी नेतावल पमेली पृ 10, उ ई, भा 2 पृ 623

4 वि स 1906 (1849 ई) का पर्वाना, राणा स्वरूपसिह द्वारा नाथसिह को (प्रति वी वि पृ 1996-97) गोरख्या जागीर का पट्टा, भैसरोडगढ जागीर का पट्टा, मेवाड रेजोडेन्सी, पृ 89, 95 नेतावल पमोली पृ 27, 46 व 63

5 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 103 152

6 करणमहल रिकाड—बाईजी राज रा गावा रो विगतो वही वि स

मेवाड़ के समाज मे सयुक्त परिवार की स्थिति होने से पतक सपत्ति का विभाजन हि दू विधि के ही एक भाग मिताक्षर आधार पर किया जाता था। परिवार के सभी सदस्य पारस्परिक सहयोग एव जाति पचायतो द्वारा सम्पत्ति का बटवारा कर लिया करते थे।[1] व्यक्तिवाली परिवारों मे दायभाग के अनुसार सभी पुत्र पतक सम्पत्ति में बराबरी के हिस्सेदार होते थ।

उत्तराधिकार प्रमाणीकरण प्रथा

समाज द्वारा व्यक्ति के उत्तराधिकार को सामाजिक प्रमाणीकरण की उपरोक्त प्रथा 'पगड़ी ब दी' अथवा भाई-बाट के नाम से जानी जाती थी।[2] शासक एव प्रशासक वग के परिवारों मे कर्त्ता की मत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकार का सामाजिक प्रमाणीकरण राज्य अथवा जागीर द्वारा पुष्ट किया जाता था।[3] इस पुष्टि के लिय उत्तराधिकारी द्वारा शासक अथवा जागीरदार को उत्तराधिकार शुल्क का नजराना (भेंट) करना पड़ता था। इसे प्राप्त करने के उपरा त शासक या जागीरदार नवीन उत्तराधिकारी को पगड़ी बांध कर या खग (तलवार) बाध कर सम्पत्ति के अधिकार की

1930-रा प्र उ, टॉड—एनाल्स भा 1 पृ 480 वी वि पृ 965 कोठारी, पृ 45 46 131

1 ख्यात बहिड़ो आमटा जात (19 वी सदी)—श्रीकृष्ण पाठक सग्रह मालदास सहरी उदयपुर। ऐसे विवादो मे पारस्परिक लेन देन अथवा सम्पूर्ण हिस्से का पीढ़ी क्रम के अनुसार व्यक्ति को भाग या बाटा दे दिया जाता था। यदि परिवार द्वारा विवाद का निर्णय नही होता तब जाति पचायत भी लोक-परम्परा के रूप म इसी प्रकार का निर्णय करती थी जिसे अन्तिम निर्णय के रूप म व्यक्ति को मानना पड़ता था अन्यथा उस जाति बहिष्कृती का दण्ड भोगना पड़ता था। यह दण्ड जात भदर' कहलाता था।

2 हि दू समुदाय मे मतक कर्त्ता की मत्यु के 13 वें दिन यह दस्तूर किया जाता रहा है एव मुस्लिम समुदाय म यह क्रिया 40 वें दिन की जाती है आत्मवादियो मे इसे तीसरे दिन सम्पन्न कर लेते हैं।

3 टाड—एनाल्स भा 1 पृ 184 185, 580 81 ट्रीटीज एगेजमन्ट खण्ड 3 पृ 49 54 धारा 2, सहीवाला भा 1 पृ 32 43 भा 2 पृ 26, भा 3, पृ 4 कोठारी पृ 45 48 व 130

स्वीकृति देता था।[1] कर्त्ता की नि सतान मृत्यु होने पर उत्तराधिकार-मनोनयन मतक के रक्त सम्बन्धियों और समाज के पचो द्वारा किया जाता था। यह प्रथा खोल रखना' कहलाती थी।

'खोल'-प्रथा

हिन्दू धर्माचार्यों ने मतक के मोक्ष (सुख) प्राप्ति के लिए पुत्र की आवश्यकता पर बल दिया है। इसलिए वंश वद्धि और पितृऋण की मुक्ति के साध्य को साधने के लिए हिन्दू परिवारों मे पुत्र नहीं होने पर अन्य के पुत्र को गोद लेने का परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है।[2] मवाड में भी खोल रखन या गोद लेने की प्रथा सभी जातियों मे विद्यमान रही थी।[3] कर्ता या तो अपनी जीवित अवस्था म अपने निकटतम सम्बन्धियों मे स एक को गोद रख लता था या फिर उसकी मत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी इस अधिकार का पालन करती थी।[4] गोद लिया पुत्र उस परिवार क वध-पुत्र के जसा ही सभी वैधानिक,

---

1 उपरोक्त, वी वि, पृ 1960, 1994-95 1999, 2002 आदि, उ ई, भा 2, पृ 766 793 एव 828

2 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 53 105

3 टाड न लिखा है कि जागीरदार की नि सतान मृत्यु होने पर उसकी जागीर को राज्य द्वारा पुनग्र हित किया जा सकता था—(एनाल्स, भा 1, पृ 187) किन्तु 19 वीं शताब्दी के प्रमाण स्पष्ट करते हैं कि जागीरदार की मत्योपरान्त उसकी पत्नी को गोद लन का अधिकार था—वि स 1914 (1857 ई) ज्येष्ठ वदि 7 की आमेट ठकुराणी मेडतणी की अर्जी (वी वि पृ 1962-63)। सलूम्बर रावत केशरसिंह की मत्यु क पश्चात् कम्बोरा रावत जोधसिंह का गोद लिया जाना —फॉरेन पोलिटिकल कन्सलटशन जून 16 1864 ई नेतावल फेमिली पृ 72-73

4 वि स 1891 (1834 ई) आषाढ वदि 12 का राणा सरदारसिंह द्वारा स्वरूपसिंह को गोद लिय जाने का गोदनामा (वी वि, पृ 1902), आमेट ठकुरानी मेडतणी की अर्जी (वी वि पृ 1962-63)। यह क्रिया जाति पचायत एव सम्बन्धियों की उपस्थिति म सम्पन्न की जाती थी—उपरोक्त पृ 875

सामाजिक धार्मिक और आर्थिक अधिकारो का उपभोग करता था।[1] ऐसा पुत्र 'धम का बेटा' कहा जाता था।[2] धम पुत्र लिये जाने के बाद यदि कर्त्ता के कोई पुत्र उत्पन्न हो जाता तब भी धम पुत्र को औरस पुत्र के समान सम्पत्ति का भाग अथवा ग्रास प्राप्ति अधिकार रहता था।[3]

गोद लेने की इस धम शास्त्रीय परम्परा और शासक प्रशासक वग मे सामाजिक प्रमाणीकरण करने की प्रथा न 19 वी शती के सामाजिक राजनीतिक वातावरण मे कई विवाद उत्पन्न कर दिये थे। राणा शम्भुसिंह तथा राणा सज्जनसिंह के शासन काल मे बागोर ठिकाने के महाराजा शार्दू लसिंह एव सोहनसिंह का राज्याधिकार दावा[4] आमेट जागीर का झगडा[5] बिजोल्यां विवाद[6] एव बासी की फौजकशी[7] इसके प्रमाण थ।[8] इन सामाजिक, राजनीतिक विवादों का परिणाम राज्य के सामाजिक जीवन पर भी पडा और 'यथा राजा यथा प्रजा' को चरितार्थ करने वाली स्थिति ने समाज को प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया था।[9] इस वातावरण के फलस्वरूप 19 वीं शती के बाद पारिवारिक कलह तथा विद्वेष की सख्या म वद्धि के साथ साथ लोगो म सामाजिक नियत्रण के प्रति उदासीन मनोवत्ति उत्पन्न होने लगी थी।

---

1 गोद गये हुए व्यक्ति को अपने औरस पिता की सम्पत्ति मे भाग लेने का अधिकार नही होता था।

2 रामप्यारी की बाडी के मदिर की प्रशस्ति वि स 1847, ज्येष्ठ सुदि 13 (प्रति—बी वि, पृ 1771) मूल—बोहडा की हवेली स्थित मदिर शिलालेख।

3 वि स 1891, आषाढ वदि 12 का गोदनामा (बी वि, पृ 1902) वि स 1898 (1841 ई), आसोज सुदि 9 की स्वरूपसिंह की अर्जी (बी वि पृ 1912-13)।

4 मेवाड एजे सी रिपोट सन् 1874 75 फारेन पोलिटिकल (सीक्रेट) क सलटेशन जुलाई 1880 ई स 48-51, बी वि, पृ 2058

5 बी वि पृ 1964 2078, 2097

6 उपरोक्त पृ 1995 97

7 फॉरेन पोलिटिकल क सलटेशन जून जुलाई 1884 ई, स 23 38 96 105, बी वि, 245 51

8 फारेन पोलिटिकल क सलटेशन जून 16, 1864 स 60, राजपूताना एजे सी रिकार्ड 1865-1867 इ भा 1, बी वि पृ 1991

9 प द्रह तिथि रा दूहा (ह प्र), पत्र 208 210, कोठारी पृ 45, 56

परिवार एव सामाजिक नियत्रण

उल्लखित विवचन से स्पष्ट हो जाता है कि मवाड म सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के फलत समाज मे अधिकतर परिवार सयुक्त व्यवस्था पर आधारित थे। यह सयुक्त परिवार व्यवस्था, सामाजिक नियत्रण की लघुतम इकाई का काय करती थी। प्रत्येक परिवार का परधणी या कर्ता अपनी-अपनी जाति पचायत का पच होता था। जाति-पचायतें जाति और जाति म निहित विभिन्न परिवारो के सामाजिक-आर्थिक व्यवहारो पर नियत्रण रखती थी।[1] इन नियत्रणों के विरुद्ध लोकाचरण करने वाले व्यक्ति को परिवार द्वारा परिवार से जाति द्वारा जाति से बहिष्कृत करने का सामाजिक दण्ड अथवा प्रायश्चित के लिय आर्थिक दण्ड प्रदान किय जाते थे। इस दण्ड परम्परा को मवाडी लोक-भाषा म 'भदर' कहा जाता था।[2] इन सामाजिक आर्थिक दण्ड के प्रति लोक-भय व्यक्ति को अपने परिवार तथा समाज के नियमो तथा व्यवहारों के प्रति हमेशा सतक रखता था। इस प्रकार परिवार व्यक्ति के लिय सामाजिक सरकार और लोक-न्याय की प्रथम इकाई थ जहाँ व्यक्ति को स्वय अथवा परिवार सहित सामाजिक दण्ड स्वीकार करना पडता था।

परिवार एव सामाजिक आर्थिक जीवन

परिवार द्वारा अपने सदस्यों के लिये तथा सदस्यो द्वारा अपने परिवार क लिये किये गये सामाजिक आर्थिक कार्यों का विश्लेषण समाज म प्रचलित परम्पराओ, प्रथाओ तथा विश्वासो मे देखा जा सकता है। 18-19 वीं शताब्दी का मेवाड धार्मिक रूढियो तथा पारम्परिक रुचियो से ग्रस्त रहा था।[3] इन रूढियो और रुचियो म सामाजिक धार्मिक सस्कार तथा विश्वास को लिया जा सकता है, जो कि सामाजिक परम्पराओ के रूप मे विद्यमान

---

1 द्रष्टव्य—सामुदायिक व्यवस्था ग्रामीण एव नगरीय क्षत्रों म जनजीवन अध्याय।

2 वि स 1903 (1846 ई) ज्येष्ठ वदि 7 का राणा स्वरूपसिंह द्वारा प्रस्तरोत्कीर्ण आदेश (वी वि, पृ 2048)

3 जातिवादी सामाजिक रचना, जातिगत व्यवसायों की परम्परा, सयुक्त पारिवारिक व्यवस्था और सामाजिक न्याय का प्रचलन आदि का पूव पृष्ठीय अध्ययन मवाड के समाज का रूढिवादी दशन को प्रस्तुत करता है।

रहे थे। इस संस्कारों में परिवार की निरन्तर स्थिति बनाये रखने के लिये 'गर्भाधान', गुणी पुत्र की कामना हेतु 'पुंसवन' पुत्र प्रसन्नताय सीमान्तोनयन नामक प्रारम्भिक संस्कार थे। इसके पश्चात् पुत्रोत्पत्ति होने पर पुत्र के दीर्घायु के लिए जातकर्म' पुत्र का नाम रखने के लिये नामकरण', बच्चा की सूतिका निवारण हेतु निष्क्रमण' बच्चे को प्रथम बार भोजन खिलाने के लिये अन्न-प्राशन, कान नाक छेदने का 'कर्णवेध' सिर के बाल साफ कराने के लिये चूड़ाकरण' नामक संस्कार किये जाते थे। यह संस्कार बाल्यावस्था में सम्पन्न होते थे। इन संस्कारों की इति होने पर शिक्षा हेतु उपनयन' वेदारम्भ' व समावर्तन के कौमार्य-संस्कार और युवावस्था में 'विवाह' तथा वृद्धावस्था में अन्त्येष्टी' संस्कारों में 'मृतिका कर्म' पिण्डदान' व श्राद्ध सम्मिलित होते थे। इन सभी संस्कारों की संख्या 16 रहती थी।[1] शास्त्रीय मान्यता के अनुसार धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की जीवन साधना के लिये संस्कारों को पूर्ण करना प्रत्येक हिन्दू समुदायी द्विजों का मुख्य कर्त्तव्य था। सामाजिक रूप से व्यक्ति का सामाजीकरण करने तथा धार्मिक दृष्टि से व्यक्ति को दायित्वपूर्ण बनाने में सामाजिक संस्कारों का विशिष्ट महत्व रहा था।[2] यहां यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त संस्कारों की मान्यताओं एवं पालनाओं का मुख्य सार दर्शन शास्त्रीय व्याख्या में अधिक लिप्त द्विज जातियों पर ही था। उच्च जातियां ही इन सब संस्कार क्रियाओं में प्रमुख भाग लेती थीं। आलोच्यकाल में उपरोक्त सभी संस्कारों का विधिपूर्वक पालन नहीं किया जाता था किन्तु इनका वैदिक स्वरूप लोक संस्कारों में परिवर्तित हो चुका था। इसके साथ ही कई धार्मिक विश्वास भी लोक परम्परा से चले आने के कारण धार्मिक प्रथाओं का रूप ले चुके थे। हम प्रचलित लोक संस्कारों तथा विश्वासों का अध्ययन करेंगे।

प्रचलित लोक संस्कार और विश्वास

परिवार के विकास तथा वृद्धि के लिये विवाह' का संस्कार हिन्दू समुदाय में धार्मिक और सामाजिक दायित्व माना जाता रहा था। धार्मिक विश्वासों के अनुसार विधिपूर्वक किये गये विवाहोत्पन्न पुत्र अपने माता पिता

---

1 प्राचीन भारतीय सामाजिक आर्थिक संस्थाएं (डॉ कैलाश चन्द्र जैन) पृ 76-79

2 प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ 82 84

को नरकगामी होने से बचाता है और पितृआत्माओं के मोक्ष का साधन माना जाता है।[1] अत स तानोत्पत्ति करना विवाह का मुख्य सामाजिक-धार्मिक लक्ष्य रहा था।[2] सन्तान उत्पन्न करने की कामनायुक्त गर्भाधान संस्कार का मवाड म बदूरात प्रथा के रूप मे प्रचलन था। विवाह के बाद इस प्रथा का पालन वर गृह अथवा वधू गृह पर जाति की अलग-अलग मा यताओं के अनुसार किया जाता था। बाल विवाह की स्थिति मे यह संस्कार मात्र प्रथा के निर्वाह हेतु घर की स्त्रियो द्वारा रातिजगा' (रात्रि-जागरण) और मागलिक गीतो स सम्पन्न कर लिया जाता था। वयस्क विवाहिता के विवाहोपरा त दो तीन वष मे यदि सन्तानोत्पत्ति के चि ह नही दिखाई देते तो उसे 'बाझ' स्त्री की सज्ञा से सम्बोधित किया जाने लगता था। बाझ स्त्रियो का पारिवारिक और सामाजिक सम्मान कम हो जाता था। ऐसी स्त्रियो को पारिवारिक प्रताडनाओ का जीवन व्यतीत करना पडता था।[3] समाज मे बाझ स्त्रियां का शकुन अपशकुन माना जाता रहा था। पुत्र प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा का परिणाम था कि समाज म देवी देवताओं की मा यता तथा भोपों का प्रभाव व्याप्त रहा था।[4] स्त्रिया पुत्र की प्राप्ति के लिय मत्र तत्र जादू टाना अधविश्वासों तथा अनाचारों मे फस जाती थी।[5] नातायत

---

1 श्री लाड—औदिच्य आमेटा (जातीय इतिहास) प 76

2 उपरोक्त।

3 इन प्रताडनाओ मे सास का अधिक हाथ होता था। राणा राजसिंह द्वितीय की पत्नी महारानी राठौड को उसकी सास (राणा प्रतापसिंह द्वितीय की पत्नी) माझी चहूवाण ने केवल इसलिये तकलीफें दी थी कि वह बाझ थी और वश चलाने के लिए कोई पुत्र उत्पन्न नहीं कर सकी थी वी वि प 1542

4 बाझ स्त्री की मनोदशा का एक लोकगीत द्रष्टव्य है—
सुसरोजी रुसाय सासू देवे म्हानें गाळ।
देराणी जेठाणी जुग मा बोल बोलणा॥
जकार हीं पूतज पालणा।
तो लाम रा भेद एक पूत दिए, म्हं कुल में बाम्डी॥
—राजस्थानी लोक साहित्य, पृ 85-86

5 लाल मवाडी री वात (ह प्र) पत्र 91 रतनारीरतन हिरा वारता (ह प्र) पत्र 69, ख्यात वात सग्रह (ह प्र), पत्र 340

जातियो[1] में इसके प्रभावस्वरूप वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद तक हो जाते थे। इस सम्बन्ध विच्छेद को तुगडा (साडी) फाडना कहा जाता था।

स्त्री के प्रथम गर्भधारण उत्सव परिवार में मांगलिक उल्लास के साथ मनाया जाता था। गर्भ के सातवें माह मे घर की वृद्धा द्वारा गर्भिणी का 'खोळ' (गोद) भरी जाती थी। यह प्रथा 'अगरणी' के नाम से प्रचलित रही थी।[2] इस लौकिक सस्कार पर परिवार की आर्थिक स्थिति के अनुसार उत्सव आयोजित किये जाते थे। समृद्ध परिवार अपने सगे सम्बन्धियो को भोज के लिये निमन्त्रित करते थे। वहा साधारण और विपन्न परिवार अपने सम्बन्धियो म गुड धाणी बाट कर प्रसन्नता व्यक्त करते थे।[3] इस सस्कार के पश्चात् शुभ मुहूर्त पर गर्भिणी को पितृ गृह भेजा जाता था।[4] पुत्र होने पर स्त्री की पारिवारिक सामाजिक प्रतिष्ठा या स्तर बढ जाता था। परिवार म हर्ष व उल्लास और राग रग किया जाता था। सगे सम्बन्धियो को बधावणी (बधाई) भेजी जाती थी। कुटम्बियो के घरो पर आम्र पत्र की बन्दनवार बांधी जाती थी। इस कार्य को सम्पन्न कराने वाली नाइन एव मालिन को पहिनने के वस्त्र तथा धान्य दिया जाता था। साधन सम्पन्न वर्ग के परिवार इस अवसर पर प्रीतिभोज और दान पुण्य द्रव्य खर्च करते थे वहां विपन्न वर्ग के घरों म स्त्रियां कांसे की थाली बजाकर तथा सम्बन्धियो म

---

1 द्विज जातियो के अतिरिक्त अन्य जातियो मे स्त्रियां विवाह विच्छेद कर दूसरा पति कर सकती थी। वैधानिक विवाह नहीं होने के कारण यह 'नाता' कहलाता था। नाता का शाब्दिक अर्थ नेह या प्रेम है इसलिए नाता करना प्रेम विवाह का रूपान्तर कहा जा सकता है।

2 यह पु सवन सस्कार का लौकिक रूप था (सुखवीरसिंह गहलोत— राजस्थान के रीति रिवाज पृ 2-3 तथा 14)। गर्भिणी की गोद म वृद्धा द्वारा पाच प्रकार क फल (पच फल) डाले जाते थे जो कि शुभ कामना के चिन्ह माने जाते थे।

3 कोठारी पृ 200

4 उपरोक्त। आधुनिक काल म भी प्रथम सतानोत्पत्ति के लिये गर्भिणी के पिता अथवा भाई द्वारा पितृगृह ले जाने का प्रचलन विद्यमान है। इसका कारण गर्भिणी की श्वसुर गृह म सकोच लज्जा का वातावरण कहा जा सकता है—सत्यपाल रूहेला—दी गाडोलिया लोहार आफ राजस्थान पृ 164

गुड धाणी बाट कर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती थीं।[1] सम्पन्न परिवारों में नवजात शिशु को चांदी के चम्मच से शहद दिया जाता था और साधारण जन में जातकर्म नामक संस्कार की प्रथा का निर्वाह घर की वृद्धा द्वारा शिशु-मुँह में 'जन्मघुट्टी' डालकर किया जाता था।[2] शिशु जन्म के छठे दिन 'छठी पूजन' के रूप में विधाता की अर्चना की जाती थी।[3] इसके चार दिन बाद 'सूरज पूजन' का संस्कार किया जाता था। इस अवसर पर बच्चे की बुआ द्वारा बच्चे के लिये वस्त्र तथा आर्थिक स्थिति के अनुसार आभूषण लाये जाते थे। इस परम्परा को 'ढूंढ' कहा जाता था।[4] इसी प्रकार की होली की 'ढूंढ' नामक प्रथा में होली के दूसरे दिन जाति सदस्यों द्वारा

---

1 अखभेद री कथा (ह प्र) पत्र 12 डोकरी री कथा (ह प्र) पत्र 49, वी वि, पृ 1707 कोठारी पृ 132

2 डा गोपीनाथ शर्मा द्वारा इस संस्कार का प्रचलन अभिजात वर्ग के परिवारों तक सीमित रखा गया है (सो ला मी रा, पृ 110) किन्तु लोक परम्परा के प्रचलित व्यवहारों में यह निम्न वर्ग से उच्च वर्ग तक विद्यमान रहा था (जातकर्म पद्धति ह प्र संस्कृत पत्र 40, अखभेद री कथा ह प्र पत्र 12) और आज तक विद्यमान है।

3 लोक विश्वास के अनुसार इस दिन भाग्य देवता ब्रह्मा द्वारा शिशु के जीवन का भविष्य तैयार किया जाता है अतः ब्रह्मा को अच्छा भाग्य प्रदान करने के लिये प्रसन्न करने हेतु यह पूजन होता है (दी गाडूल्या लोहार पृ 167)। जच्चा वहा की दीवाल पर विधाता का भित्ति-चित्र बना कर उसके सम्मुख रात भर घी अथवा तेल का दीपक जलाया जाता है इस चित्र के अर्चनार्थ धान और गुड रखा जाता है इस सामग्री को प्रातः प्रसूतिवर्त्ती नाइन ले जाती है। यह छठी की पूजन विधि आज भी प्रचलित है। उस दीपक का काजल जच्चा और बच्चा की आँख में लगाया जाता है जिसका तात्पर्य यह है कि वह भविष्य के बाय भली प्रकार देख कर क्रियान्वित कर सकें।

4 डोकरी री कथा (ह प्र), पत्र 49 ईशरग्रन्थावली (ह प्र) पत्र 7। साधारण परिवार की बुआ केवल 'जगल्या टोपी', मध्यम आर्थिक स्थिति वाली गोटे किनारी वाले जगल्या (वस्त्र) तथा उच्च आर्थिक स्तरधारी कोर-किनारी लगे 'जगल्या' के साथ चांदी निर्मित 'कठ हालरी' कटि का कन्दोरा और हस्त कगन 'कड़ा' आदि लाती थीं।

सामुहिक रूप मे नवजात शिशु के परिवार के यहा ढूढ आयाजित की जाती थी। इस उत्सव मे परिवार अपने नवशिशु को जाति पचो के मध्य ला कर उनसे शिशु को आशीर्वाद और अपनी सामाजिक-आर्थिक पद और प्रतिष्ठा के अनुसार जाति पचो को जल-पान कराता था। इस परम्परा का उद्देश्य सभवत जाति के सम्मुख पारिवारिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति और जाति द्वारा शिशु को जाति सदस्य के रूप म पजीकृत कराना रहा था।

नामकरण' के लिये द्विज जातियों मे ज्योतिषियो से जन्मकुण्डलिया बनवाई जाती थी। नक्षत्र विचार कर शिशु के ग्रहा की शुभ अशुभ देखा जाता था।[1] निम्न जातियो तथा आदिवासियो मे इसके लिये कोई निश्चित मान्यता नहीं थी। इन जातियों मे समाज प्रचलित नाम देवरो के द्वारा दिये गय नाम[2] अथवा जिस दिन या माह मे पदा होते उसी सज्ञा का नामकरण कर लिया जाता था।[3] बच्चे की सवा माह से डेढ माह की उम्र क मध्य 'झरमा पूजन' की प्रथा हेतु जच्चा को स्नान करान के बाद घर की स्त्रिया मगलगान करती हुई किसी तालाब तथा कुए पर ले जाती थीं। वहा जल मे पकाय गए धान (बाकला) को जल मे विसर्जित कर कूप पूजन की जाती थी। इस प्रथा के प्रचलन का मुख्य कारण जच्चा और बच्चे की मगल कामना

---

1 आढा किशन–भीम विलास (ह प्र) पद 40 पृ 10 राजा रिसालु री वात (वि स 1822 की ह प्र) पद 40 पत्र 62, डोकरा री कथा (ह प्र) पत्र 44, समाज मे जन्म नाम के साथ साथ प्रचलित नाम रखने की परम्परा विद्यमान थी जैसे—राणा भीम का जन्म नाम जुगल सिह था (भीम विलास—उल्लखित), राज्य के प्रधान कोठारी बलवन्तसिह का नाम ख्यालीलाल था कोठारी पृ 43

2 बच्चे बच्चो पदा नही होन पर लोक विश्वासो के अनुसार देवताओ की मन्नतें मागी जाती थी। इसके लिये देवरों म पालना बाधा जाता या कोई अखण आखडी (धारणा) ली जाती थी। काय पूण हान पर धारणा-विचार के अनुसार प्रसादो (धार्मिक भोज) तथा चढ़ावा किया जाता और वहा भोपो के द्वारा दिया गया नाम स्वीकार किया जाता था—मेवाड नो छन्द 8-15

3 शनि उत्पन्न थावर-थावरी रवि उत्पन्न दीतो दीती, सोम वाले को सोमा सोमी सतान अधिक होने पर धाप्या, जीवित नही रहते हुए होने पर अमरा आदि कई प्रकार के विश्वास प्रचलित रहे थे, टी पी नाईक—ए स्टडी ऑफ दी भील्स, पृ 109

के साथ जच्चा को प्रसव-विश्राम के पश्चात् घर के साधारण कार्यों को करने की पारिवारिक स्वीकृति प्रदान करना था। यह प्रथा निष्क्रमण संस्कार का प्रतिरूप थी।

बोटन के नाम से प्रचलित अन्नप्राशन संस्कार द्विज जातियों में मात्र नाम के लिये पूर्ण किया जाता था। इस प्रथा में दांत आने की उम्र में शिशु को दूध और चावल की खीर बना कर मुंह जूठा कराया जाता था। इसका उद्देश्य शिशु को खाद्य-पेय पदार्थों के प्रति रुचि उत्पन्न कराना रहा था। प्रत्येक जाति में झडूल्या उतारने या चग लेने की प्रथा भी प्रचलित रही थी। धार्मिक विश्वासों के अनुसार बालक की 3 से 7 वर्ष तक की एकाश आयु में सिर के बाल साफ कराये जाते थे। यह प्रचलन 'चूडाकर्म-संस्कार' का प्रतिरूप रहा था। इस प्रचलन में यदि बालक मन्नतों से उत्पन्न हुआ होता तो 'बोलमा' के अनुसार देवरों या धार्मिक स्थानों पर सामाजिक-धार्मिक उत्सव और उल्लास के साथ बाल उतारे जाते थे।[1] इन बालों का नदी या पवित्र तालाब में विसर्जन किया जाता था। बाल काटने वाले नाई को मजमानी (महमानी) दी जाती थी।[2] इसी वय में बालक-बालिकाओं के नाक-कान छिदवा कर कर्णवेध संस्कार पूर्ण कर लिया जाता था। इस कर्म के लिये सुनार को नारियल तथा गुड़ का पारिश्रमिक दिया जाता था।[3]

बाल्य संस्कारों के पूर्ण होने पर द्विज जातियों में उपनयन संस्कार किया जाता था। यज्ञोपवित् का धार्मिक विश्वास केवल ब्राह्मण जातियों में माना जाता था, अन्यथा राजपूत एवं वैष्णवोपासक महाजन जातियों में हिन्दू परम्परा का निर्वाह करने के निमित् जनेऊ धारण की जाती थी।[4] ब्राह्मण

---

1 सहीवाला, भा 1 पृ 33

2 मजमानी के लिये नाई को पहरावणी (पगडी धोती एव अगोछा) तथा आर्थिक स्थिति के अनुसार धान्य दिया जाता था।

3 डॉ कलाश चन्द्र जैन के अनुसार कर्णवेध संस्कार मात्र अलंकरण के लिये ही प्रचलित नहीं था अपितु यह चिकित्सा के रूप में बालक-बालिकाओं को अण्डकोष तथा आंत्रवृद्धि आदि रोगों से रक्षा भी करता था—प्राचीन भारतीय सामाजिक आर्थिक संस्थाएँ पृ 76-77, राजस्थान के रीति रिवाज, पृ 6-7, दी गाडोल्या लोहार ऑफ राजस्थान, पृ 167-168

4 श्यामलदास कलवशन वि स 1822 (1765 ई) का करमांग्रीजा री

जातियो म इसे धारण करने के बाद खान-पान शुद्धाशुद्ध के निषेधो का पालन करना पड़ता था नहीं तो उसे सामाजिक दण्डो स दण्डित होना पड़ता था।[1] वेदारम्भ और समावर्त्तन के वैदिक सस्कार मेवाड म वदिक शिक्षाभाव तथा ब्राह्मण जातियो म अशिक्षा के प्रसार स्वरूप गायत्रिमत्रोपदेश तथा भिक्षाचरण का अभिनय किया जाता था। इस अभिनय म ब्रह्मचारी अपने सम्बन्धियो से भिक्षा मागते हुए विद्या अध्ययन हेतु काशी के लिय लगोटी धारण किय नगे पाव कुछ दूरी तक दौड़ता था तत्पश्चात् उसका मामा उसे पकड़ कर समावर्तन की परम्परा के रूप मे उसे नवीन वस्त्र पहना कर घर ले आता था।[2] हिन्दू सस्कारा के प्रभावत मुस्लिम समुदाय म भी कई परम्परात्मक सस्कार विद्यमान रहे थे, जिनम मुख्यत बिरध, अकीका नमक चाशी, खतना और हाम्या मुख्य थे।[3]

उल्लेखित सस्कारो के पूर्ण होने के बाद जीवन का मूल और परिवार-सतति का महत्वशाली सस्कार स्त्री पुरुष के विवाह द्वारा पूर्ण किया जाता था। वसे विवाह समाज के सभी धार्मिक समुदायो म अनिवार्य आवश्यकता के रूप मे विद्यमान रहा है किन्तु हिन्दू समुदाय मे यह सामाजिक धार्मिक प्रथाओ तथा विशिष्ट जीवन पद्धति का अग होने के कारण हम हिन्दू विवाह की प्रथाओ और सामाजिक-आर्थिक प्रभावो की दृष्टि से इसकी व्याख्या करेंगे।

विवाह सगपन प्रथा

विवाह सस्कार का प्रारम्भ सगाई या सगपन प्रथा द्वारा स्थापित किया जाता था।[4] भील, ग्रासिया और मीणा जातियो म जीवन साथी निर्वाचन

वहिडो उपनयन पद्धति (ह प्र, सस्कृत, वि स 1748) राणा जगतसिंह का यज्ञोपवीत सस्कार—वी वि, पृ 965, श्रीलाड—औदिच्य आमेटा पृ 56

1 श्री लाड—औदिच्य आमेटा पृ 56
2 वी वि, पृ 189 श्री लाड—उपरोक्त पृ 61
3 राजस्थान के रीति-रिवाज पृ 106-110
4 भीम विलास पद 235-39, प 68 लाल मेवाडी री वात (ह प्र), पत्र 86 87 बीजा सोरठ री वात (ह प्र), पत्र 27 28, इसे तिलक प्रथा भी कहते थ—सहीवाला, भा 1 पृ 37 वी वि, पृ 755, कोठारी प 131

ी स्वच्छन्द परम्परा के परिणाम स्वरूप सगपन प्रथा का अधिक प्रचलन ही था। कि तु द्विज एव निम्न जातियो मे इस परम्परा का निर्वाह किया जाता था। सयुक्त परिवार व्यवस्था मे विवाह व्यक्ति के लिये नही अपितु परिवार के सामाजिक-धार्मिक दायित्वो के निर्वाह और नैतिक मक्त व्या को ण करने हेतु परिवार द्वारा उसके सदस्य का विवाह कराया जाता था। सलिये घर धणी द्वारा ही सदस्यो के वैवाहिक सम्ब ध निश्चित किये जाते । क या का परिवार अच्छा वर खोजने के लिय गह स्वामी, गह पुरोहित यवा चारण-भाट को देशाटन के लिये भेजता था। वर प्राप्ति के पश्चात न पुत्री के ग्रह नक्षत्र पर विचार किया जाता था।[1] ज माक्षर विचार के श्चात् ज्योतिष स्वीकृति पर टीका-दस्तूर (तिलक) होता था। सगाई के व परिवारो द्वारा परस्पर सामाजिक धार्मिक प्रतिष्ठा और समान स्थिति ा अकन कर लिया जाता था। क या-परिवार अपना सम्ब ध स्वस्थिति से च्च तथा प्रतिष्ठित परिवार म करने की लालसा रखता था। इसी का रिणाम था कि अध्ययनकालीन समाज म सगाई काल से ही दहेज की रम्परा का प्रचलन दिखलाई देने लगता है। 18 वी शती म दहेज की होड ासक एव कुलीन वग तक ही सीमित रही थी[2] कि तु 19 वी शताब्दी मे इसका प्रभाव सम्पूण मेवाड के जन-जीवन पर पडने लगा था।[3] इस प्र।

---

1 भाम विलास, लाल मेवाडी री वात, उपरोक्त, डोकरी री कथा (ह प्र) पत्र 44

2 राणा अमरसिंह द्वितीय ने अपनी पुत्री च द्रकु वर के टीके मे जयपुर राजा सवाई जयसिंह को 3 लाख का सामान, हाथी घोडे तथा हजार रुपये नकद दिय थे। इसी प्रकार राणा भीमसिंह ने जोधपुर के कु वर को टीके मे सोने-चांदी से मढी हुई 10 सुपारी और 2 नारियल, 200 नारियल, 5 सेर गुड 5 सेर सुपारी, 5 सेर खजूर, 5 मेर शक्कर, 5 सेर पिस्ता, 8 सेर बादाम 9 सेर लाक्षा तथा पान के बीडे, सुनहरी पागें, मलमल की धोतिया बाला ब दी, गोसपच, सुनहरी जरी के कपडे 15 घोडे स्वर्णाभूषण से लदे हुए तथा सगाई मे आये सभी लोगो को सोने की मुहर प्रदान की थी—वि स 1833 की बही फाईल स 6, दस्त्री रिकाड (जोधपुर) प्रति वि स 1858 (1801 ई), वी वि प 755 771

3 राजपूत हितकारिणी सभा फाईल, 1889 ई, क्र 1944, स 10 (2) अजमेर रिकॉड, वी वि पृ 1704-1705

के व्यापक प्रसार का फल था कि निर्धन परिवारो मे लडकियाँ उत्पन्न होना कुल अभिशाप माना जाने लगा और कन्या वध की अमानवीय परम्परा से समाज रोग ग्रस्त होने लगा था।[1]

वैवाहिक निषेध

साधारणतया जातियो के अन्दर ही विवाह की रीति प्रचलित थी। एक ही गोत्र शाखा अथवा खाप मे विवाह निषिद्ध थे। जातिया एव व्यवसाय के प्रकरण मे अध्ययन कर लिया गया है कि ब्राह्मण, गर ब्राह्मण जातियो मे विवाह नही करते थे। उसी प्रकार राजपूत जातियो म एक ही खाप म विवाह करना वर्जित रहा था। महाजन जातियो मे गर-महाजन विवाह करने वाले व्यक्ति का स्थान जाति समाज में सम्मानित नही माना जाता था।[2] राजपूतो मे उच्चोच्च वश परम्परा के अनुसार सूयवशी कन्या का विवाह केवल सूयवश म चन्द्रवश की कन्या का विवाह सूय और चन्द्र वश म तथा अग्निवश की कन्या का विवाह तीनो मे हो सकता था। जब कि अग्निवश के पुत्र का विवाह केवल अग्निवश मे चन्द्रवश का विवाह चन्द्र और अग्नि मे तथा सूयवश के पुत्र का विवाह तीनो वश में हो सकता था।[3] निम्न जातियो म बहिर्शाखा विवाह का प्रचलन रहा था। बहिकुल विवाह की राजपूती परम्परा ने समाज मे बहिर्गाव विवाह की प्रथा को ही जन्म दिया था। राज्य म जीविका के लिये भू-अनुदान की आर्थिक व्यवस्था के कारण एक परिवार द्वारा प्राप्त

---

1 उपरोक्त, टाड—एनाल्स भा 1 प 220 फोरेन पोलिटिकल कन्सलटेशन, 23 जनवरी 1834 स 16 26 ब्रुक—हिस्ट्री ग्राफ मेवाड प 97, हिन्दू टाइब्स एण्ड कास्टस खण्ड 3, प 120। कन्या वध की प्रथा अधिकतर राजपूत जाति म प्रचलित रही थी क्योकि ब्राह्मणो मे विवाह का उद्देश्य कन्यादान माना जाता था। इसके लिये धम-कन्या गोद लेकर विवाह कराय जान का सामाजिक प्रचलन मेवाड मे प्रचलित रहा था—वि स 1847, ज्यष्ठ शुक्ला 13 का रामप्यारी बाडी मन्दिर की प्रशस्ति साक्ष्य है (वी वि प 1770-1774)।

2 ऐसे विवाहोत्पन्न पुत्र पुत्रियो को पाचडा (पचाल) श्रेणी म रखा जाता था—वी वि प 190

3 जातिया एव व्यवसाय अध्याय उच्चोच्च वश परम्परा द्वारा विवाह करने का सभावित कारण वशानुक्रमण या मेन्डलस नियम रहा था जिसके अनुसार अच्छा वश अच्छी स तान उत्पन्न करता है।

गत प्रथाएँ विद्यमान थीं, उदाहरणार्थ कृषक और पशुपालक जातियों में स्त्री द्वारा प्रथम पति का गृहत्याग कर इच्छित पति के घर आकर रहने लग जाती थी। जीवित प्रथम पति झगड़ा फाड़ करने के लिये जाति पंचायत के साक्ष्य में नवीन पति से द्रव्यादि ले देकर समझौता कर लेता था। पति के मत्योपरान्त स्त्री को स्वतन्त्रता रहती थी कि वह वैधव्य जीवन व्यतीत कर अथवा पुनर्विवाह करे। यदि वह पुनर्विवाह करना चाहती तो सफेद या काल रंग की ओढ़नी (साड़ी) नहीं पहनती तथा पति मृत्यु के पश्चात नवपति-गृह चली जाती थी। इस प्रकार पूर्व पति गृह से सामाजिक-आर्थिक सम्बन्ध विच्छेद हो जाता था। इसी प्रकार घुमक्कड़, लोकानुरंजन व आदिवासी जातियों में भी नाता प्रथा प्रचलित थी किन्तु वधू मूल्य के रूप में दापा प्रथा विद्यमान थी। दापा की कूंत (मूल्य) का कुछ भाग कन्या का पिता तथा कुछ भाग परित्यक्त परिवार द्वारा ग्रहण किया जाता था।[1] बड़े भाई की मत्यु के पश्चात् छोटा भाई भी अपनी भावज को पत्नी के रूप में घर रख सकता था किन्तु छोटे भाई की पत्नी को बड़े भाई द्वारा रखने पर सामाजिक प्रतिबन्ध था।[2] विवाह के अतिरिक्त दापा द्विज जातियों में सगाई करने के समय लिया दिया जाता था।[3] किन्तु यह प्रथा उन्हीं जातियों में प्रचलित थी जिसमें कन्याओं की स्थिति न्यून होती थी। 19 वीं शताब्दी के पश्चात् किये गये निम्न जाति के एक सर्वेक्षण द्वारा दापा राशि 40 रु लगभग प्राप्त होती है।[4] उच्च जातियों में सगाई का दापा लिये जाने का पुष्ट आर्थिक प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु वर्तमान की परम्परा द्वारा इसका सहज अनुमान किया जा सकता है।

दापा प्रथा के प्रचलन के पष्ठ में उपरोक्त कारण के अतिरिक्त कन्या

---

1 ख्यात बात संग्रह (ह प्र) पत्र 300 306, बात संग्रह—राणा रजपूत री बात, बी वि पृ 193 200 201, जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री खण्ड 24 भा 3, पृ 164
2 वी वि पृ उपरोक्त वनवासी भील और उनकी संस्कृति पृ 35
3 उपरोक्त, उदयपुर के ओसवाल जाति के महाजनों का जाति प्रबन्ध (प्र) पृ 3
4 सरक्यूलर रजिस्टर महकमा खास पार्ट 1 पृ 96, दी गाडोलिया लोहार ऑफ राजस्थान पृ 182

परिवार की दरिद्रावस्था एवं वृद्ध पति-विवाह माना जा सकता है।[1] दहेज अथवा दापा नहीं जुटा पाने की अवस्था मे निर्धन परिवारों में विवाह-आवश्यकता की पूर्ति आटा-साटा प्रथा (विवाह विनिमय) द्वारा होती थी। राजपूतों में उच्चोच्च वंश परम्परा में विवाह करने की अभिलाषा ने दहेज और आटा साटा प्रथा को समाज में जीवित रखा था।[2] इस प्रकार वैवाहिक निषेधों तथा परम्पराओं के फलत कई सामाजिक व्याधियों से समाज पीड़ित रहा था।

बाल विवाह

आलोच्यकालीन ऐतिहासिक साहित्यिक धार्मिक प्रमाण साक्ष्य है कि समाज मे बाल विवाह का प्रचलन अधिक रहा था।[3] 18 वीं शताब्दी की वार्ता मे[4] एक महाजन जाति के व्यक्ति द्वारा 9 वर्ष की कन्या के साथ विवाह करना लिखा गया है। 19 वी शताब्दी के प्राप्त विवरणों से भी ज्ञात होता है कि कन्याओं के विवाह 15 वर्ष की अवस्था पूर्व हो जाया

---

1 (अ) के एम कापडिया—भारतवर्ष मे विवाह एव परिवार (अनुवाद), पृ 114 115

(ब) अनमेल विवाह भी मेवाड़ मे प्रचलित थे। 10 12 वर्ष की कन्या का विवाह वृद्ध के साथ होना कोई सामाजिक बुराई नहीं माना जाता था।—गजेटियर रिपोर्ट ऑफ मेवाड़ (ह प्र), पृ 86-87 सहीवाला भा 1, पृ 36

2 राणा सरदारसिंह की पुत्री का विवाह बीकानेर युवराज से तथा बीकानेर की राजकुमारी का राणा सरदारसिंह के साथ विवाह होना इसका उदाहरण है कि राजपूतों मे आटा साटा प्रथा प्रचलित थी।—वी वि पृ 1897 1900 ब्राह्मणों में भी यह प्रथा प्रचलित रही थी—उदयपुर चोखला रो बहिड़ो।—न्यात आमेटा, भारतवर्ष में विवाह एव परिवार (अनुवाद), पृ 114

3 सदवछ सावलिगा री वात (सदाव्रत सावल गोरी री वात) (ह प्र), पत्र 7 8, पद 48-49, रामचरित्र पत्र 27

4 चन्द्र कुवर री वार्ता (ह प्र) पत्र 56 किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं था कि समायु विवाह होते ही नहीं थे। मधुमालती नामक प्रति मे दृ ह मधु की उम्र 20-22 वर्ष तथा मालती की उम्र 18 वर्ष की बतलाई गई है (वि स 1822 की ह प्र, पत्र 33, पद 78)।

करते थे ।[1] बाल विवाह तथा वृद्ध (मनमेल) विवाह को रोकने के लिए गवर्नर जनरल लार्ड बटिक ने राजपूताने के सभी शासकों को परामर्श पत्र लिखा था ।[2] किन्तु समाज की संयुक्त परिवार व्यवस्था धर्मान्ध विश्वास और बहु विवाह करने की रुचियों के परिणामस्वरूप 19 वीं शताब्दी के पश्चात् भी बाल एवं वृद्ध विवाह (अनमेल विवाह) होते रहे थे ।[3] अल्पायु-विवाह की इस प्रवृत्ति के विकास ने 'कूख-सगपन' प्रथा को जन्म दिया था। ऐसे सम्बन्ध भ्रूण काल में निश्चित कर लिए जाते थे। तत्पश्चात् शिशु उत्पन्न होने पर उनकी माताएँ उन्हें गोद में ले कर विवाहोचार का निर्वाह करती थीं ।[4]

बहुभार्या विवाह एवं रखल प्रथा

समाज पर सामन्तवादी प्रभाव के वातावरण कुलीन वर्ग में भी सामाजिक-आर्थिक पद-प्रतिष्ठा के प्रदर्शन और रति सुख परिवर्तन की मानसिक-

---

1 सहीवाला भा 2 पृ 36, कोठारी, पृ 37 एवं 49

2 फो पो कन्सलटेशन, अगस्त 13 1832 सं 26

3 (अ) *उदयपुर के ओसवाल जाति के महाजनों का जाति प्रबन्ध (प्र),* पृ 3, श्यामलदास कलेक्शन—कोपी आफ दी रूल्स रिगार्डिंग मेरोज आफ दी सन्स एण्ड डाटर, ब फा क्र 309, प्रोसीडिंग आफ राजपूत हितकारिणी सभा, मार्च 5-10, 1888 ई , फा सं 1494/1889 क जेड (ii), अजमेर रिकार्ड, सरक्यूलर रजिस्टर महकमा खास, पार्ट I पृ 94-95

(ब) बाल विवाह का कारण स्मृतियों की विवाह व्यवस्था हो सकता है। इनमें कन्या विवाह की वय 8 10 वर्ष की बतलाई है क्योंकि ऋतुमती होने के पश्चात् कन्यादान धर्म विरुद्ध होना लिखा है। इसमें भी 8 वर्ष की गौरी 9 वर्ष की रोहिणी तथा 10 वर्ष की कन्या की श्रेणी में गौरी का कन्यादान करना शास्त्र सम्मत बतलाया गया है।—भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार पृ 148-150

4 19 वीं शती के उत्तरार्द्ध में उत्पन्न श्रीकृष्ण पाठक, श्री नीलकण्ठ, श्री सोहन लाल श्री वल्लभजी भट्ट के साक्षात्कार पर आधारित। यह साक्षात्कार 1975 ई में लिया गया था जबकि उपरोक्त साक्षियों की आयु 80 से 90 वर्ष की थी।—दी गाडोल्या, पृ 178

प्रवृत्तियो के कारण आलोच्यकाल मे बहुभार्या विवाह तथा उपपत्नी रखने की प्रथा का प्रचलन रहा था। निम्न तालिका[1] इसका प्रमाण है कि अध्ययनकालीन राजकुल के परिवार मे औसतन 9 स्त्रिया विवाह और 7 उपपत्निया विद्यमान रही थीं—

	राणा	पत्निया	उपपत्निया
1	सग्रामसिंह द्वितीय	16	3
2	अरिसिंह	8	12
3	भामसिंह	5	12
4	जवानसिंह	7	8
5	स्वरूपसिंह	4	10

अभिजात् वग मे ठिकाना के ठाकुरो द्वारा बहु-विवाह करने पर प्रत्येक विवाह के लिय राज्याज्ञा प्राप्त करनी होती थी।[2] सभवत इसका उद्देश्य सामाजिक पद और प्रतिष्ठा के अन्तर को बनाये रखना था। समाज के अन्य वर्गों में पासवान या रखल स्त्री रखने पर कोई प्रतिबन्ध नही था किन्तु साधन सम्पन्न लोग ही अधिकतर उपपत्निया रखते थे।[3]

बहु भार्या विवाह प्रथा द्वारा स्त्रियो के प्रति मनुष्यों का दलित् दृष्टिकोण दिखाई देता है वहां समाज में प्रचलित पर्दा प्रथा के उपयुक्त कारणा का उत्तर भी प्राप्त होता है। प्रत्येक राजपूत परिवार मे स्त्रियो के लिय अन्तपुर बनाये जाते थे। इन्हें मुगल प्रभाव से प्रभावित जनाना[4] कहा

---

1 साहित्य सस्थान प्रति—वशावली क्र 292 393 प्रा वि प्र उ प्रति क्र 867, 872, वो वि एव उदयपुर राज्य के इतिहास पर आधारित।

2 टाड—एनाल्स, भा 1 पृ 190

3 जगत विलास (ह प्र) पत्र 45, भीम विलास प 223-25, लाल मवाडी री बात (ह प्र), पत्र 91 ईसर ग्रन्थावली (ह प्र) पत्र 13, जगदेव पु वार री बात, पत्र 2, 28, वारता राजा रा कुंवरा रा राजलोक री पत्र 300, सहीवाला भा 2 पृ 65, भा 3, पृ 11, कोठारी पृ 133 श्रीवास्तव के अनुसार रखैल प्रथा का प्रभाव समय-समय पर उत्पन्न होने वाले अकाला के कारण बढ जाता था।—दी हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फेमीन्स, पृ 20-21

4 (अ) फारसी का जान (स्त्री) का अपभ्रश जनाना है। जनाना मे स्वामी पुरुष के अतिरिक्त प्रवश निषिद्ध था। जनाने स बाहर

जाने लगा था। ग्राम्य समाज मे राजपूत गांवों क अतिरिक्त पर्दा प्रथा निम्न जातियो मे विद्यमान नहीं रही थी। घू घट का पालन करने वाले परिवारों मे स्त्रियां सास ससुर तथा पति से अग्रज सदस्यो व पति की उपस्थिति मे उसके अनुजो के सम्मुख घू घट मौन धारण किये रहती थी। लोक ल ज्जा के इस सामाजिक निय त्रण का हास्यास्पद उदाहरण था कि युवा स्त्री को अपने पति से सम्पर्क करने के लिये सास की स्वीकृति लेनी पड़ती थी और यह स्वीकृति, दिन मे सभव नहीं थी।[1]

विवाह आचार[2]

विवाह के प्रारम्भिक चरण सगाई के पश्चात् ज्योतिष अथवा धर्मा धिकारियों से विवाह का मुहूर्त निश्चित किया जाता था। मेवाड़ मे यातायात के व्यवस्थित मार्गों की कमी नदी-नालों के अवरोध एव किसान वर्ग का कृषि कार्यों मे व्यस्त रहने के कारण वर्षा के दिनो मे विवाह नहीं किये

स्त्रियां बगैर पर्दा नही आ सकती थी। मेवाड़ मे राणा राजसिंह तक जनाने-पर्दे पर कठोर प्रतिब ध नही था कि तु मराठा उपद्रव काल मे इसका व्यापक प्रचलन हुआ जिसका पालन 19 वी शती के पश्चात् तक होता रहा था।

(ब) श्यामलदास राजपूत परिवारों मे पर्दा प्रथा के कठोर प्रतिब ध के बारे मे लिखते है कि गरीब से गरीब राजपूत अपने कधे पर कुए से पानी का घड़ा भर लाता कि तु अपनी स्त्रियो का पर्दे व बाहर नही निकालता था।—वी वि, पृ 188 207-208। अ य द्विज जातियों म पर्दा प्रथा होने पर भी स्त्री घर के बाहर का काय घू घट डाले हुए करती थी।

1 च द्रकु वर री वात (ह प्र), पत्र 179, सदयवत्स सावलिगा री वात (ह प्र) पद 75, पत्र 18 बीजा सोरठ री वात (ह प्र) पत्र 59

2 विवाह आचार का अनुच्छेद उद्ध त विवरणो से सकलित एव प्रस्तुत किया गया है।—भीम विलास, पद्य 219 पत्र 66 228/67, 229/67 230/68, 237-38/68 251/74 253/75, 258/75-76, 260/76, 488/38, लाल मेवाड़ी री वात (ह प्र) पत्र 86-87 च द्र कु वर री वात (ह प्र), पत्र 189, जगदेव पु वार री वात (ह प्र) पत्र 21-22

जाते थे ।[1] अधिकतर विवाह के मुहूत चैत्र, वैशाख मगपर और माघ माह मे आते थे । इस समय में फसलें तैयार हो जाती थीं और लोगो को विवाह-व्यय सस्ता पडता था। राजपूत जाति म जन्माष्टमी, बसतपचमी तथा अक्षयततिया के लिये मुहूत की आवश्यक्ता नहीं मानी जाती थी। इन दिनो में बगैर लग्न विवाह कर लिये जाते थे । विवाह मुहूत्त निश्चित होने के बाद पीली चिट्ठी नामक लग्न पत्रिका वर पक्ष के घर भेजी जाती थी। व्यक्तिगत निमत्रणाथ विवाह के परिवार वाले बहिन बेटियो को लेन जाते थे। कन्या या पुत्र की माता अपने पित गह बत्तीसी' ले जाता थी जो कि पितपक्ष द्वारा लाई जाने वाली पहिरावणी का विवाहपूव निमन्त्रण था। आधुनिककालीन डाक-व्यवस्था नहीं होने के कारण आलोच्यकाल मे निमत्रण पत्र व्यक्तियो द्वारा पहुचाये जाते थे अत एक ही गांव के अपने जाति सदस्यो और सम्बंधियों को निमत्रण देने के लिये जाति के मुखिया या परिवार के प्रमुख के नाम सभी को आमन्त्रित कर लिया जाता था। कुकुम-पत्रिका नामक ऐसे निमत्रण पत्र सामुदायिक आमत्रण-पत्र होत थे । विवाह के कुछ दिन पूव गणपति स्थापना के बाद वर वधू को जाति परिवारो द्वारा भोज निमित्त बन्दौला' दिया जाता और विवाह के दिन तक माढया (विवाह) के घर जाति की स्त्रिया प्रत्यक दिन मगल गान करने जाती थी । इस काय के साथ साथ विवाह भोज की कच्ची सामग्री की सफाई, पिसाई आदि भी की जाती थी । प्रथम विवाह पर वधू अथवा वर के ननिहाल से पहिरावणी या मायरा के रूप मे मांढया परिवार के लिये वस्त्राभूषण लाये जाते थे। इसके पश्चात् वर की जान (बरात) विवाह के लिय प्रस्थान करती थी। बरातें पैदल घोडा बैलगाडियो हाथी आदि पर जाती थीं जिसमे परिवार की आर्थिक स्थिति एव प्रतिष्ठा के अनुसार बराती होते थे ।[2] वधू पक्ष के

1 हिन्दू अन्धविश्वासों के अनुसार इसका कारण देव-शयन अवस्था मे होना रहा था क्योकि विवाह जसे धार्मिक मागलिक काय मे उनकी उपस्थिति आवश्यक मानी जाती थी अत शयन करते हुए देव को जगाना मगल मे अमगल उत्पन्न करना मानते हुए विवाह वर्षा में नही किये जाते थे । विवाह का प्रथम निमत्रण गणपति को देने की परम्परा आज भी प्रचलित है ।

2 अभिजात वग में 1000 तक बराती होते थे । उदाहरणाथ राणा भीमसिंह के विवाह मे 1000 से ऊपर बराती थे और कोठारी बलवन्तसिंह के पुत्र की बरात में 600 बराती रहे थे जबकि निधन वग में 100 से

घर पहुंचने पर वहां तोरण मारने, त्याग-बांटने तथा सप्तपदी (सात-फेरों) की परम्परा का निर्वाह करते हुए पाणि ग्रहण संस्कार पूर्ण किया जाता था।

विवाह के पश्चात् वर-वधू को जनवास[1] ले जाने की क्रिया सम्पन्न कर वधू को पुनः वधू गृह ले आया जाता था। दूसरे दिन प्रातः बीन्द-सिरावणी (कुँवर-कलेवा) तथा साथ बड़ा भोज दिया जाता। इस भोज में बराती, स्थानीय जाति समाज एवं आमंत्रित जन सम्मिलित होते थे। तृतीय दिन कुल के देव देवियों की नव दम्पत्ति द्वारा पूजन रोड़ी-पूजन[2] आदि के धार्मिक एवं रूढ़िगत कृत्यों के साथ-साथ सगे-सम्बन्धियों का पारस्परिक मनो-विनोद तथा मिलनी (स्वागत) कार्यक्रम चलता रहता था।[3] चतुर्थ दिन बरात विदाई के पूर्व जाति-पंचायत के समक्ष राजपूतों में जुहारी ब्राह्मणों में धमटूणी की प्रथा द्वारा डायचा (विवाह का दहेज) दिया जाता था। इस दहेज का सामाजिक प्रदर्शन किया जाता था। जिसके पृष्ठ में परिवार की आर्थिक सामाजिक प्रतिष्ठा और पद का प्रदर्शन मात्र उद्देश्य रहता था। इस क्रिया के साथ-साथ जाति पंचायत के सामाजिक नेग तथा दस्तूर लिये दिये जाते और अमल-पानी का व्यवहार चलता था।[4] घर लौटती हुई बारात

---

6 बराती तब होते थे।—भीम विवाह का चित्र, द्रष्टव्य—भीमविलास—उपरोक्त, कोठारी, पृ 31

1 वर पक्ष के ठहरने का स्थान।—भीम विलास, पद 197 पृ 61

2 रोड़ी पूजन का ध्येय यह है कि जिस प्रकार रोड़ी अपने में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को समाहित किये वर्षा सर्दी तथा गर्मी में यथावत् सहनशील एवं खेत में जाने पर उवरक बन जाती है उसी प्रकार वर-वधू भी अपने जीवन में बने और प्रसन्न हों।

3 जगदेव पुंवार री वात (ह प्र) पत्र 21-22

अनेक सुनारी करे गीत गान।
अनेक बजन्त अनद धुरान॥
भये उछव मगल ठाम ठाम।
गाव गारगीत त्रिय धाम धाम॥
—भीम विलास पद 251, पृ 74

4 जाति पंचायत के नग (नियम) अनुसार रुपया या द्रव्य का दस्तूर इस समय किया जाता था। अमल-पानी, मनवार प्याला आदि का पान किया जाता था।—टाड—एनाल्स, भा 3, पृ 1633, मेवाड़ नो इद 4, वी वि, पृ 209

माग मे बीन्द गोठ करती थी।[1] घर पहुचने पर बरात एव वर वधु का स्वागत किया जाता था एव उसी दिन सायकाल वर पक्ष की ओर से जाति-भोज किया जाता था। वर के घर द्वारा सामाजिक धार्मिक क्रियाओं को पूरा कर विवाह-उत्थापन किया जाता था। इस अवसर पर आमन्त्रित सगे-सम्बन्धियों को साडी पाग पहिनाकर विदा दी जाती थी।

विवाहोपचार की क्रिया म विवाही परिवार द्वारा ज्योतिषी, नाई सुथार, बारी, ढोली, सोनी, चारण भाट तथा जाति समाज के लिये, नेग और दहेज के लिये नकद और द्रव्य का व्यय किया जाता था, उससे उस परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति का अकन भली प्रकार हो जाता था। भीम विलास सदवछ सावलगोरी री वात एव कोठारी सग्रह के कागजात आदि से[2] आर्थिक व्यय के अनुसार तीन श्रेणिया दिखाई देती हैं प्रथम श्रेणी में शासक, ठाकुर और सम्पन्न द्विज परिवार आते थे जिनका विवाह व्यय 50 हजार से 60 लाख तक रहा था। द्वितीय श्रेणी म राज्याश्रित द्विज जातिया शिल्पी, कृषक एव पशु व्यवसायी जातियां आदि थे जिनका व्यय 5 सौ से 22 हजार तक और तृतीय श्रेणी मे निम्न जातिया और आदि-वासी थे जिनका प्रति विवाह व्यय 5 सौ से 50 तक रहा था।

विवाह पर सामन्ती लाग (प्रतिबन्ध)

विवाह में सामाजिक प्रथाओ की जातिगत लागतो के अतिरिक्त जागीर-दारी गांवो म किये जाने वाले विवाह पर गाव के जागीरदार द्वारा जाति-भोज की स्वीकृति प्राप्त करन के लिये 'पइसा' भेजना पडता था।[3] लडकी के विवाह पर 'व्याव चवरी' और लडके के विवाह पर 'पगेलागणी' की लागत जागीरदार को देनी पडती थी।[4] प्राचीन काल मे इनका प्रचलन प्रेम तथा आदर प्रकट करने की दृष्टि से प्रचलित रहा था किन्तु आलोच्यकाल मे यह

---

1 भीम विलास, उपरोक्त, सदवछ सावलिगा री वात (ह प्र), पद 65-68, पत्र 13-14, वशावली क्र 872 पत्र 126

2 उपरोक्त, श्यामलदास कलेक्शन—राणा अमरसिह द्वितीय कालीन कागजात, फा क्र 220 कोठारी, पृ 49 131, 133, वी वि पृ 771, 1704-1705 1746

3 नाता करने पर इसे नाता कागली भी कहा जाता था।—सरक्यूलर रजिस्टर महकमाखास पार्ट I, पृ 250, न 20 एफ

4 उपरोक्त शोध पत्रिका, वष 20, अक 2, पृ 76

सामाजिक शुल्क के रूप में अनिवार्यतः चुकाना पड़ता था।[1] इसी प्रकार राज्य की ओर से सार्वजनिक रूप से जातिगत नियंत्रण लगाए हुए थे। इनमें द्विज जातियों के लिये शक्कर युक्त गेहूँ का भोजन, कृषक एवं शिल्पी जातियों के लिये गुड़ का भोजन निम्न जातियों के लिये निश्चित मात्रा में गुड़ का भोजन। इसी प्रकार घी और तेल के भोज का जातीय वर्गीकरण द्विज एवं अभिजात के अतिरिक्त अन्य के विवाह अवसर पर घोड़े पर बैठने का निषेध, स्वर्ण-रजत आभूषण, कपड़ों तथा उनके रंगों को पहिनने का जातिगत बंधन ढोल अडबी ताशा (साज) भगतण (नतकियां) ढोलन आदि पर थगगत प्रतिबंध और व्यंजन आदि पर जातिगत राहमुरजादें[2] संकेत करती हैं कि मेवाड़ी समाज में आर्थिक प्रदर्शन तथा व्यय करने के लिये व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं था अपितु उस पर शासन का नियन्त्रण रहता था। इस नियंत्रण को पालन कराने में जाति पंचायतों द्वारा जाति श्रेणीबद्धता और सामन्ती परम्परा का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। इसके विरुद्धाचरण करने वाले को कठोर दण्ड दिया जाता था।[3]

अन्त्येष्टी संस्कार

परिवार के जीवन में पारिवारिक-सदस्यों की मृत्यु पर तथा उसके पश्चात् किये जाने वाले सामाजिक आर्थिक कार्यों में अन्त्येष्टी संस्कार एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक क्रिया थी। हिन्दुओं में इहलोक एवं परलोक के विश्वासानुसार मनुष्य परलोक में अन्त्येष्टी कर्म की शुद्धता द्वारा सुख भोगता है। ऐसा माना जाता रहा है कि आत्मा अमर है और जब तक उसकी गति (पुनर्जन्म) नहीं होता तब तक भटकती रहती है। अतः उसके अनादर करने पर वह जीवित प्राणियों को कष्ट देती है। भील मीणा और ग्रासिया नामक आदिवासी जातियों में अच्छी और बुरी आत्मा की परिकल्पना में आत्मा द्वारा मनुष्य को लाभ और हानि किया जा सकता है। इसी मान्यता के फलतः इन जातियों में मानवीय दैवीकरण की भावना विद्यमान रही थी।

---

1 जागीरदार अथवा शासक के घर पर विवाहअवस्था या इन्तकाल पर खोल, बनोला, मूसा आदि की लागतें भी प्रजा से ली जाती थी—उपरोक्त।

2 फहरिस्त नक्शा राह मुरजाद जात वि स 1909, प्रति वि स 1892 (1835 ई) ज्येष्ठ वदि 7, द्रष्टव्य— परिशिष्ट।

3 सरक्यूलर रजिस्टर महकमाखास, पाट I, पृ 163

हिन्दू और प्रकृतिवादियों में असत् आत्माओं के प्रति एक ही प्रकार की कल्पना रही है। किन्तु हिन्दुओं में धार्मिक अनुष्ठान तथा प्रक्रियाओं द्वारा आत्मा को सत् बना कर सद्गति में ले जाया जाने का विचार प्रचलित रहा है जबकि आदिवासियों में धारणा है कि आत्मा इहलोक में विचरती रहती है। हिन्दुओं की इसी मान्यता के फलस्वरूप व्यक्ति द्वारा स्वयं को जीवित अवस्था में अथवा उसके मरणोपरान्त पुत्र द्वारा, मृतक संस्कार किये जाते रहे हैं। 18-19 वीं शताब्दी के मेवाड़ी समाज में इस संस्कार का पालन करना व्यक्ति के लिए आवश्यक था अन्यथा समाज इसके लिये व्यक्ति या परिवार को बाध्य करता था।[1]

अन्त्येष्टी संस्कार में दान-पुण्य का प्रमुख महत्व रहा था इसलिये मृत्यु-गामी स्वमृत्यु के समय आर्थिक अवस्थानुसार दान-पुण्य करता था। राणा स्वरूपसिंह ने मृत्यु सुधारने के लिये दानार्थ 4 लाख रुपयों का सकल्प किया था एवं 36 हजार का स्वर्ण अपनी पलंग के तले दान हेतु रखवाया था। ब्राह्मण गोपाल पानेरी को दक्षिणार्थ मांगने पर 6 हजार रुपये प्रदान कर मृत्युगामी हुए थे।[2] मृत्यु के पश्चात् मृतक की अवस्था एवं मान्यतानुसार जलाया अथवा गाड़ा जाता था।[3] समृद्ध मृतक की अर्थी के साथ साथ उसके

---

1 मन्निरा कम नहीं करने पर समाज द्वारा व्यक्ति या परिवार को उलाहने दिये जाते थे कि तेरा बाप या पुरखे श्मशान घाट पर बैठे हैं अथवा सपने में तंग करते हैं या गति के लिये चीख रहे हैं आदि।—लोक विश्वास और परम्परा से उद्धृत।

2 वी वि पृ 2046, सहीवाला, भा 1, पृ 92 94। मृत्यु समय समीप होने पर व्यक्ति को पलंग से उतार कर गोबर-पुते फर्श पर सुलाया जाता था। उसके सम्बन्धी गीता रामायण का पाठ सुनाते हुए मुंह में गंगाजल या तुलसी पत्र डालते थे। साथ ही शास्त्रोक्त दस दान—गौ भूमि तिल, स्वर्ण घृत वस्त्र धान्य, गुड़, रजत व नमक का आर्थिक स्थितिनुसार संकल्प कराते थे। गऊ दान का महत्व अधिक प्रचलित था क्योंकि परलोक की वैतरणी-नदी को पार कराने में गऊ को समर्थ माना जाता था।—अशोक कम (ह प्र) से उद्धृत भूमान पट्टा प्रति स 139, 160, 170, 183, 319 321 353 483 आदि। वी वि, पृ 209

3 बालक एवं संत को इस मान्यता के अनुसार गाड़ा जाता था कि व

परिवार द्वारा रुपया पसा, मोती कौड़ियां तथा अन्न उछालते चलते थे।[1] इस 'बखेरने' को शूद्र जातियां लुटती थीं। श्मशान घाट[2] म अभिजात वग के मतक को चन्दन की लकड़ियों की चिता पर तथा साधारण वग के मतक को खेर-धावड़ा के वक्ष की लकड़ियो पर जलाया (दाग) जाता था। लकड़ियो की सुव्यवस्था नही होने पर परिवार और अन्य सम्बन्धी लकड़ियां साथ लाते थे।[3] चिता पर दाह क्रिया करने के पूव श्मशान के हरिजन-जागीरदार को मशाना-भोम' नामक लागत चुकानी पड़ती थी।[4] अद्ध दाह के बाद आत्मा को मुक्ति प्रदान करने के लिये कपाल क्रिया' द्वारा उसका सिर लकड़ी स कुरेदा जाता था। शव के पूणदाह के पश्चात् सभी घर लौटते थे। शासक वग मे नवीन शासक दाह क्रिया म भाग नही लेता था और न अशौच रखता था।[5] अशौच कम का निर्वाह राजपुरोहित के घर किया जाता था। शेष जन-साधारण म 12 दिन तक अशौच रखा जाता था।[6] मत्यु के तीसरे दिन अस्थियां एकत्रित कर किसी पवित्र नदी अथवा ताल म प्रवाहित कर दी जाती थीं। इसके पश्चात् 8-9 दिन पर मतक की तप्ति और मोक्ष हेतु तपण पर ब्रह्मभोज दिया जाता था। इस भोज का विकृत स्वरूप जाति भोज रहा था। अशौच को समाज भोजन परम्परा को करियावर अथवा कटया कहा जाता

निष्पाप एव निष्कलक होने के कारण पुन जीवित हो सकते हैं कि तु सासारिक गहस्थ गति भोगने के पश्चात् ही जन्म लेंगे अत गति भोगने के लिये उन्हें जलाया जाता था।

1 आधुनिक समय में भी यह प्रथा प्रचलित है। राणा भूपालसिंह की मत्यु पर मोती अक्षत का बखेरना शोधार्थी द्वारा देखा गया था।

2 अभिजात वग का श्मसान महासत्या' तथा साधारण वग का सत्या कहलाता था। उदयपुर के महासत्या आज भी देखे जा सकते हैं।

3 सो ला मी रा पृ 125

4 पोपा बाई री वार्त्ता (ह प्र) पत्र 85 बात सग्रह क्र 123

5 सिंहासन कभी खाली नही रहता और न राजा कभी मरता है, इसलिये शासक मतक सस्कार मे भाग नहीं लते थे।

6 अशौच की पाराशर स्मति व्यवस्था मे ब्राह्मणो के लिये 10 दिन, राजपूतो के लिए 12 दिन वैश्य महाजन के लिये 15 दिन तथा शूद्र के लिए 1 माह का अशौच बतलाया गया है। इसी प्रकार शिशु की मत्यु पर अशौच नही रखने तथा बालक की मत्यु पर 3 दिन का विधान कहा गया है।—राजस्थान के रीति रिवाज पृ 166

था।[1] द्विज जातियों में मृतक की मृत्यु के दसवें दिन बड़े पुत्र द्वारा पिण्ड-दान किया जाता था और जाति जन केश मुण्डन कर 'भदर' होते थे।[2] इस दिन मृतक की विधवा को वैधव्य धारण कराया जाता था। ग्यारहवें दिन जाति का एकादशी-भोज और बारहवें दिन पारिवारिक आर्थिक स्थिति के अनुसार जाति चोखला बावनी न्यात (पूर्ण जाति) की प्रचलित प्रथा द्वारा भोजन कराया जाता था।[3] इस दिन मृतक पितृ श्रेणी में गिना जाने लगता था। तेरहवें दिन समाज द्वारा उत्तराधिकारियों को पगड़ी बांध कर सामाजिक प्रमाणीकरण किया जाता था। यदि उत्तराधिकारी राज्य प्रशासन से सम्बन्धित होता तो यह पगड़ी राज्य की ओर से आती थी।[4] राज्य के उच्चाधिकारी या कृपापात्रों को मृत्यु भोज के लिये द्रव्य एवं नक्द सहायतार्थ दिया जाता था।[5] किन्तु साधारण जन को सामाजिक दबाव और लोकभय के कारण अचल सम्पत्ति को बंधक रख कर ऋण द्वारा भी 'अन्तिम-कार्य' को करना पड़ता था।[6] आत्मा की पूर्ण गति के लिये एवं वर्ष पश्चात्

---

1 कोठारी पृ 38, दोषी—भील स्टडी, पृ 195-200

2 इस दिन पिण्ड-क्रिया पूर्ण होने पर माना जाता है कि मृतक शरीर पिण्डों द्वारा पूर्ण होने से प्रेत योनि से मुक्त हो जाता है।—वी वि, पृ 209

3 इस प्रथा में द्विज शक्कर का भोजन, कृषक एवं पशु पालक जातियां गुड़ का भोजन शूद्र मात्र मक्का की घूमरी अथवा धान की बाटी एवं शिल्पियों में सुनार आदि शक्कर सुथार-लुहार गुड़ तथा अन्य निरठा रहित जाति भोज कर सकते थे।—गमी की राहमुरजाद, वि स 1909 (ह प्र) रा अ ऊ फाईल क्र 394

4 सहीवाला भा 3, पृ 4, कोठारी, पृ 45 48 130। द्रष्टव्य—उत्तराधिकार अनुच्छेद।

5 राणा स्वरूपसिंह द्वारा केशरसिंह को उसके पिता की क्रिया तथा भोज के लिये 2000 रु मां की क्रिया पर कुल खर्चा 12500 रु राणा शम्भूसिंह द्वारा बलवन्तसिंह को उसके पिता की क्रिया और मृत्युभोज के लिये 2000 रु तथा मां के लिये 4000 रु बख्शीश दिये गये थे। कोठारी कलक्शन। फरियादवर बावनी खर्चा रा कागद वि स 1905, खर्च री बही। ब रि, बस्ता 1 कोठारी, पृ 37-38 130-131

6 धनजी नामक व्यक्ति की विधवा ने अपने पति का 'प्रेतकारज' करने

श्राद्ध कर्म किया जाता था। अभिजात वर्ग द्वारा यह कार्य गया, बनारस अथवा स्थानिक तीर्थ स्थानों पर किया जाता या फिर कभी तीर्थयात्रा पर इसे पूर्ण किया जाता था। श्राद्ध में भी वर्गबद्ध प्रति और सूक्ष्म व्यय का प्रचलन था।[1] भील ग्रासियों जैसी जातियों में श्राद्ध कर्म नहीं किया जाता था।

सती प्रथा

मृतक संस्कार के उपरोक्त संदर्भ में आत्मदाह करने की प्रथा भी समाज में प्रचलित रही थी। मुस्लिम आक्रमणों में सत रह शहीदों की पत्नियां स्वसतित्व रक्षार्थ 12 वीं शताब्दी से जौहर द्वारा आत्मदाह कर लेती थीं। कालान्तर में यह परम्परा सती-प्रथा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। जौहर अथवा सती प्रथा के प्रचलन के सामाजिक धार्मिक कारणों में तीन प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं—

(क) हिन्दू विवाह का लक्ष्य स्त्री पुरुष को चिरन्तन धार्मिक बंधन में बांधना तथा जीवन क्षेत्र में सहभागी कर्त्तव्य का निर्वाह करने एकाकार होना रहा है। अतः पत्नी का धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था कि वह परलोक में भी साथ दे। इसी धार्मिक मान्यता के प्रचलन का परिणाम सती-प्रथा थी।—(राणा स्वरूपसिंह का रुक्का-पोलिटीकल एजेन्ट राबिंसन को-12 जनवरी 1848 ई. वी वि पृ 2017)

(ख) समाज में बाल विवाह, बहुभार्या विवाह तथा विधवा जीवन के प्रति हेय सामाजिक दृष्टि के परिणामस्वरूप स्त्रियों का वैधव्य जीवन कष्टकारी

के लिये 70 रु में अपना खेत गिरवी रखा था (द्रष्टव्य—सो ला मी रा पृ 126 टिप्पणी 97)।

1 मेहता संग्रामसिंह कलेक्शन—चोपन्या पाण्जी की ओवरी फाईल 15 बस्ता 1 श्यामलदास कलेक्शन वि स 1812 (1755 ई) करमात्री जी रो बहिड़ो फाईल क्र 17 वि स 1888 तथा 1896, नगीना बाड़ी रो चोपन्यो–रा अ उ, वी वि पृ 1800 1802 1897-98, 1900, 2046, 2058 2255 सहीवाला भा 1 पृ 92 कोठारी कागजात—रा अ उ। संकलित विवरणों से ज्ञात होता है कि अभिजात वर्ग में मृत्यु भोज तथा श्राद्ध पर 6 लाख से 4 लाख तक, 51 मन शक्कर से 250 मन शक्कर खर्च की जाती थी जबकि निम्न वर्ग के खर्चे का कोई रिकार्ड उपलब्ध नहीं होता है।

हो जाता था। द्विज जातियो मे पुनर्विवाह प्रतिब ध तथा राजपूत जाति मे रखल रखने की प्रथा के कारण स्वामी की मत्यु के पश्चात् बाभ्क विधवाओ व रखल स्त्रियो का सामाजिक आश्रय सदिग्ध रहता था। ऐसी अवस्था मे अनाथ स्त्रिया आत्मदाह का माग अपनाने पर विवश हो जाती थी।—निम्न तालिका मे[1] रखल अथवा बाभ्क विधवाओं का सती होना इसकी पुष्टि करता है—

सती तालिका

	मतक व्यक्ति	पत्निया	सती पत्नियाँ	सती उपपत्निया
1	राणा अमरसिंह द्वितीय	6	5	2
2	राणा सग्रामसिंह द्वितीय	16	12	8
3	राणा जगतसिंह द्वितीय	9	3	16
4	राणा राजसिंह द्वितीय	4	2	11
5	राणा अरिसिंह	8(5जीवित रहते हुए मत)	2	4
6	राणा हम्मीरसिंह द्वितीय	1	×	3
7	राणा भीमसिंह	5	4	4
8	राणा जवानसिंह	7	2	8
9	राणा सरदारसिंह	4	2	1
10	राणा स्वरूपसिंह	4	×	1
11	सहीवाला गोव्द नदास (राणा सग्रामसिंह कालीन)	1(जीवित रहते हुए मत)	×	1

(ग) लोकमय या मानसिक विक्षिप्तता के कारण पति के साथ अथवा कई वष पश्चात् भी स्त्रिया सती होना स्वीकार कर लेती थी। श्यामलदास ने एक स्त्री का अपने पति की मत्यु के 11 वष बाद सती होने का उल्लेख किया है (वी वि प, 2038) सामाजिक दबाव का उदाहरण डा गोपीनाथ शर्मा

1 ख्यात बडवा देवीदान—मेवाड के राजाओ की रानियो और कु वरो का हाल (ह प्र) पृ 68, सीसोदा वशावली (ह प्र), पृ 34-40—(साहित्य सस्थान प्रतियां), वशावली क्र 867 पृ 39-45 (रा प्रा वि प्र उ), वी वि, पृ 1538-39 1543, 1578-79, 1701, 1750, 1808, 1907, 2046, उ ई भा 2 पृ 609, 623; 665, 670, 720, 732, 741, सहीवाला, भा 1, पृ 24, 44

ने मामली जागीर के ठाकुर द्वारा एक ब्राह्मणी पर आत्मदाह के दबाव को प्रस्तुत किया है (सो मा मी रा प 129)। इसी प्रकार कई उदाहरण इसकी पुष्टि करते हैं कि सती होने का एक कारण सामाजिक दबाव रहा था।[2]

कर्नल टाड ने मेवाड़ में प्रचलित सती प्रथा को राजपूत जाति की जाति-परम्परा एवं धार्मिक आचरणों से सम्बंधित करते हुए इस प्रथा को विशिष्ट जातिगत प्रथा के रूप म प्रस्तुत किया है।[3] किन्तु उपरोक्त तालिका, सम्बन्धित प्रमाण और मामली जागीर के ब्राह्मणी की घटना इस उक्ति को निर्मूल सिद्ध करती है।

उपरोक्त स्थितियों का यह अर्थ भी नहीं है कि आलोच्यकाल मे विधवा स्त्रियां जीवित रहने का सामाजिक धार्मिक अधिकार नहीं रखती थी।[3] किन्तु इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री समाज में सती प्रथा का कलंक विद्यमान था।[4]

सती प्रथा और ब्रिटिश भारत सरकार के प्रयास

भारत के गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज ने सव प्रथम सती प्रथा को समाप्त करने के बारे मे विचार किया था किन्तु राजपूताने के राज्य उदयपुर

---

1 फो पी कन्सलटेशन दिसम्बर 8, 1862 स 130 राजपूताना एजे सी रिकॉर्ड (मेवाड़) 1861-62 भा 3 स 85। एजाबाई पर मेहता गोपालदास भासीन्द रावत खुमाणसिंह, राज्य प्रधान कोठारी केशरसिंह का सामाजिक दबाव रहा था।

2 एनाल्स भा 1 पृ 88-89। धर्माचरणों के प्रभाव का फल था कि वृद्धाएं तक अपने पति के साथ सती हुआ करती थीं।—एनाल्स भा 1 पृ 512

3 राज्य द्वारा विधवाओं और अनाथ स्त्रियों का भरण पोषण किया जाता था, ब रि वही, वि स 1902 (1845 ई) रा म उ वही जनानी। बहू बीकान री और चहुवाणजी री, वि स 1931 (1874 ई)। परिवार के अन्तर्गत उसका यथोचित् पालन एवं माता व अग्रजा के रूप म सम्मान किया जाता था।

4 नानायत जातियों में इसका प्रचलन अधिक नहीं रहा था। केवल परिष्कृत स्त्रियां सती होती थीं।

की ग्राड लेते रहे थे।[1] इसीलिये राणा जवानसिंह के शासनकाल म तत्का-लीन गवनर-जनरल लाड विलियम बैटिक ने मेवाड में व्याप्त कुत्सित तथा ग्रमानवीय सामाजिक प्रथाग्रो को समाप्त करने के लिए एक परामश पत्र लिखा था।[2] किन्तु राज्य के शासन पर सामन्तो के सामाजिक राजनतिक दवाव ग्रौर रुढिवादी सामाजिक वातावरण क फलत इस परामश पर कोई ध्यान नही दिया गया। सन् 1836 मे जवानसिंह क उत्तराधिकारी राणा सरदारसिंह को गवनर जनरल ने याददाश्त खरिता लिखत हुए इगित किया कि ब्रिटिश भारत सरकार ऐसे क्रूर कृत्यों को प्रोत्साहित करने म ग्रविश्वास रखती है ग्रौर इन प्रथाग्रो के पक्षपाती या राज्याध्यक्षो से मित्रता रखना ग्रपमान मानती है।[3] किन्तु राणा सरदारसिंह स्वय इस प्रथा का पक्षपाती था ग्रत उसने ग्राग्ल-पत्रो पर कोई ध्यान नही दिया। 1842 ई म राणा स्वरूपसिंह के सिंहासन बैठने के पश्चात् तत्कालीन पोलिटीकल एजेन्ट कनल सदरलण्ड ने ग्रपनी सरकार से ग्राशा व्यक्त की थी कि नवीन राणा के काल मे सती प्रथा का ग्रन्त हो जायगा।[4] राणा स्वरूप के काल में भी ब्रिटिश भारत सरकार के प्रयत्न सफल नही हो सके क्योकि यह राणा इस प्रथा को समाप्त करना धम विरुद्ध मानता था।[5] इस प्रथा को समाप्त कराने के लिये राणा तथा भारत सरकार के मध्य 1859 ई तक पत्र व्यवहार मे तक-वितक होत रहे थे।[6] ग्रन्त म ग्राग्ल प्रशासन द्वारा मेवाड से सम्ब ध विच्छेद करने का पत्र

---

1 उदयपुर राज्य सती-प्रथा का गढ कहलाता था।—वी वि, पृ 2016

2 फो पो कन्स ग्रगस्त 13, 1832, स 10 20

3 उपरोक्त, दिसम्बर 26, 1838 स 50

4 उपरोक्त ग्रप्रैल 10 1839, स 18

5 वी वि, पृ 2016

6 राणा कभी धम की कभी सामन्तो की कभी जनता की ग्राड लेकर इस प्रश्न को टालता रहा था। 19 दिसम्बर 1845 का खरीता—एजेन्ट यसवी द्वारा राणा को 12 जनवरी 1848 ई का परवाना पोलिटीकल एजेन्ट कनल राबिन्सन को (प्रति वी वि, पृ 2017 एव परिशिष्ट), वी वि, पृ 2031-2038 1846 ई म ग्राग्ल प्रशासन द्वारा खिराज में दो लाख की छूट का ग्रार्थिक प्रलोभन को लेने के पश्चात् भी राणा ने कोई कायवाही नहीं की थी। (ग्रग्रेजी कल्दार रुपये 1 का मूल्य मेवाड के 2½ रुपये के बराबर था।—चारण रामनाथ रत्नू—इतिहास राजस्थान, पृ 2)।

लिखने पर राणा द्वारा निषेधाज्ञा प्रसारित करने की स्वीकृति दी गई थी।[1] किन्तु इसके पश्चात् भी स्त्रियां सती होती रही थीं अत ए जी जी ने राणा राजनैतिक एव व्यक्तिगत मुलाकातें ब द कर दी तब कहीं राणा द्वारा ब द करने के सावजनिक इश्तिहार जारी किय गये थे।[2] इतना होते हुए भी राणा अपनी जीवित अवस्था मे एक ओर इश्तिहार का दिखावा करता रहा और दूसरी ओर सती प्रथा को बढावा देता रहा था।[3] 1862 ई मे राणा स्वरूप के उत्तराधिकारी राणा शम्भुसिंह की अल्पावस्था के शासनकाल मे रिजे सी कौंसिल के अध्यक्ष एव मेवाड पोलिटीकल एजे ट कनल ईडन ने इसे पूणत समाप्त करने के लिय कठोर कदम उठाये। राज्य के सभी पटेल तथा जागीरदारो के नाम आज्ञा पत्र भेज कर लिखा गया कि सती होने देने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व तथा उसका हर्जाना पटेल या जागीरदारो से प्राप्त किया जावेगा।[4] इतने प्रयत्नो के पश्चात् भी सती प्रथा राज्य से समाप्त नहीं की जा सकी थी। राज्य मे कहीं कहीं घटनाए होती रहीं और धार्मिक भीरु प्रवृत्ति के लोग ऐसी सूचनाओ को छुपाते रहे थे[5] कि तु राणा शम्भुसिंह के

---

1 पो क सलटेशन, जून 29, 1846 स 209, राणा के नाम गवनर जनरल का खरीता, मार्च 22, 1858 ई।

2 पो क दिसम्बर, 1860, स 407 411 पाट ए।

3 वो वि पृ 2016 2038। राज्य के विभिन्न स्थानो पर स्त्रियां सती हुई थी जिनमे भदेसर ठाकुर की ठकुरानी असरोडगढ के पुरोहित रामचन्द्र की पत्नी भीडर गाँव की एक स्त्री आदि।—राजपूताना एजे सी रिकाड (जनरल), खण्ड 3, स 43 हिस्टोरिकल रिकाड 22, फाईल 43, 1862 ई सहीवाला, भा 2, पृ 2

4 ब रि—नकल बही वि स 1919 बस्ता 3 महता सग्रामसिंह कलेक्शन—फाईल 767, बस्ता स 34 श्यामलदास कलेक्शन—सती कागजात क्र 1896

5 1864 ई म बगू जागीर की एक स्त्री 1868 ई म सालीदा गाँव की *ब्राह्मणी 1880 ई म बदनोर की राजपूत स्त्री* तथा 1881 ई मे एक अन्य स्त्री सती हुई थी।—पो क दिसम्बर 8 1868 स 20 25 जून 1880, स 166-169, अप्रैल 1881 स 583, राजपूताना एजे सी रिकाड (सती) न 74, श्यामलदास कलेक्शन वि स 1924, पोष सुदि 1 का पत्र, क्र 899

शासन से राज्याश्रय सती होना बिल्कुल बन्द हो गया था।

सती अखरा का जीवन पर प्रभाव

सती होने वाली स्त्री चिता पर जाते समय निषेधात्मक वचन कहती थी, उसे सती-अखरा कहलाया जाता था।[1] यदि स्त्री स्वेच्छा और पति-अनुराग से प्रेरित सती होती तो वह निषेधात्मक वचन के स्थान पर 'आखा' या शुभाशिष प्रदान करती थी। सामाजिक भय और दबाव से प्ररित अनिच्छा वाली सती अखरो का पालन परिवार और समाज द्वारा मानसिक भय के कारण किया जाता था, इसके निम्न उदाहरण तथ्यो की पुष्टि के लिये आवश्यक हैं—

(अ) राणा राजसिंह की चहुवान रानी ने सती होते समय आखरा दी थी कि भविष्य मे कोई बेदला राव अपनी बेटी का विवाह मेवाड राणा के साथ नही कर।[2] यह रानी बेदला राव की बेटी थी और इसे जीवन पयन्त इसकी सास तथा पति ने कष्ट दिया था अन्त म सती भी दबाव के कारण हुई थी। अत अन्त समय में अपने पित परिवार के लिय अखरा बोल गई थी। इसका पालन आलोच्यकाल में होना रहा था।

(ब) शाह मोजीराम बोल्या की पत्नी साकर बाई ने सती होत समय कई अखरा दी थी—इनमें हाथी दात रो चूडो नही पेरणो पील्यो नी ओढनो पर रा पालणा म घर री डोरी काम में नहीं लेणी, मकोडा भात गेणा ही पेहरणो आदि।[3]

*सती अखरों का भय 19 वी शती के पश्चात् भी मानस जीवन मे व्याप*क रूप से फला हुआ रहा था। आलोच्यकालीन 1856 ई का एक पत्र इसका प्रमाण है[4] यथा आपण घर म्हे सती का सरपा रो पण डर है, आग ई सराप हुवा जे आज दिन ताई भुगते हे ।

---

1 टाड—एनाल्स, भा 1, पृ 506, भा 3, पृ 1657

2 वी वि, पृ 1542

3 जावलिया सग्रह—बोल्या वश री विगत (मू प्र) पत्र 6 ग्र।

4 पचोली हरनाथ व ढींकड्या उदयराम का पत्र वि स 1913, भादवा सुदि 9 प्रति—वी वि पृ 2025। आज भी कई परिवारो में सती-अखरा की पालना की जाती है। इस परम्परा का निर्वाह शोध लेखक के परिवार के सदस्यों द्वारा किया जाता है जिसे फाचर री सती-अखरा कहा जाता है।

डाकन प्रथा

आलोच्यकालीन जन जीवन व स्त्रियो के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण का एक अमानवीय पक्ष 'डाकन प्रथा' के रूप में विद्यमान रहा था। उपरोक्त सत् असत् आत्माएँ अतृप्त होने पर जन जीवन को कष्ट पहुँचाने लगती हैं। ऐसी आत्माए यदि पुरुष-शरीर मे प्रवेश करती थीं तो भूत लगना और स्त्री शरीर मे प्रवेश पर चुडैल लगना कहा जाता था। चुडैल-प्रभावित स्त्री को डाकन कहा जाता था। उस डाकन घोषित स्त्री के लिये माना जाता था कि वह समाज के लिये अभिशप्त रहेगी अत उस स्त्री को जीवित जलाकर या उसका सिर काटकर डाकन स्वरूप को समाप्त करने मे समाज को कोई हिचक नही होती थी। यदि डाकन सुप्त गुणों की होती तो उसका निवारण खौलते हुए तेल मे हाथ रखवा कर, वृक्षों पर उलटा लटका कर, मिर्ची के धुए मे धकेल कर, भोपो द्वारा जलती लौह सलाखो से पीट कर किया जाता था।[1] इन अत्याचारो के कारण स्त्री भयभीत होकर या तो डाकन होने का अपराध स्वीकार कर लेती थी अथवा इन यातनाओ को सहन करते हुए मर जाती थी। राज्य द्वारा भी डाकन घोषित स्त्रियों को मत्यु दण्ड दिया जाता रहा था।[2]

डाकन-परीक्षा

डाकन-घोषित स्त्री द्वारा यदि अपराध स्वीकार नही किया जाता तो राज्यनियमानुसार उसे जल परीक्षा देनी पडती थी। इस परीक्षा मे एक थले मे स्त्री को बन्द कर उसके मुह पर टाके लगा दिय जाते थे और दूसरे थैले मे 2½ छाणे (कण्डे या उपले) बन्द कर दोना को गहरे जलाशय या कूप म डाल दिया जाता था। यदि मत्युभय से भयभीत स्त्री दम साधने क कारण जल मे नही डूबती और कण्डे डूब जाते तो स्त्री को डाकन मान लिया जाता

---

1 श्यामलदास कलेक्शन—डाकन-प्रथा सम्बन्धी पत्र क्र 1873-1896, फो पो कसलटेशन जनवरी 1863, स 116-118 वी वि पृ 2039

2 धर्माधिकारियो शासकीय कृपापात्रो या शासक पत्नियो द्वारा क्षमादान की प्राथना करने पर डाकन घोषित स्त्री के सिर के बाल दो चार स्थान स कटवा कर गधे पर बिठाया जाता था। गधे की सवारी को सार गाँव मे घमाया जाता और उसे देश अदर (देश त्याग) की आज्ञा प्रदान की जाती थी।—वी वि पृ उपरोक्त।

था। और यदि कण्डों में पूव स्त्री डूब जाती तो उसे जल से बाहर खींच कर सात्विक स्त्री घोषित किया जाता था। ऐसी स्त्री को राज्य की ओर से साड़ी (ओढनी) पहिना कर ससम्मान घर भेज दिया जाता था। यह स्त्री समाज में निरपराध मानी जाती थी।[2]

ब्रिटिश भारत सरकार की कार्यवाहियां

सवप्रथम 1852 ई मे मेवाड पवतीय अचल के प्रशासनिक सुपरिटन्डेन्ट ने इस अमानवीय कृत्य के प्रति ब्रिटिश भारत प्रशासन का ध्यान दिलाया था।[2] आग्ल सरकार ने इस प्रथा को राज्य मे बन्द कराने के लिये तत्कालीन ए जी जी कनल लो को लिखा, जिसने कि उस पत्र को मेवाड मे राणा को भेज दिया।[3] किन्तु सती-प्रथा के पत्र व्यवहार के जसे ही इस पत्र की भी राणा स्वरूपसिह द्वारा उपेक्षा की गई थी। 1853 ई मे 'मेवाड भील कोर' के एक सनिक द्वारा डाकन सन्देही स्त्री की हत्या पर तत्कालीन ए जी जी हनरी लारेन्स ने राणा एव राज्य के पोलिटीकल एजन्ट जाज लारेंस को लिखा कि यदि राज्य म इस प्रकार की अन्य घटना घटे तो अपराधी को कठोर से कठोर दण्ड द्वारा दण्डित किया जाय।[4] राणा ने भी राज्य मे इस प्रथा को अवैधानिक घोषित करते हुए आदेश-विरोधियो के लिये कठोर दण्ड एव आजीवन कारावास भुगतने की आज्ञा का प्रसारण कर डाकन प्रथा-विरोधी अभियान चलाया।[5]

परिणाम

राणा की इस घोषणा तथा आग्ल प्रशासन की सतकता के उपरान्त भी नवम्बर 1862 ई म माडोल जागीर के बिच्छीवाडा गाव मे दो स्त्रियो पर

---

1 वी वि उपरोक्त।
2 फो पो कन्सलटेशन, फरवरी 16 1853, स 122
3 उपरात्त स 123
4 ब्रुक—हिस्ट्री आफ मेवाड, पृ 53, ए जी जी हेनरी लारेन्स का भारत सरकार के पदस्थापन सचिव जे पी ग्रान्ट को पत्र।—फो पो कन्सलटेशन जनवरी 27 1854 स 157 तथा मेवाड एजेन्ट जाज लारेन्स द्वारा ए जी जी लारेन्स को लिखा पत्र।—उपरोक्त स 158
5 उपरोक्त, स 158 (यह घोषणा 22 अक्तुम्बर 1853 ई को की गई थी) श्यामलदास कलेक्शन।—सती कागजात पत्र क 1873-75

डाकन होने का आरोप लगा कर उनके हाथ खौलते हुए तेल मे रखे गये। इन स्त्रियो म एक की मृत्यु तत्काल हो गई तथा दूसरी जगल मे भाग गई।[1] मेवाड पोलिटीकल एजेन्ट ने यह सूचना प्राप्त कर भाडोल जागीरदार को इस कृत्य के प्रथयाथ आर्थिक दण्ड दिया। किन्तु इसके बाद भी मेवाड के आदिवासी क्षत्रों मे कई घटनाएँ घटती रही थीं।[2] इस प्रथा के अन्धविश्वासों मे भील मीणा जाति के मानस को प्रस्तुत करना आवश्यक है कि इनमे इसके प्रति अविश्वास्था रही थी। 28 जनवरी 1874 ई को मवाड पवताचल पोलिटीकल सुपरिन्टेन्डेन्ट मेजर गनिंग को सूचना प्राप्त हुई कि खेरवाडा से 14 मील दूर पाल तथा जवास नामक स्थान पर एक भील स्त्री की डाकन सन्देह मे हत्या की जा रही है। मेजर तत्काल इस कृत्य का रोकने वहां पहुचा किन्तु भीलो ने गनिंग को उस क्षेत्र मे प्रविष्ट तक नही होने दिया यहा तक कि एक भील ने उसे मारने को तीर चलाया था। गनिंग आत्म रक्षाथ रेजीडेन्सी लौट आया तथा स्त्री जला दी गई। इस घटना के दूसरे वष ही मांडवा तथा बावल मे दो स्त्रियो को जीवित जला दिया गया।[3] इन घटनाओं से रुष्ट हो कर गवनर ने ए जी जी को राणा पर राजनीतिक दबाव डालने को लिखा।[4] तब राणा ने रान्यसेना भेज कर दोषी व्यक्तियो को दण्ड तथा कारावास दिया था। यद्यपि राणा और आग्ल प्रशासनिक कायवाहियो द्वारा समाज मे इस प्रथा का उन्मूलन नही किया जा सका था। किन्तु मानवीय विचारो वाली इस धारा ने डाकनो के प्रति अत्याचारो में कमी अवश्य कर दी थी। 19 वीं शती के अन्तिम काल तक समाज डाकन-भय से त्रस्त रहा था। लोकात्याचार के भय से मुक्त धूत्त स्त्रिया डाकन होने का स्वाग करने लगी थी। श्यामलदास के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि लोकमानस मे रूढिवादी भय व्याप्त होने से धूत्त औरता से बचने के लिए समाज मुह मागी वस्तुएँ प्रदान कर देता था।[5] राणा सज्जनसिंह ने ऐसी

---

1 फो पो कन्सलटेशन जनवरी 1863 स 116 118
2 उपरोक्त सितम्बर 1869, न 72-79। इस पत्र मे सुपरिन्टेन्डेन्ट द्वारा घटना विवरण के साथ ही मेवाड के राणा की उदासीन कायवाहियो के प्रति गवनर जनरल का ध्यान आकर्षित किया गया है।
3 फो पो कन्सलटेशन माच 1874, स 1-3, मेवाड एजन्सी रिपोट, 1875-76 ई।
4 उपरोक्त।
5 वी वि पृ 2040

घत्त औरतो से समाज की रक्षा करने हेतु इनका देश निष्कासन कराना प्रारम्भ किया था। फिर भी डावन भय समाप्त नहीं किया जा सका था।[1]

कन्या वध

उपरोक्त सामाजिक हत्याओं की परम्परा के क्रम मे कन्या को पैदा होते ही समाप्त करने अथवा बाद मे मार डालने की क्रूर प्रथा से आलोच्य-काल ग्रसित रहा था। वैसे मेवाड मे इस क्रूर प्रथा के साथ-साथ कन्या क्रय कर कन्या दान करने की परम्परा भी विद्यमान रही थी।[2] कन्या-वध की परम्परा मराठा कालीन उपज मानी जा सकती है। मराठाओ द्वारा बार-बार किये गये अतिक्रमण और लूट से प्रभावित जनता की आर्थिक स्थिति क्षत-विक्षत हुई थी। इस स्थिति का भार अधिकत राजपूत जाति और सम्पन्न घरानो को ढोना पडा था।[3] इस आर्थिक पतन ने उक्त जाति की सामाजिक प्रतिष्ठा को प्रभावित किया परिणामत पूर्वकालीन सामाजिक-आर्थिक प्रदर्शन और व्यय करने में असमर्थ होते गये। समाज-प्रचलित दहेज और त्याग प्रथा, बहि खाप विवाह एव उच्चोच्च वश-विवाह की परम्परा[4] ने आर्थिक पगु लोगो

---

1 उपरोक्त। डाकन होने का सन्देह अधिकत दलित वर्ग की स्त्रियो पर ही किया जाता था अन्यथा समाज साधारणीकरण के अनुसार अभिजात वर्ग की स्त्रियो मे भी डाकन गुण होने चाहिये थे किन्तु इसका प्रमाण प्राप्त नही होता है।

2 एनाल्स, भा 2 पृ 740-44। कृष्णा कुमारी के अतिरिक्त कन्या वध का प्रमाण मेवाड मे प्राप्त नहीं होता है (एनाल्स भा 1, पृ 539-543) फिर भी मेवाड राज्य इस व्याधि से राजपूताने के अन्य राज्यों के अनुरूप ग्रस्त नहीं रहा था।—जनल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री खण्ड 24, भा 3, पृ 97

3 एम ए शेरिंग ने कन्या वध का कारण मुगल सत्ता का पतन तथा ब्रिटिश नीति को माना है (हिन्दू ट्राइब्स एण्ड कास्टस भा 3 पृ 120) किन्तु मेवाड न तो मुगल जागीरों की आर्थिक अनुदान श्रेणी में रहा था और न ही ब्रिटिश आर्थिक नीति का प्रभाव राज्य के जागीर-दारो की आर्थिक स्थिति पर पडा था अत इसका प्रमुख कारण मराठा अतिक्रमणों से क्षत जागीरों की आर्थिक स्थिति रहा था।

4 1859 ई में सलूम्बर तथा देवगढ नामक प्रथम श्रेणी की जागीरों के जागीरदार की कन्याए उच्चोच्च वश विवाह की परम्परा के कारण

की कन्याओं के विवाहों को विकट बनाना प्रारम्भ कर दिया था। यह सम्पूर्ण कारणावस्था सम्भवत कन्या-वध प्रथा के जन्मदाता रहे थे। मेवाड राज्य म इस प्रथा को समाप्त करने के लिये 1834 ई तथा 1844 ई म अध्यादेश प्रसारित किये गये थे।[1] किन्तु मेवाड एजेन्सी रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि शिशु-वध एव भ्रूण हत्या को रोका नहीं जा सका था। 1876 ई से 1881 ई के मध्य 42 गर्भपात तथा 4 शिशु वध की घटनाओं म दोषी व्यक्तियों को 3 वष की सजा तथा 500 रुपया दण्ड दिया गया था। इन विवरण प्राप्त घटनाओं के मूल म स्त्री-व्यभिचार तथा अवध सतान उत्पन्न करना शिशु हत्या का प्रमुख कारण रहा था।[2] इस स्थिति का सम्बन्ध सामाजिक मनश्चेतना से जुडा हुआ था जो कि आधुनिक काल के समाज म भी देखी जा सकती है।

त्याग-प्रथा

विवाह के अवसर पर राजपूत जाति से चारण भाट ढोली आदि द्वारा त्याग लेने और अन्य द्विज जातियों से कुम्हार, माली भोई आदि जाति द्वारा राह नेग लेने की परम्परा आलोच्यकाल पूव से चली आ रही थी। इसम त्याग प्रथा अधिक व्ययशील रही थी। राजपूत को विवाह के अवसर पर चारणों को मुह मागी दान दक्षिणा देनी पडती थी अन्यथा राजपूत समाज मे उसका सामाजिक उपहास किया जाता था।[3] चारण-मांग की पूर्ति करने

अविवाहित रहा थीं (श्र् क— हिस्ट्री आफ मेवाड, पृ 97) किन्तु उन्होने इस प्रथा को नही अपनाया। व कन्या वध के कट्टर विरोधी रहे थे। किन्तु इस उदाहरण से यह नहीं कहा जा सकता कि राज्य म कन्यावध नही होता था पर इसका प्रतिशत न्यून रहा था।

1 फो पो कन्सलटेशन जनवरी 23 1834 स 16-26 एव नवम्बर 30 1844 स 160

2 राजपूताना एज सी रिपोट 1882 ई (मेवाड) पृ 3

3 कालूराम शर्मा ने वर के पिता द्वारा त्याग किय जान को नही माना है (रा सा आ जी, पृ 126) किन्तु मेवाड में विवाह कोथली बाधन की परम्परानुसार जब बरात कन्या के घर पहुचती है तब कन्या का पिता वर के पिता से विवाह-कोथली का मुह बन्द कर अपन पास ले लेता है तथा अपनी खुल मुह की कोथली दे देता है। अर्थात् जो भी खर्चा हो वह इस खुली कोथली से किया जाय अत यह खर्चा कन्या पक्ष

मे व्यक्ति को असह्य व्यय-भार उठाना पड़ता था। पृष्ठ भाग में उल्लेखित किया गया है कि कन्या वध का एक कारण यह भी था कि कन्या विवाह सामाजिक बोझा था अतः भावी आशंका से त्रस्त कन्या का पिता कन्या को बाल्यावस्था में ही समाप्त कर देते थे। राणा संग्रामसिंह ने कुँवर जगतसिंह की शादी में करणीदान नामक चारण को लाख पसाव का त्याग दिया था।[1] 19 वीं शती के पूर्वार्द्ध में राणा भीमसिंह को ऋण ले कर परिवार के विवाह करने और त्याग देने पड़े थे।[2] जब कि राणा के एक सामन्त सलूम्बर रावत भीमसिंह ने अपनी पुत्रियों के विवाह में लाख पसाव दिया गया था।[3] रावत ने निरन्तर 6 माह तक चारणों में त्याग बाँट कर प्रदर्शित किया कि आर्थिक स्थिति में वह मेवाड़ शासक से भी बढ़ कर है। इस प्रकार के सामाजिक-आर्थिक प्रदर्शन की प्रतिस्पर्धा के कारण 19 वीं शती में त्याग-प्रथा विकृत रूढ़ि के रूप में प्रकट होने लगी थी। अतः राणा सरदारसिंह ने 1844 में और राणा स्वरूपसिंह ने 1855 व 1860 ई में त्याग करने सामाजिक आर्थिक प्रदर्शनों की स्पर्धा रोकने के लिये कई राज्याज्ञाएँ जारी की थीं। इन आज्ञाओं द्वारा चारणों को अन्य राज्य से उदयपुर आने तथा मेवाड़ के चारणों का अन्य राज्यों में त्याग प्राप्त करने के लिये प्रतिबन्ध लगाया गया था।[4] 1888 ई में राजपूताने के ए जी जी कर्नल वाल्टर ने राजपूत जाति के प्रचलित अपव्ययी व्यवहारों तथा अनमेल विवाह को भावना जगाने 'राजपूत हितकारिणी सभा' की स्थापना की

की ओर से लेते हुए भी वर पक्ष द्वारा किया जाता था। मेवाड़ के सूर्यवंशी राजपूत सर्वोच्च राजपूत होने के कारण कन्या या पुत्र के दोनों ही विवाहों पर त्याग स्वयं बाँटते थे जैसे कि रावत भीमसिंह की कन्या-विवाह और राणा भीमसिंह के पुत्र विवाह पर चारण त्याग इसके उदाहरण थे।

1 वी वि पृ 996

2 भीम विलास पद 510-513, पृ 146-147 एनाल्स, भा 1, पृ 521, वी वि पृ 1746, कोटा राज्य का इतिहास भा 2 पृ 504

3 वी वि पृ 1704-1705

4 महता संग्रामसिंह कलेक्शन फाईल न 572, बस्ता 28 श्यामलदास कलेक्शन—त्याग के कागजात वि स 1894 (1837 ई) माघ बुदि 14 का राणा द्वारा प्रसारित पत्र।

थी।[1] सभा की प्रथम बैठक में प्रस्ताव पारित किया गया कि प्रत्येक राज पूत जागीरदार अथवा शासक अपनी वार्षिक आय क 9% से अधिक त्याग नहीं देगा।[2] इस प्रस्ताव को प्रभावी बनाने के लिए वाल्टर ने आग्ल प्रशासन को राज्य मे सतर्क रहने के आदेश प्रदान किये। इस प्रकार की कार्यवाहियों का लाभ राजपूत जाति के साथ अन्य जातियां भी उठाने लगी थीं। इस सुधारक विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त कर सभी जातियो ने जाति समूहो में सामाजिक आर्थिक व्यय का नियन्त्रण करने के लिए जाति विधानों का निर्माण किया।[3] 19 वी सदी के पश्चात् इन सुधार आदोलन के परिणाम स्पष्ट होने लगे थे।

स्त्रियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति का अवलोकन

राणा राजसिंह द्वितीय के काल तक शासक एव अभिजात वर्ग की स्त्रिया पर्दा नही करती थीं[4] किन्तु मर ठा और पठानों के अतिक्रमण काल मे पर्दा किया जाना प्रारम्भ हो गया था। इसका प्रभाव अ य द्विज जातिया पर भी पडा।[5] पर्दा प्रथा के इस काल मे वर्त्ता की अ पायु मे मा बहिनो द्वारा पारिवारिक शासन किया जाता था।[6] निम्न जातियो कृषक, पशुपालक, शिल्प-दस्तकारों एव अछूत जातिया की स्त्रिया अपने पति के आर्थिक कार्यों की सहभाजक रहती थीं। त्यौहार-मेलों व उत्सवो में स्त्री जाति का मुक्त जीवन स्त्रियो को अशकालीन स्वत त्रता प्रदान करता था। स्त्री-

---

1 इसका प्रथम अधिवेशन अजमेर म 5 माच से 10 माच तक चला। इसी मे एक प्रस्ताव द्वारा इसका नाम वाल्टर कृत हितकारिणी सभा रखा गया था।

2 राजपूत हितकारिणी सभा प्रोसिडिंग 1888 ई। इस नियम को 1898 के अधिवेशन म पुन दोहराया गया था।— वार्षिकी सितम्बर 1899, स 168-169

3 वि स 1955, माघ सुदि 7 को पचायत पारित—उदयपुर के ओस वाल जाति के महाजनो का जाति-प्रब ध, शादी-गमी क मौके पर जीमन का कायदा, हुकम महकमाखास, 1900 ई।

4 उ ई, भा 2 पृ 1116-1117

5 राजपूत गांवों म इसका प्रचलन अधिक रहा था।

6 एनाल्स भा 1 पृ 478 479 496 507, 511। शाहपुरा की ख्यात, भा 2 पृ 62 63 (अप्र)।

मर्यादाओं में स्त्री का अकेले घूमना, पर-पुरुषों से मुह फट बातें करना, समाज पचायती कार्यों में दखल देना आदि मुख्य थे।[1] इनका पालन करना स्त्रियों के लिये आवश्यक था। गृहणी स्त्रियो को अपने परिवार के सम्मान को बनाये रखना पड़ता था। पारिवारिक जीवन म स्त्रियो को सामाजिक-आर्थिक कर्त्तव्य अधिक एव अधिकार शून्य रहे थे।

बाझ तथा विधवा स्त्रिया सामाजिक भार मानी जाती थी। उत्तम स्वादिष्ट भोजन, शृ गार एव नाना रगी परिधान पहिनना विधवा के लिये वर्जित था। पक्के रग की हरी, गहरी लाल या काली ओढनी, सफेद छींट या पक्के रग का घाघरा (लहगा), आभूषण विहीन शरीर, बनाये स याम व्रता के यागी गुण विधवा (राडीराड) स्त्री के लिये आवश्यक थे।[2] घर की औरतो से जली कटी सुनते, सौत का उपेक्षित व्यवहार सहत पति के कामेच्छा का साधन, सामाजिक उपहास का जीवन व्यतिता बाझ स्त्रिया तत्कालीन स्त्री समाज का पतनो मुखी स्वरूप प्रकट करती थी।[3] जननी और सती-साध्वी का दृष्टि से आदृत स्त्री समाज का दूसरा रूप परिवाराश्रित और पुरुष जाति की दासी मात्र स्वीकार किया जाता था।

प्रचलित दास दासी प्रथा के अनुसार दास-दासी वशानुगत सेवको के रूप में स्वामी की सेवा करते थे। इन्हें गोला-गोली कहा जाता था।[4] राजपूत जाति एव अभिजात वग की पुत्रियो की शादी मे दहेज के सामान के साथ दास-दासिया देने की परम्परा[5] तत्कालीन मानव जीवन म पशुता का साम्य कराती है। दास जीवन व्यतीत करने वाली दासिया अपने स्वामी की स्वीकृति बगर विवाह नही कर सकती थी। दासी की युवावस्था होने पर स्वामी के सम्मुख उपस्थित किया जाता था। यदि स्वामी को वह पस द आ

1 देवनाथ पुरोहित क्लेक्शन—औरत जात री मुरजाद।

2 वी वि पृ 189

3 जगदेव पुवार री बात (ह प्र), पत्र 2 26, चारता राजा रा कुवरा रा राजलोक री (ह प्र) पत्र 180, ख्यात-बात सग्रह, वी वि पृ 1542

4 फारसी शब्द गुलाम का अपभ्र श।

5 ईशर ग्रथावली (ह प्र) पत्र 13 सदावत सावन गोरी री बात (ह प्र) पत्र 65-68, राजपूताना एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोट (का फीडेशनल), 1874 ई, खबरी न 1, वी वि, पृ 771

जाती तो वह उसे रनिवास (अन्त पुर) में भेज देता था। उसका नाम मात्र का विवाह किसी दास से कर दिया जाता जो कि उसकी वृद्धावस्था या रनिवास से बाहर किय जाने पर विवाहित जीवन व्यतीत करता था। जब तक दासी रनिवास की पड़दायत (पर्देवाली) स्त्रियो में सम्मिलित रहती, उसका पति क साथ कोई सम्ब ध नहीं हो सकता था। स्वामी कृपा अथवा प्रसन्नता के आधार पर दासियों की प्रतिष्ठा घटती और बढ़ती रहती थी, उदाहरणाथ स्वामी द्वारा हाथ पर में स्वर्णाभूषण प्रदान करन के पश्चात् वह पासवान कहलाने लगती थी और उसका सम्मान उपपत्नी के रूप म बढ़ जाता था।[1] इनक पुत्र पुत्रियों का सम्मान स्वामी पुत्र पुत्रियों से कुछ निम्न स्तर पर रहता था। इनकी विवाह शादी धूमधाम स की जाती थी। अ य पड़दायतो को उनकी जाति के अनुसार सम्मान दिया जाता था, जिनम ब्राह्मण, राजपूत और वैश्य पासवान निम्न जाति की पासवानो से अधिक सम्मानित रहती थीं।[2] रनिवास मे सम्मिलित नही की जाने वाली दासिया दावडी कहलाती थी। इनका जीवन मूलत दास जीवन था जि हे कि क्रय-विक्रय किया जा सकता था। टाड के अनुसार मेवाड़ म दास दासियो के साथ स्वामी व्यवहार राजपूताने के अ य स्थाना से अच्छा रहा था, इ हे गृह-सदस्य मानते हुए इनकी सुख सुविधाओ का ध्यान रखा जाता था।[3] इसकी पुष्टि ओझा ने भी की है कि दास दासिया को अपने स्वामियो को छोडन तथा अपनी इच्छानुसार आने-जान की स्वत त्रता थी।[4] कि तु 19 वी शताब्दी के अभिलेख एव साहित्य कृतियो से ज्ञात होता है कि वशानुगत दास-

---

1 शासक की पासवानो को राज्य से अच्छी आय तथा जागीरें प्रदान की जाती थी। स्वामी प्रिय होने के फलत परिवार के प्रशासन में उनका हस्तक्षेप रहता था। दृष्टा त—राणा अरिसिह की पासवान रामप्यारी बाई ने राज्य काय म राणा भीमसिह के शासन तक हस्तक्षेप किया था। राणा भीमसिह की पासवान मोती बाई क पास राज्य की समृद्ध एव उपजाऊ भूमि थी।—एनाल्स, भा 3, पृ 1630 सहीवाला भा 2 पृ 65 भा 3, पृ 11, देवनाथ पुरोहित कलेक्शन—जनानी ड्योढी री बही (स्वरूपसिह कालीन)।

2 एनाल्स, भा 1, पृ 208

3 उ ई, भा 2, पृ 1116

4 उपरोक्त।

दासी स्वामी की सम्पत्ति माने जाते थे।[1] काम पिपासा को तृप्त करने प्रतिष्ठा का दम्भपूर्ण प्रदर्शन करने के लिये स्त्रियों का क्रय विक्रय मेवाड़ में विद्यमान रहा था।[2] पूंजी खरीदती है और कंगाली बेचती है—की परम्परा आलोच्यकाल में मानवी-व्यापार बनी हुई थी।[3]

समाज में बहु विवाह तथा रखैल रखने की सामाजिक रुचि ने स्त्री-

---

1 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन, फाइल 743, बस्ता सं 33, गोले गोलियों का सामाजिक स्थान 18 वीं शती की एक कृति—त्रियाविनोद, पत्र 684 द्वारा स्पष्ट होता है। ईसर ग्रंथावली और बात सग्रह में दासियों का जीवन वेश्याओं के समान बतलाया गया है। यह अपने स्वामी को रिझाने हेतु कोई भी अपराध या अनैतिक कार्य कर सकती थी इसी का प्रभाव था कि अन्य विवाहित रनिवास की स्त्रियां अपनी काम-वासना का साधन गोलों को बनाती थीं।—जगदेव पुंवार री बात (हु प्र) पत्र 28, राणा रजपूत री बात (हु प्र), पत्र 80

2 टाड ने इस क्रय-विक्रय का कारण अकाल एवं अन्य प्राकृतिक विपदा माना है (एनाल्स भा 1, पृ 207)। श्यामलदास भी इसका समर्थन करते हैं (वी वि, पृ 1868)। किन्तु बाहर से औरतों को खरीद कर मगाया जाना इसको स्पष्ट करता है कि इसका एक कारण वासनातृप्ति भी रहा था।—बोल्या वंश री विगत (हु प्र) पत्र 3, वंशावली, क्र 867 (हु प्र) पत्र 37-39

3 महता सग्रामसिंह कलेक्शन, फाइल 743 बस्ता सं 33 के अनुसार भेरजी राजपूत नामक व्यक्ति ने अपनी 11 वर्ष की कन्या को 54 रु कल्दार (110 रु चित्तौड़ी) मूल्य पर भोमा नामक अजमेर रहने वाले व्यक्ति को बेची थी। अन्य उदाहरण—राजपूताना एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट (का फीड-मनल), 1864 ई (स्लेवरी) नं 2, वी वि, पृ 1868। यह प्रथा राणा शम्भूसिंह के काल में कर्नल ईडन द्वारा अवैधानिक घोषित कर दी गई थी, किन्तु मंदिरों में नृत्य गायन के लिये स्त्रियों को बाहर से लाना बंद नहीं हुआ था।—क रि वि सं 1910 11 रोजनामा बही, वि सं 1930-31 हुकुम री बही बस्ता 3 व 4, श्यामलदास कलेक्शन—जगन्नाथजी रे भण्डार रो नामो।

समाज म वैश्यावत्ति को पनपाया था ।[1] यौन व्यभिचारो का वर्णन 19 वीं शता नी की कृतियो 'काणा रजपूत री वात' तथा 'बीजा सोरठ री वात' से प्राप्त होता है कि रनिवास की स्त्रियां कठोर प्रतिब ध के रहते हुए भी स्त्री वेशधारी पुरुषो से व्यभिचार करती थी ।[2] धार्मिक भावना के पृष्ठ मे भी स्त्रियो का अनैतिक व्यापार प्रचलित रहा था। धर्म ध तथा पुत्र प्राप्ति की इच्छा से प्रेरित स्त्रियां मं दिरो क पुजारियो मठाधीशों उपासरो तथा भोपों में फस जाती थी । यद्यपि इसके उदाहरण अधिक प्राप्त नही होते हैं कि तु प्राप्त प्रमाणों में अनैतिक व्यापार के प्रचलन से यह स्पष्ट हो जाता है ।[3] राज्य की ओर से प्रत्येक मं दिर मे गायन और नृत्य निपुण स्त्रिया (भगतण) रखन की स्वीकृति थी । इ ह जीविका हेतु मासिक या दनिक वत्ति दी जाती थी । बक्शीखाना और देवस्थान अभिलेखो से ज्ञात होता है कि मासिक वत्ति का भुगतान आयु अनुभव तथा स्वामी की कृपानुसार 10 रु से 120 रु तक किया जाता था ।[4]

मराठा अतिक्रमण काल मे राज्य द्वारा सहेलियों बडारणो तथा भग तणो से कूटनीतिक काय लिया जाता था । श्यामलदास कलेक्सन मे सग्रहित अभिलेख स्पष्ट करते हैं कि सु दर तथा वाकपटु सहेलिया व बडारणें मराठाओ को खुश करने भेजी जाती थी ।[5] सामाजिक धार्मिक उत्सवो पर सावजनिक नत्य करने मेहमानो की आवभगत करन उ ह खुश करने तथा दरबारी नृत्य करने के लिए भगतणें रा याश्रय मे रहती थी ।[6] राज-दरबार

---

1 सदावछ सांवलगोरी री वात, बीजा सोरठ री वात, काणा रजपूत री वात से उद्ध त ।

2 काणा रजपूत री वात, पत्र 92, बीजा सोरठ री वात, पत्र 59

3 सहीकी पद 12-13, मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन फाइल 577-600 बस्ता स 29

4 रा रा अ बी, वि स 1827 (1770 ई) जगन्नाथ रे भण्डार रो खच बस्ता 27, ब रि उ—पावणी बही वि स 1930 (1873 ई) तथा दुकुर री बही वि स 1931 (1874 ई) बस्ता 4 ।

5 श्यामलदास कलेक्शन—बडारणी क पत्र वि स 1819 तथा 1864, क्र 1024-1025

6 पुरोहित देवनाथ कलेक्शन—गणगोर री सवारी रो वहिडो, एनाल्स, भा 1, पृ 550

के सामन्त और अधिकारी निज स्वार्थों की पूर्ति हेतु इनका व्यक्तिगत प्रयोग भी करते थे।

अन्तत 18 19 वी शताब्दी के मेवाड म स्त्री शिक्षा का अधिक प्रचलन नही होने के कारण स्त्री समाज अशिक्षित रहा था। इसीका परिणाम था कि स्त्रियों में स्त्री वग चेतना व्याप्त नही थी। यद्यपि अभिजात वग की लडकियां पढ़ना-लिखना जानती थी किन्तु उनकी शिक्षा मात्र मनोरजनात्मक रहती थी। साधारण वग की स्त्रिया गृहस्थ तथा व्यावहारिक ज्ञान और व्यवसायात्मक प्रायोगिक ज्ञान के अतिरिक्त अधविश्वासो और रूढ़िया के ज्ञान से वजित रही थीं।

परिशिष्ट 2

राणा का रुक्का कनल राबिन्स को—12 जनवरी 1848 ई

राजस्थान मु ड्री राज की बात ठेठ डी जुदी है, अर अठे तो धरम परायमु हानी आव है अर अपण पती का उघारवा वासत होव ह और साहेब सास्त्र मुरजाद की सीप है सो सासत्रम्हे सती होवा को धरम लिख्या हे ज्याकी नकला मेली हे सो पढता से मालुम होगा।

राणा का खरीता जाज लारेन्स को—1855 ई

.. आपको पत्र (14 अप्रेल 1855 ई) को लिख्यो आयो समाचार मालम हुवा, साहेब लपी के भरोसा हे सती का होणा मोकुफ करे, और आप बार बार फरमाते हे, के सरदार हुमारे केणे म्हे नही हीस वासते हुकम जारी करणे मे देर ह सो मुनासब हे के इस्तहार डीलाके मे जारो फरमावे अर अब जो के कोतनामा बण गया है, सो आप सरब सरदारकु सुनाई सती का करे, अलबत येसही काम आपके हुकम से वारने होण अर ज्यो हुकम उपरात अमल मे लावेगा तो वो मुजरम सीरकार गीणा जावगा सो तो ठीक पण आगे डाकण भोपा ताबे लख्या माफक इीसतहार गया सो अदुल हुकमवाला बतराक सीरदार रसीद भी नही लपी अर जेल्या भी नही सो आगे ईीतला करीही, जीसु मुनासब तो या हे, के सब सीरदार ने पगा लगाय हुकम अ अमल करावे जदी हुकम दे सला मीलाये पकी कर लप दा, क्योक अबारू कर देवा मे ज्यो सीरदार अठाकी मुरजीम्ह हे ज्या प्रे दोसण काडेगा, जीसु अठे तो साहेब को सलाह मजुरहीहे, सो रूबरू थाने हुकम देर लवा तो ठीक हे और साहेब की पुसीकी पबर सासता लपवो करोगा, सवत 1911 वर्षे वैसाप सुद 13 भोमे

अध्याय 6

ग्रामीण एव नगरीय क्षेत्रो मे जन-जीवन

बसाव एव उनकी आवासीय व्यवस्था सामुदायिक जीवन क्रम उत्सव व मेलो म लोगो का मानसिक उल्लास, रहन सहन, खान पान इत्यादि समाज की सांस्कृतिक प्रक्रियाओ के साथ साथ जन जीवन सामाजिक आर्थिक स्तरीकरण तथा सामाजिक क्रियाओ के वस्तुनिष्ठ पक्ष को प्रस्तुत करत हैं। अध्ययन काल के अन्तगत मेवाड की 92 8% जनसख्या गावो म रहती थी।[1] अत मेवाड का बसाव गांवो में मुख्य रूप से[2] 18 19 वी शताब्दी के प्राप्त पुरालेख और पुस्तक प्रमाणो मे[3] ग्रामीण बस्तिया का विभिन्न सज्ञाए उल्लखित की गई हैं। इनम कई गाव तत्स्थान की भौगोलिक स्थिति के द्वारा और कई बहुसख्यक जाति के निवास होने के कारण उसी नाम से पुकारे जाते थे यथा—अम्बा (आम) वालो गाम मगरा वाला (पहाड पर स्थित) गाम गायरियावास, बामणिया आदि। कई गाव विशिष्ट जाति निवास की स्थिति को प्रकट करने वाले रहे थे, जसे कि भील मीणा तथा ग्रासियो की व य बस्तियो को 'फला', राजपूत जागीरदार के भाई-बान्धव की बस्तियो का 'बस्सी', आबाई और गुर्जर जातियों की बस्ती को हवाला' रबारियो की बस्ती को 'ढाणी' कहा जाता था। इसी प्रकार मूल गाव से एक दो मील दूर खेतो म अवस्थित 5-15 घरो की बस्ती को खेडा' अथवा 'मफरा[4] और

1 मेवाड रेजोड सी, खण्ड II बी, पृ 13

2 वि स 1749 (1693 ई) माघ सुदि 5 का आलेख एनाल्स, भा 2 पृ 645, उपरोक्त, खण्ड I ए पृ 32-33

3 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन वि स 1884 (1827 ई) की भीमशाही हिसाब बही (266), वि स 1899 (1842 ई) की हिसाब बही (224), बस्ता 19, 14, बख्शीखाना रिकार्ड—वि स 1901 (1844 ई) की परगना बही, वि स 1907 (1850 ई) की पट्टा बही, वि स 1926 (1869 ई) की पट्टा बही आदि बस्ता 1, 2, 3, एनाल्स, भा 3, पृ 1629, वी वि, पृ 1940, 2004

4 किसी कृषक विशप के परिवार द्वारा खेतो में आवास करते रहने के

गांव के निकट खेता म अवस्थित भिन्न भिन्न पारिवारिक बस्तियों को भागल[1] कहा जाता था। तत्कालीन गांवो की रचनात्मक स्थिति आधुनिक गांवों के सदृश्य रचित न होने एव अव्यवस्थित होने[2] के कारण इनका विस्तृत विवेचन यहा समयुक्त नहीं होगा। अत अब मेवाड राज्य के प्रथम श्रेणी के जागीर-मुख्यालयों, परगना अथवा जिला मुख्यालयो, ग्राम्य-मंडियो तथा हटवाडो (क्रय विक्रय के स्थान) और मुख्य धार्मिक स्थानो का[3] वृहत् ग्राम्य की श्रेणी म[4] विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सकता है।

पश्चात् उसकी 6-7 पीढ़ी के अलग अलग कौटुम्बिक घरों का समूह मूल गांव का खेडा या मझरा कहलाता था टॉड ने इन्हें पुरवा लिखा है (एनाल्स, भा 3 पृ 1629)। आधुनिक काल के राजस्व रिकॉर्डों म भी इसी प्रकार मूल गांव से दूरस्थ 15 20 घरा की बस्ती को मूल गांव के राजस्व आलेख में दर्ज किया जाता है।

1 भागल का शाब्दिक अर्थ द्वार से है। यह द्वार के अन्दर एक वश के एक या अनेक परिवारो का निवास होता है। गांवो म एक ही परिवार के विभिन्न सदस्यो की बस्ती को भागल कहत हैं, जस भोपा की भागल, चन्दाना की भागल आदि (सन्सज 1971, राजस्थान, उदयपुर डिस्ट्रिक्ट, एपेन्डिक्स I पृ 2-5)। नगर म भागल का प्रयोग पारिवारिक पोल (द्वार) के रूप मे होता था उदाहरणत महताओ की पोल, भगतणो की पोल, सुथारो की पोल, कोठारियों की पोल आदि।

2 एनाल्स, भा 2 पृ 811

3 धार्मिक स्थलो पर धार्मिक दर्शन हेतु यात्रियो के निरन्तर आवागमन के फलत ऐसी बस्तियो का स्थापन स्वत वृहत् ग्राम की श्रेणी में हो जाता था।

4 19 वीं शताब्दी के अन्तिम दशक की बस्तो गणना के अनुसार मेवाड राज्य में कस्बो की सख्या 14 लिखी गई है (मेवाड रेजीडेन्सी, खण्ड II ए पृ 32 89-111)। यह गणना ब्रिटिश भारत सरकार की गणना नीति के अनन्तर उल्लेखित की गई थी, जिसमें राजस्व-वसूली का मौजा (प्रथम स्तर) तथा 5 हजार स निम्न आबादी वाले स्थान को गांव 5 हजार से ऊपर तथा 10 हजार स निम्न आबादी वाले स्थान जिनम छावनी म्यूनिसीपेलिटी तथा 3/4 जनसख्या कृषि रहित को कस्बा तथा औद्योगिक बस्तियो को शहर की श्रेणी मे रखा गया था

वृहत ग्राम

बसाव की दृष्टि से वहत्-ग्राम बसाव को तीन मुख्य भागो मे बाटा जा सकता है (अ) मुख्य जागीर ठिकाने के मुख्यालय गाव (ब) धार्मिक स्थान व्यवसाय केन्द्र तथा जिला मुख्यालय केन्द्र (स) ग्राम नगर बस्ती। इन तीनो ही प्रकार के ग्राम वहत्-ग्राम इसीलिए कहलाते थे क्योकि इन ग्रामो की जनसख्या अधिक थी, सुविधाएँ अधिक थीं और कालान्तर म इनके नगर के बनने की सभावना अधिक थी।

18 वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे मुख्य जागीर ठिकानो के गांवों की सख्या त्मक स्थिति 16 रही थी जिनकी सख्यात्मक वद्धि होते हुए 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक 24 हो गई थी।[1] इन ठिकानो की बस्तियो क चारों ओर जन जीवन की सुरक्षा हेतु परकोटे बने हुए थे। इन परकोटो म यथा स्थान आवागमन के दरवाजे बने होते थे जहा जागीर सनिको का पहरा रहता था। इन परकोटों के बाहर गांव के खेत-खलियान होते थे। द्वितीय प्रकार के वृहत् ग्रामों मे धार्मिक स्थान, व्यवसाय के केन्द्र तथा जिला-मुख्यालय रहे थे।

(उद्धत—राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर—भीलवाडा, पृ 94) किन्तु आलोच्यकालीन ग्राम एव नगर बोध की अवधारणा के अनुसार 18 वी शती के पूर्वार्द्ध तक नागदा और गोगुन्दा जसे आधुनिक गाँवा को नगर और 19 वी शती के उत्तरार्द्ध म झाडोल को नगर तथा उदयपुर को गाँव कहे जाने के उल्लेख प्राप्त होत हैं (वी वि पृ 1669, 1770-1790, 2129-2138, श्लोक 7 एव 9)। टाड ने अपनी पुस्तक मे राशमी आकोला तथा डूगला जसे आधुनिक गाँवों को कस्बा लिखा है (एनाल्स, भा 1, पृ 237, 240, भा 2 पृ 646)। अत उपरोक्त स्थितियो से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन मेवाड म नगर, ग्राम एव कस्बा की कोई निश्चित धारणा नही थी। सभी स्थान खेता के मध्य तथा मुख्यतया कृषि उपज पर आधारित होने के कारण गाँवो का श्रेणी मे अवस्थित रहे थ परन्तु जिला मुख्यालय जागीर-मुख्यालय तथा ग्राम्य आर्थिकी के पूर्ति माध्यमा को वहत्-ग्रामों की सज्ञा मे रखना तत्कालीन अवधारणा के अनुरूप तथा बस्ती वर्गीकरण म गाँव व वहत् गाँव को स्पष्टत आधुनिक गाँव व कस्बा स्तरीकरण म स्थित कर सकगा।

1 जागीरों को राणा द्वारा बढाया जा सकता था, द्रष्टव्य—सामन्तशाही प्रकरण।

इन ग्रामों की 19 वीं शती के उत्तरार्द्ध तक कुल संख्या 21 रही थी।[1] इनमें चित्तौड़गढ़ कुंभलगढ़ माण्डलगढ़ आदि सैन्य सुरक्षात्मक स्थिति लिये पहाड़ों पर बसे हुए वृहत् ग्राम थे। प्रत्येक वृहत् ग्राम की मुख्य विशेषता उसके पास नदी या तालाब का होना था। वृहत् ग्रामों की आन्तरिक संरचना में वाणिज्य-व्यवसाय हेतु हाट (बाजार) बने होते थे जहां आसपास के क्षेत्रिय ग्रामीण अपनी आर्थिक आवश्यकता का लेन देन करते थे।[2] 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कच्चे और पक्के मार्गों के विकास स्वरूप यातायात में प्रगति होने लगी थी। इसके कारण गुलाबपुरा, हम्मीरगढ़, कपासन आदि गावों को रेल-यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध होने लग गई थी। अतः परिवहन की सुविधा ने इन ग्रामों को अनाज-मण्डियों के प्रमुख स्थानों में प्रस्थापित कर दिया था।

ग्राम्य नगर बस्ती

बस्ती रचना की तृतीय श्रेणी में ग्राम्यावरण से अभिसिक्त उदयपुर और भीलवाड़ा नामक स्थान ग्राम्य नगर रहे थे। यह दोनों स्थान राज्य के उद्योग वाणिज्य एवं व्यापार के प्रमुख केन्द्र तथा शासन की प्रशासनिक इकाइयों में मुख्यतम स्थान थे।[3] उदयपुर इस श्रेणी में राज्य की राजधानी रहा था। दोनों बस्तियों की जनसंख्या 18 वीं शताब्दी में 10 हजार से उपर रही थी जो कि निरन्तर बढ़ते हुए 19 वीं शताब्दी के उत्तरकाल में क्रमशः 45,976 और 10 346 हो गई थी।[4] जनसंख्यात्मक वृद्धि का कारण इन स्थानों का व्यापार एवं व्यवसाय की दृष्टि से महत्त्व ग्रहण करना रहा था।

---

1 सादड़ी मारण, राश्मी, राजनगर माण्डलगढ़ देलवाड़ा (कुम्भलगढ़) खमनोर कपासन, हुरड़ा जहाजपुर, चित्तौड़गढ़, छोटी सादड़ी, माण्डलपुर नाथद्वारा, ऋषभदेव कांकरोली कोटड़ा, खेवाड़ा (छावनी) हमीरगढ़ गुलाबपुरा आदि।— एनाल्स, भा 2, पृ 769 776, भा 3, पृ 1716-1732, मेवाड़ रेजीडेन्सी पृ 89 122

2 एनाल्स—उपरोक्त।

3 उपरोक्त भा 1, पृ 560 61, भा 2 पृ 908, भा 3 पृ 1736-37, मेवाड़ रेजीडेन्सी, पृ 97-98, 107-110

4 उपरोक्त।

निष्कर्षतः आलोच्यकालीन मेवाड़ के जन जीवन की सभी बस्तियां ग्राम्य-वातावरण से प्रभावित ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति से लिप्त थी। प्रत्येक बस्ती का आर्थिक जीवन उसके आसपास खड़ खेतो के उत्पादन पर निर्भर करता था। मग्र दाम में रहने वाले भील, मीणा आदि की आदिवासी बस्तियों का जीवन भी अधिकतर वालरा (वल्लर) खेती की उपज तथा वन्योत्पन्न प्राकृतिक खाद्य पर निर्भर रहता था।[1]

बस्तियों में जाति समाज का प्रभाव

बस्तियो की आवासन व्यवस्था म जातिवादी भावना विद्यमान रही थी। बस्तियो के विभिन्न मानचित्रों के अध्ययन एव अवलोकन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि द्विज जातियो की आवास व्यवस्था गांव या नगर के केन्द्राभिमुख रहती थी, वहां निम्न एव हरिजन जातियो के आवासो की स्थिति विकेन्द्राभिमुखी होती थी। शिल्पी, दस्तकार, कृषक व पशुपालक और सेवक जातियों का आवास स्थान उपरोक्त दोनो समूहो के मध्य वृत्ताकार रूप म स्थिर रहता था।

बस्ती को बहुसख्यक जाति के निवास आधार पर पहिचाना जाता था उदाहरणत बामणिया पाणेरियो की मादडी सदाणा रो खेडो, गायरियावास आदि। शासन द्वारा किसी व्यक्ति को भूमि अनुदान करने पर कालान्तर म वह बस्ती भागन या गांव अहिता व्यक्ति के नाम से उद्बोधित होने लगती थी, जैसे—गजसिंह जो री भागल अमरपुरा, भगवान दां कला आदि।[2] बस्तियो के अन्तर्गत अवस्थित मुहल्लो की आवास यवस्था म भी जातिगत

---

1 मेवाड रजीडेन्सी—उपरोक्त, पृ 32, उ ई, भा 1, पृ 9, भारतीय सामन्तवाद पृ 43। ऐसी खेती के लिये जगल क पेड पौधो को काट कर जलाया जाता है और जले हुए खाद म बीज छिडककर छोड दिये जाते है। वर्षा के जल से सिंचित उत्पन्न वल्लर-उपज' द्वारा आदिवासी लाग वपपयन्त जीविका चलाते हैं। यह खेती आधुनिक काल म भी भीलो द्वारा की जाती है। भील लोग इसके लिये अभी भी जगल जला कर देवो मा यता करते हैं कि व य-उत्पान्न द्वारा सुखी रखें।

2 व रि—सावत रो बहिडो, वि स 1902 बस्ता 3, सेन्सेज रिपोर्ट (1961) राज सिरीज 18, भा 10 ए तथा बी।

भावना विद्यमान रहती थी।[1] परिणामत जाति एव व्यवसायो के आधारो पर मुहल्लो का विकास होता था। एक मुहल्ले मे एक ही प्रकार की जाति या व्यवसाय करने वाले लोगो का प्रभुत्व रहता था।[2]

ग्राम बस्तियों की गृह व्यवस्था

गांवो में घर उनकी छत-निर्माण के अनुसार चार प्रकार से वर्गीकृत थे। पत्थर की पट्टियो की छत वाले मकान 'पक्के घर' कहलाते थे। इनकी दीवारें भी चूने और पत्थर की बनी हुई होती थीं।[3] द्वितीय प्रकार के मकानो में चूने व पत्थर से बनी दीवारो पर केलु खपरेल की छत वाल घरो को घर केलूवट-पक्का' तथा मिट्टी से बनी हुई दीवारों पर केलू की छत वाले घर केलूवट-कच्चा' कहलाते थे।[4] तृतीय श्रेणी वाले घास फूस से ढके हुए मिट्टी के मकानों को घर कच्चा फूस' तथा चतुथ श्रेणी बांस या लकड़ी की दीवारों से बना घर 'झू पी' कहे जाते थे।[5] भील जाति की बस्तियो मे बनी ऐसी झू पियां टापरा' और मीणा-मेर की झू पियां 'माढा' कहलाती थी।[6]

---

1 इस व्यवस्था को बनाये रखने में तत्कालीन आवासीय भू अनुदान व्यवस्था का मुख्य योगदान था। वि स 1781 श्रावण वदि 6 का राणा सग्रामसिंह द्वितीय कालीन सुरह लेख (प्रति द्रष्टव्य—परिशिष्ट) स्पष्ट करता है कि राय श्री निवास की ब्रह्मपुरी के ब्राह्मण अपने घर तथा इस क्षेत्र की भूमि को ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जाति को विक्रय करने के लिए शासकीय आदेश से प्रतिबद्ध थे। इसी प्रकार का एक सुरह आदेश उदयपुर में कई स्थानों पर लगे हुए हैं।—घण्टाघर के माग पर लगा स्तम्भ लेख वि स 1908 (अप्र) द्रष्टव्य है।

2 उदयपुर गजल छद 34-66, उदयपुर वर्णन छद 41-44, भीम विलास पृ 213-15, इण्डिया एण्ड इट्स नेटिव प्रिंसेज (ट्रेवल्स इन सेंट्रल इण्डिया) पृ 161

3 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन फाइल 181 220, बस्ता 13, राजस्थान विलेज पृ 20

4 उपरोक्त।

5 उपरोक्त एनाल्स, भा 3, पृ 1654

6 बी वि, पृ 191 1953 मेवाड़ रेजीडेन्सी पृ 39-40, जी मोरीस कारस्टेईस—ए स्टडी ऑफ भील ऑफ वेस्टन उदयपुर पृ 67-68

यह आदिवासी जातियां मालोच्यकाल में उपद्रवी तथा लड़ाकू गुणों से युक्त थीं अत अपनी बस्तियों को आक्रमण स्थिति से सुरक्षित रखने हेतु इनके घरों की स्थिति सुरक्षात्मक भावना से प्रेरित होती थी। इनका निर्माण पहाड़ियों के मध्य अथवा जगल से आवृत ऊँचे ऊँचे डूगरों पर किया जाता था। यह झूपियां तीन ओर से थूर कही जाने वाली कांटो की बाड़ से तथा पृष्ठ म पहाड़ का भाग या अन्य झाड़ियों के घेरे में बनाई जाती थीं।[1] इनकी छत 6 फीट स अधिक ऊँची नहीं होती थी। यह अधिकतर एक कक्षीय-झोंपी थी जिनम खिड़की और रोशनदान की कोई व्यवस्था नहीं रखी जाती थी। मैदान और पठारीय भू प्रदेशों मे बने हुए ऐसे टापरों के बाहर बाड़े के अन्दर डागली' बनी रहती थी। इन डागलियों म रात्रिकालीन बैठ कर खेतों की फसल की चौकसी की जाती थी।[2] गांवो में मकान व्यवसाया-नुरूप तथा सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों से प्रेरित बने हुए थे। अछूत जातियों के मकान गांव से बाहर कच्चे घास की छत वाले एक कक्षीय होते थे। यह मकान भी टापरो जैसी ही व्यवस्था पर निर्मित किये जाते थे जिनम कि साफ हवा के आने का कोई प्रबन्ध नहीं होता था।[3] ऐसे मकानों का निर्माण स्वय गृह स्वामी व उसके परिवार द्वारा कर लिया जाता था। इनके निर्माण मे कोई मजदूरी की आवश्यकता नहीं होती थी। किन्तु किसानों और दस्तकारो को अपने मकान को बनवाने मे कुम्हार खाती, लुहार की आवश्यकता पडता थी। इन लोगों का पारिश्रमिक फसल पर जिन्सो म चुकाया जाता था। मकानो मे दो या तीन ओवरा (कक्ष) बने रहते थे, जिनके आगे ढालिया (बरामदा) बना होता था। गोबर और मिट्टी स बने इन मकानो की छत केलू खपरेल की रहती थी।[4] इन ओवरो के आगे बड़ा खुला चौक और पोल बनी होती थी। इस चौक मे किसानो के पशु बाधने बलगाड़ी और कृषिपयोगी सामान रखने का स्थान बना रहता था। पोल के अन्दर एक तरफ कक्ष अथवा चबूतरा बना रहता था जहां मेहमानो को

---

1 वी वि पृ 191 1953, ए स्टडी आफ भील विलज ऑफ वेस्टन उदयपुर पृ 67 68, सेन्सेज रिपोर्ट (1961) राजस्थान 18 भा 6 ए पृ 7 8 सो ला मी रा, पृ 36 37

2 सदाव्रत सांवलगोरी री वात पद 40-45 पत्र 5 6

3 एनाल्स भा 2 पृ 811 राजस्थान विलेज, पृ 22-23

4 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन—खानासुमारी बही वि स 1914 (1857 ई) सावण वदि 1 (220), बस्ता 13

ठहराया जाता था। पोल के बाहर दोनों ओर 1 फीट से $1\frac{1}{2}$ फीट ऊँची चबूतरी अथवा 3-$3\frac{1}{2}$ फीट ऊँचा चबूतरा बनाया जाता था। इसका प्रयोग दैनिक मिलने जुलने वालों से वार्तालाप के लिये अथवा सामाजिक उत्सवों पर जाति-पंचायतों की बैठकों के लिए होता था।[1] किसानों की पोल का माप 6-7 फीट चौड़ा होता था जिसके कारण बैलगाड़ी आसानी से अन्दर आ-जा सकती थी। दस्तकार जातियों में कुम्हार सुथार लुहार शिल्पी जातियों में सोनी, झीणगर सिकलीगर सेवक जातियों में तेली, बारी आदि अपने मकान की पोल में अपना व्यवसाय करते थे। अतः इन जातियों के मकानों की पोल कर्मशाला का कार्य करती थी। कृषिकारी, पशुपालक शिल्पी दस्तकार तथा निम्न जातियों में अधिकतर पर्दाप्रथा का प्रचलन नहीं होने के कारण इनके मकान खुले हुए और सपाट होते थे। इनकी पोलों से सम्पूर्ण गृह दृश्य का अवलोकन किया जा सकता था।[2] इन मकानों में प्रकाश और हवा के लिये बखारे (बड़े छेद) बने होते थे। वैसे भी इनका निर्माण खुले हुए चौपाड के रूप में होने के कारण इनकी स्थिति स्वास्थ्यानुकूल होती थी। पशु बांधने उनके खाद को एकत्रित करने और घास रखने वाले स्थान को 'बाड़ा' कहा जाता था। यदि इन बाड़ों में मकान बना हुआ रहता तो उसे नोहरा कहा जाता था। यह स्थान सामाजिक उत्सवों तथा संस्कारों पर दिये जाने वाले जातिभोज एवं न्यातमेलों की व्यवस्था हेतु भी प्रयोग में लिये जाते थे।[3]

ब्राह्मण राजपूत और महाजनों के ग्राम्य-घरों की बनावट उपरोक्त घरों की आकृति विन्यास से भिन्न रहती थी। इन द्विज जातियों में पर्दा प्रथा प्रचलित होने के कारण मकान के मुख्य द्वार सम्मुख दीवार का अवरोध (ओटा) किया जाता था। अच्छी आर्थिक अवस्था वाले द्विज परिवारों में पक्के मकान भी बनाये जाते थे किन्तु उनकी छत खपरैल की रहती थी। ऐसे

---

1 यह परम्परा वर्तमान काल में भी विद्यमान है जिसका परम्परागत स्वरूप प्रालोच्यकाल से चला आ रहा है।

2 जो मोगीस कारस्टेर्स—ए विलेज इन राजस्थान पृ 36 37, राजस्थान विलेज पृ 21-22। खरोदा माहोली कपासन बड़ी सादड़ी आदि गाँवों में आज भी इस शैली का अवलोकन किया जा सकता है।

3 बात संग्रह, ग्रं क्र 512, काणा राजपूत री बात, पत्र 68, बारता गाम रा धणी री, पत्र 106

दस्तकारो द्वारा काम मे लिये जाने वाले औजारो का निर्माण स्वय दस्तकार अथवा गाडुलिया लुहार द्वारा तयार किये जात थ । इसी प्रकार घर में देवी देवताओं की मिट्टी से बनी मूर्तियां, धुपदान, भपारे प्रयोग मे लिय जाते थे । घर को सजाने के लिये गह-औरतों द्वारा दीवारो दरवाजो तथा फश पर चित्राम बनाये जाते थे । इन चित्रामो म लोक-कला के दशन तथा लोक-मानस की प्रकृति-चित्रण के प्रति रुचि का प्रदशन होता था ।[1]

बृहत् गांव तथा ग्राम्य नगर

ग्राम्य नगर और वहत् गावो की आवासाकृति म अत्यधिक अ तर नही था । जैसा कि स्पष्ट किया गया कि प्रथम श्रेणी के जागीरदारी ठिकानो के गाव भी परकोटो से आबद्ध रह थ उसी प्रकार उदयपुर भी परकोटो मे बसा हुआ था । भीण्डर, सलूम्बर बडी सादडी बनडा जस धरातली गावो की आलोच्यकालीन अनुकृति का अध्ययन एव अवलोकन आज भी किया जा सकता है । इनसे हट कर पहाडो पर बसे गांवो में चित्तौड, कुम्भलगढ़ हमीरगढ माडलगढ़ आमगढ़ की गढावस्था आज भी वसी ही है । अत इन सभी पहाडी-पठारीय और मदानी गाँवो का विवेचन ग्राम्य नगर उदयपुर के सदभ मे करेंगे ।

ग्राम्य नगर एव वहत् गाव क निर्माण तथा आवास की प्रमुख विशेषता

---

1 जयचन्द्र कृत सहीवी पद 13 14, मवाड की लोककला म माडणो की *परम्परा—लोककला मण्डल उदयपुर के सग्रहालय से उद्धत ।* कनल टॉड के वणन (एनाल्स भा 2 पृ 757-58) से लगता है कि मवाड मे वीरता के अतिरिक्त लालित्य का नाम निशान नही था उसके अनुसार गह सज्जा म शूरता के दशन होते थे । इसके लिए कहा जा सकता है कि इस वणन का उद्देश्य मेवाड की शूर-कला का प्रदशन मात्र था क्योंकि वह राजपूत जाति का भक्त रहा था (पो क्र 2 मई 1823 न 15) । वह स्वय वीर था अत मनोवज्ञानिक दृष्टि से उसका दृष्टिकोण एक पक्षीय रहा था । अत उसका वणन सम्पूण जन जावन की कला अभिव्यक्त नहीं करता है । राजपूत यद्यपि सादगी पसन्द और वीरात्मक प्रवत्ति के प्रदर्शी रहे थे किन्तु इसके साथ साथ व कला क प्रति भी उसी प्रकार जागरूक रहे थे, इस स्थिति का दृष्टा त हम सरदारगढ के किल में बनी हुई चीनी की चित्रशाली द्वारा प्राप्त होता है जो कि मराठा अतिक्रमण काल म निर्मित हुई थी ।

परकोटो के साथ तालाब, बाग एव मन्दिरो का बना होना था। प्रत्येक ऐसी बस्तियो में एक से तीन तक न्यूनतम जलाशय बने हुए थे, उदाहरणार्थ—बडी सादडी मे एक तालाब, भीण्डर मे तीन तालाब, एव उदयपुर मे एक विशाल तालाब बना हुआ था। प्रत्येक स्थान पर साम त विहार हेतु एव उनके कृपा पात्रो के आमोद-प्रमोद के लिये बाग एव वाडिया बनी हुई थी। इनका उपभोग साधारण जन के लिये वर्जित रहता था। अनुदान पत्रो म भूमि के साथ-साथ राणा या अनुदाता द्वारा विशेष कृपा और सम्मान के रूप मे बाडी या बाग प्रदान किये जाने की परम्परा प्रचलित रही थी।[1] इन बस्तियो मे विभिन्न जातियो के जातिगत मन्दिरो[2] के अतिरिक्त शासक, सामन्त तथा सम्पन्न व्यक्तियो के मन्दिर बने हुए थ।[3] प्रत्येक चारे या चोहट (चोराहे) पर मन्दिरो की स्थिति[4] स्पष्ट करती है कि तत्कालीन जन जीवन मे धम के प्रति अनन्य श्रद्धा व्याप्त रही थी। सामाजिक आर्थिक जीवन की दृष्टि मे भी मन्दिरो का विशिष्ट महत्त्व रहा था।

मन्दिरों का सामाजिक आर्थिक जीवन पर प्रभाव

आलोच्यकालीन समाज मे धम और अधम की भावना दोनों ही विद्यमान थी। अभिजात वग से निम्नतम वग के लोग मन्दिरों और देवरो म देवी-देवताओं में विश्वास रखते थे। मन्दिर अथवा देवरा बनवाना पुण्याथ का काय माना जाता था। निम्न जातियो द्वारा निर्मित किये गये मन्दिर और देवरो का लिखित विवरण प्राप्त नही होने की अवस्था मे सेत्रावलोकन क अभिष्ट प्रमाणों द्वारा पुष्ट किया जा सकता है कि अध्ययनकाल में उनके द्वारा

---

1 राणा सग्रामसिह द्वितीय का रावल सारगदेव के नाम पर्वाना, वि स 1788 भादवा वीद 5 (1731 ई), सो सा मी रा, पृ 59 टिप्पणी 127, उदयपुर गजल पद 44, एनाल्स भा 1, पृ 237, पट्टा स 10 पृ 243 पट्टा स 19

2 वी वि पृ 1521-1525, चौबीसा का मन्दिर, दूधगर्यों का मन्दिर, गाछियों का मन्दिर आदि उदयपुर मे तथा बहुत गाँवों में भी इसी प्रकार जाति मन्दिर बने हुए हैं।

3 ब रि—देवस्थान वही (19 वी शती) बस्ता 3 बाजार की हवेली मन्दिर वी वि पृ 155, उ ई भा 2, पृ 791, 805

4 सलूम्बर, देवगढ भीलवाडा, बडी सादडी, कराण आदि का शोधार्थी द्वारा प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा उद्धृत।

भी देवरा और मंदिरों का निर्माण किया जाता था।[1] द्विज एवं उच्च जातियों तथा अभिजात वर्ग द्वारा बनवाये गए मंदिर, सराय और बावडियों के तथ्य[2] प्रकट करते हैं कि लोगों में स्वकल्याण की मनोवृत्ति के साथ ही परोपकार एवं लोक-कल्याणात्मक मानस भी विद्यमान रहा था। मंदिर निर्माण की शृंखलाओं में कई मंदिर विभिन्न मार्गों के मध्य बनवाये जाना[3] स्पष्ट करता है कि ऐसे मंदिर यात्रियों की यात्राओं के विश्राम स्थल एवं मानसिक शांति प्रदान करने के उद्देश्य से पूर्ण होते थे। मार्गाविस्थित इन मंदिरों, बावडियों तथा सरायों के निर्माण में किया गया धनदान इस तत्कालीन जीवन में अभिजात वर्ग की धार्मिक रुचि, आर्थिक स्थिति एवं *प्रतिष्ठा को इंगित करता है,* उदाहरणतः केदारा गांव के सुर्तान बावडी तथा मंदिर बनवाने में 13 000 रुपया, गोवर्धन विलास कुण्ड आदि पर 45,101 रुपया, भटियाणी सराय, द्वारकानाथ मंदिर तथा बाड़ी पर 50 000 रुपया, प्रभु बारातण बाड़ी, धर्मशाला 'बावडी और देवरे पर 6,252 रुपया, धायभाई के पुल के मंदिर, बावडी और सराय पर 95,000

---

1 निम्न जातियों में देवरे बनवाने तथा उनमें विश्वास रखने की स्थिति को वर्तमान में व्याप्त देवरों के प्रति जनश्रद्धा द्वारा अंकन किया जा सकता है।

2 बोल्या वंश री विगत (अप्र), पत्र 3 ब, एनाल्स, भा 3, पृ 1731, वी वि, पृ 154, 158 159, प्रशस्ति—वि स 1774 (1716-17 ई), आषाढ़ सुदि 1, हरबनजा के खुरे के शिवालय की प्र, वि स 1790 (1732-33 ई), वैशाख सुदि 13, धाय बाई कुण्ड की प्र, वि स 1799 (1741 42 ई) चैत्र सुदि 8, प्रभुबारातण बाड़ी मंदिर की प्र वि स *1819* (1761 62 ई) ज्येष्ठ सुदि *14,* पचोलियों के मंदिर की प्रशस्ति वि स 1800 (1742-43 ई) वैशाख सुदि 8 धायभाई पुल के मंदिर की प्रशस्ति, वि स *1820* (1762-63 ई) वैशाख सुदि 6 आदि। विस्तृत द्रष्टव्य—वी वि, पृ 1176-77 1518-19, 1521 1525 26, 1670-73, 1770 74 2129-38 जयमल वंश प्रकाश, भा 2, पृ 7 उ ई, भा 2 पृ 622 639 40 662-63 719, 731 791 तथा 805

3 मानजी धायभाई का कुण्ड, मंदिर तथा सराय, लाला की सराय, मंदिर तथा बावडी, बामणी की सराय बावडी तथा देवरा आदि। संदर्भ—उपरोक्त ग्रंथ, पृ उपरोक्त।

रुपया सालेड़ा ग्राम की सराय, बावड़ी एवं मंदिर पर 7 000 रुपये खर्च किए गए थे।[1]

मंदिरों के द्वारा समाज में सामाजिक धार्मिक नैतिकता बनी रहती थी। पंचायती विवादों का अन्तिम निर्णय धर्म की सहायता से निर्णीत किया जाता था। इस प्रथा को आज भी 'मंदिर-चढ़ना' प्रक्रिया द्वारा जाना जाता है। विवाह जैसे संस्कार में दहेज प्रथा पर सामाजिक नियन्त्रण स्थापित करने 'मंदिर विवाह' की परम्परा के कारण मंदिर का सामाजिक धार्मिक जीवन में महत्त्व रहा था।[2] मुहल्लों चौरों तथा चौहटों पर बने हुए मंदिर लोगों की मानसिक शांति और आध्यात्मिक आनन्द प्राप्ति के केन्द्र रहे थे। व्यक्ति अपने घर से काम पर जाते अथवा काम से लौटते हुए सद्बुद्धि तथा आध्यात्म आशीर्वाद प्राप्त करने का अभिलाषी रहता था। सायंकाल स्त्रियां रिक्त समय का उपयोग मंदिर दर्शन, कथा श्रवण, भजन तथा कीर्तन में व्यतीत करती थीं।[3] इस प्रकार हिन्दू मंदिर, उपासरे आदि जीवन के वैविध्य कलापों में मुख्यतया सामाजिक-धार्मिक प्रक्रियाओं के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखते थे।[4]

---

1 बी वि, पृ 1177 1521 1525-26 1670 1672-73 आदि।

2 'मंदिर-चढ़न' से तात्पर्य ईश्वर-सम्मुख अपनी बात को कहना है। माना जाता रहा है कि ईश्वर सर्वद्रष्टा है उसके सम्मुख झूठ नहीं चलता इसी का परिणाम है कि लोग आज भी सौगंधों में विश्वास रखते हैं। मेवाड़ में धाण प्रथा का प्रचलन इसका प्रमाण है कि लोगों में धर्म और राज्य के प्रति अगाढ़ विश्वास रहा था (उ ई, भा 2, पृ 758)। मंदिर-विवाह से तात्पर्य शुद्ध धार्मिक विवाह जिसमें आर्थिक लेन देन नहीं हो। आज भी गाँवों में इस प्रकार के विवाह प्रचलित हैं। ऐसे विवाह में विवाह वाले मण्डप से मंदिर तक पगड़ी का डोरा बांधा जाता है जिससे यह प्रकट होता है कि इस विवाह का ईश्वर साक्षी है और ऐसा विवाह शुद्ध कन्यादान के अतिरिक्त सौदेबाजी पर आधारित नहीं है।

3 अखमेद री कथा (ह प्र) पत्र 40, वात संग्रह (प्र क्र 512) पत्र 80, ख्यात वात संग्रह (प्र क्र 701), पत्र 280, कोठारी, पृ 120-21, 152

4 मराठा अतिक्रमण काल में ग्रामीण स्त्रियां एवं बालक इन मंदिरों का संरक्षण प्राप्त करते थे। धर्म के प्रति किंचित् आस्थावान ऐसे अभ्यागतों

ग्राम एव ग्राम्य नगर को आवास-व्यवस्था

इन बस्तियो मे जातिवादी भावना से प्ररित विभिन्न मुहल्लो, गवाडियो अथवा वाडा बाडियों को उसमे रहने वाली जाति और उनके व्यवसाय से जाना जाता था।[1] गाव के मुखिया तथा ग्राम्य नगर क राज्य-प्रासाद से मुख्य माग परकोटो से पूर्वाभिमुख, उत्तराभिमुख या पश्चिमाभिमुख दिशा की ओर जाता था। कि तु दक्षिणाभिमुख द्वार बनाने का धार्मिक निषेध होने के कारण इस दिशा की ओर मुख्य माग नही बनाये जाते थे।[2] यद्यपि प्र य तीना मार्गों को आगे जाने के पश्चात् परिस्थितिवश दक्षिणाभिमुख करना पडना तो मोड दिया जाता था। अत प्रत्येक स्थान पर मुख्य माग दक्षिण दिशा त्याग कर अन्य किसी भी दिशा मे बना होता था कि तु अधिकतर पूव एव उत्तराभिमुखी मार्ग को शुभ लाक्षणिक माना जाता था।[3] मुख्य माग पर दोनों ओर दुकानें एव शिल्पी-दस्तकारो की कमशालाएँ बनी होती थीं।[4] मार्ग स्थित ऐसे वाणिज्य व्यवसाय के क्षेत्र को हाटा कहा जाता

पर हाथ नहीं उठाते थे (वी वि पृ 1730)। सम्पूर्ण अध्ययनकाल म मन्दिरो को शरण के विशेषाधिकार को राज्य द्वारा भी मान्यता थी— वी वि, पृ 1920

1 द्रष्टव्य—वाराणसी विलास पत्र 5-7 उदयपुर गजल, छद 36-44, उदयपुर वणन, छद 41-44, भीम विलास, प 213-15, इण्डिया एण्ड इटस नेटिव प्रिंसेस प 161

2 दक्षिण की ओर गृह-द्वार नही रखने की परम्परा का पालन आज भी किया जाता है जिसका मुख्य कारण रामायण की प्रचलित कथा है। दक्षिण को लक-दिशा कहा जाता है और माना जाता रहा है कि इस भूखी दिशा मे गृह द्वार रखने से गृह मे अशान्ति एव दरिद्रता उत्पन्न होती है।

3 उदयपुर सभाग की बस्तियों के प्राप्त रेखाचित्रो एव प्रत्यक्षावलोकन से सकलित विवरण से उद्धृत—उदयपुर शाहपुरा भीलवाडा के राज्य-प्रासाद का माग उत्तराभिमुखी सलूम्बर एव भीडर का पूर्वाभिमुखी व बडी सादडी का पश्चिमाभिमुखी रहा था।

4 वाराणसी विलास (ह प्र) पत्र 5 7, उदयपुर गजल छद 36-44, उदयपुर वणन छद 41-44 एनाल्स, भा 3, प 1736, इण्डिया एण्ड इटस नेटिव प्रिंसेस, पृ 161

था।[1] उदयपुर का राज्य-मार्ग कोतवाली (नगर नियन्त्रक कार्यालय)[2] से उत्तराभिमुख तथा पूर्वाभिमुख दिशाओं में विभक्त होकर हाथीपोल तथा सूरजपोल से नगर के बाहर जाता था। उदयपुर जैसे ही अन्य स्थानों के बाजार मुख्य मार्ग पर स्थित थे। इन बाजारों द्वारा स्थानीय व्यापार संचालित होता था किन्तु अन्य स्थानों से वस्तु और अनाज आयात निर्यात हेतु अलग से मण्डियां बनी होती थीं। ग्राम्य नगर में इन मण्डियों का प्रबन्ध महाजनों की पंचायत करती थी।[3] ऐसी पंचायतों में अनुभवी व्यापारी और साहूकार होते थे जो कि श्रेष्ठी (सेठ) कहलाते थे। 1868 ई. के अकाल में राज्य प्रधान कोठारी केशरसिंह ने राज्य में खाद्यान्न व्यवस्था बनाये रखने के लिये नगर के श्रेष्ठियों की सहायता द्वारा जन-कल्याण के काम किये थे।[4]

वृहत् गांव और ग्राम्य नगर की गृह रचना

गांवों की गृह व्यवस्था के अनुरूप इन बस्तियों की गृह-रचना में भी विभिन्न प्रकार के मकान बने हुए थे। किन्तु जहां गांवों में फूस और कच्चे खपरैल घरों का आधिक्य था वहां इन बस्तियों में चूने-पत्थर से बनाये गये मकान[5] तथा 'पक्का-खपरैल' की श्रेणी के घर अधिक बनाये जाते रहे थे। चूने और पत्थर से निर्मित मकानों की उल्लेखनीय श्रेणियां तीन प्रकार की रही थीं—(क) महल, (ख) हवेली और (ग) कोठी अथवा बंगला।

(क) महल—सम्पूर्ण राज्य में महल दो स्थानों पर स्थित थे—प्रथम चित्तौड़ में तथा द्वितीय उदयपुर में। चित्तौड़ के महल तथा उदयपुर के महल अध्ययनकाल से पूर्व निर्मित किये गये थे। इसमें भी चित्तौड़ के महलों की अवस्था जीर्ण शीर्ण रही थी अतः हम यहां उदयपुर के महल तथा अन्य इसी प्रकार की श्रेणी वाले आवासीय व्यवस्था का विवेचन करेंगे। आलोच्यकाल

---

1 मनोरथ वल्लरी (अप्र.) पत्र 194, भीम विलास (अप्र.) पृ. 213, वी. वि., 1670
2 आधुनिक समय में घण्टाघर थाना प्राचीन कोतवाली का स्थान था।
3 एनाल्स भा. 2 पृ. 812-813
4 वी. वि. प. 2082 कोठारी पृ. 26
5 इनकी छत पट्टियों द्वारा आच्छादित रहती थी जिन्हें घर पक्का-छावना कहा जाता था। मेहता संग्रामसिंह कलेक्शन—खाना सुमारी बही वि. सं. 1914 (1857 ई.) सावण वीद 1 (220), बस्ता 13

अधिकार एव सम्मान को प्रदर्शित करता था। हवेलियो के अधिकार की दृष्टि से इसके दो स्तर रहे थे। राज्य द्वारा बनवाई गई हवेलियों मे व्यक्ति का बपौती (वशानुगत) अधिकार नही होता था। ऐसी हवेलियो को राज्य अथवा अनुदाता पुन अधिग्रहित कर सकता था। हवेली निर्माता द्वारा व्यक्तिगत अनुदान या बख्शीश अथवा बनाने का अधिकार प्राप्त होने के पश्चात् हवेली किसी ग्रहिता की निजी सम्पत्ति बन जाती थी। यद्यपि एसी बापी हवेली राज्यद्रोह अथवा राज्यावज्ञा करने पर राज्य द्वारा रिक्त कराई जा सकती थी।[1] हवेलियो पर गुम्बद बनवाने सूय गोखडा (गवाक्ष) रखने, बारहदरी या दरीखाना बनवाने आदि के विशिष्टाधिकार प्रत्यक हवेली स्वामी को नही था। यदि वह स्वच्छा से इन प्रतिबन्धों के विरुद्ध काय करता तो उस पर आर्थिक दण्ड किया जाता था।[2] सलूम्बर और कोठारिया साम तों की हवेली की शरणागत विशेषता का उल्लेख साम तशाही म कर दिया गया है। इस शरण के विशिष्ट अधिकार का पालन 19 वी शताब्दी के उत्तराद्ध तक होता रहा था।[3]

ठिकानों की हवेलियों में सरदारगढ बागोर, देवगढ की हवेली, प्रधानो की हवेनियो मे रामसिंह महता को हवेली, कोठारीजी की हवली, छगनलालजी कोठारी की हवेली अन्य अधिकारियों मे जसकरणजी की हवेली, अमरसिंह धाभाई की हवेली, सलूम्बर मे मन्त्रीजी को हवेली बडी सादडी में

सहीवाला, भा 1, प 79, वी वि प 155, कोठारी प 135-136 ए विलेज इन राजस्थान प 36 37

1 एनाल्स भा 1 पृ 233 पट्टा स 5 वी वि पृ 1893 1924 1957, उ ई भा 2, पृ 733 744

2 राज्य के प्रथम श्रेणी के उमरावो को यह अधिकार प्राप्त था। अन्य व्यक्तियों मे बडे पुरोहित की हवेली पाठको की हवेली जमकरण की हवेलो आदि को यह अधिकार दिया हुआ था। इनको ऐसे अधिकार कब मिले ? इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं होत हैं। कोठारी छगनलाल की हवेलो म एक बार उसके किसी उत्तराधिकारी न इस प्रकार का अनधिकृत काय किया था परिणामत उसस उसकी सूरजपोल स्थित बाडी (मकानयुक्त बाग बगीचा) छीन ली गई थी।

3 ट्रीटीज, एगेजमेन्ट खण्ड 3, पृ 44 45, 49-54, वी वि, पृ 1919-20, उ ई भा 2 पृ 793

मेहताजी की हवेली आदि विभिन्न हवेलियों के प्रत्यक्षावलोकन स्पष्ट करते हैं कि इन हवेलियों के निर्माण-रचना म मर्दाना और जनाना कक्ष अलग अलग बने होते थे। दास दासियों के कक्ष गऊशाला घुडशाला आदि के लिये मुख्य द्वार के दाई या बाई ओर स्थान नियत रहे थे। अधिकतर हवेलिया दो मजिल की बनी हुई थी, जिनमे गवाक्ष झरोखे, भ प बैठक और दरीखाने पच्चीकारी और सुन्दर नक्काशी से शृ गारित किये हुए थे।[1] इन हवेलियों के अन्दर कमरो म फ्रेसको घुटाई का काय रहता था। भित्ति चित्रो से सुसज्जित हवेलियों मे आकाश्या एव अन्तरग कक्ष स्वप्निल आनन्द प्रदान करने वाले बनाय जाते थे।[2]

हवेलियो के कमरो का निर्माण चूने और पत्थर द्वारा किया जाता था। किन्तु यह आवश्यक नही था कि हवेली की सम्पूर्ण छतें पट्टियो से आच्छादित हो कही कहीं खपरेल की छत भी होती थी उदाहरणाथ—कोठारी बलव तसिंह की हवली गाधी की हवेली पाठको की हवेली आदि। द्विमजिल से ऊपर बने कमरो की फश बास अथवा पट्टी की रहती थी। इस फश पर केलू कूट कर पक्का फश बनाया जाता था। इन फर्शों पर बारीक आरास की घुटाई में नाना प्रकार का बेल बूटाकारी एव माडणा बनाये जाते थ। चोनी की जडाई का काय भाभाईजी की हवेली मे अभी भी देखा जा सकता है। कई हवलियां मिट्टी के फशयुक्त केलू छवाई म साधारण स्तर की बनी हुई थी। हवेलियो के निर्माण का व्यय हवलीदार की आर्थिक स्थिति एव पद प्रतिष्ठा पर निभर होता था। राणा अरिसिंह कालीन 18 वी शती की एक हवेला के प्राप्त कमठाणे खच क अनुसार उसके निर्माण म 6 252 रु कुल व्यय हुआ था जबकि राणा स्वरूपसिंह कालीन 19 वीं शती मे बनवाई गई एक हवेली का निर्माण यय 25 हजार रुपया रहा था।[3] आलोच्यकाल के उत्तरार्द्ध में निर्मित हवली स्थापत्य पर आग्ल प्रभाव परिलक्षित होना प्रारम्भ हो गया था। परिणामत भवनों म खोखडों और झरोखों का स्थान साधारण चौकोर खिडकियो महराब युक्त कगूरों वाले स्तम्भो का स्थान सपाट

---

1 जगदेव पु वार री वात (ह प्र) पत्र 26 तथा प्रत्यक्षावलोकन।

2 सलम्बर की मन्त्रीजी की हवली के ऊपरी कक्ष मे गीत गोवि द की भित्तिकारी और कोठारी छगनलाल की उदयपुर स्थित हवेली चित्रकारी के लिए उदाहरण हैं।

3 कुम्भेण कीति प्रकाश—प्राक्कथन वी वि, पृ 1670 2125 कोठारी पृ 135, दी रेजीडे सी उदयपुर, पृ 1 एव 7

पाषाण स्तम्भो तथा वस्त स्थापत्य शैली के निर्माण का स्थान चतुष्कोणी स्थापत्य ने लेना प्रारम्भ कर दिया था। छतो म कहीं कहीं लौह पत्तरा व रौंस म पाषाण पच्चीकारी और नक्काशी की जगह लौह जालियां लगाई जाने लगी थीं।

(ग) कोठी अथवा बंगला—19 वी शताब्दी में राज्य द्वारा अंग्रेज अधिकारियो के रहने हेतु कोठियो और बगलों का निर्माण किया गया था।[1] इस श्रेणी मे हमारे सम्मुख उदयपुर का रेजीडेन्सी भवन साक्ष्य है। 1823-26 ई मे कप्तान काब द्वारा बगू की हवेली को आंग्ल प्रतिनिधिया के विश्रान्ति गृह के लिये मेवाड राज्य से क्रय किया गया था।[2] 1861-62 ई के पश्चात् इसम भिन्न भिन्न एजेन्टो एव रेजीडेन्टो द्वारा आंग्ल स्थापत्य एव भवन सुविधा प्राप्त करने के लिये कई परिवर्तन किय गय थ।[3] इसी प्रकार विभिन्न कोठियो और बगलो की तत्कालीन स्थिति का अवलोकन उदयपुर नगर मे यथास्थान किया जा सकता है।

घर पक्का खपरेल पट्टी—साधारणत ग्राम-नगर और वहृत गांवो म घर फूस कच्चा तथा महल हवेलियो के मध्य स्थिति वाल घर 'पक्का खपरेल पट्टी' रहे थे। आलोच्यकालीन चित्रावलियो एतिह्य लोक साहित्य तथा तत्काल के बने हुए वतमान मे स्थित मकानो के प्रत्यक्षावलोकन द्वारा इस श्रेणी के घरो की निवास शली तथा रहने वालो का तात्कालिक आर्थिक स्तर का अकन किया जा सकता है।[4] ग्राम्य बस्ती मे बने हुए घर पक्का-

---

1 वी वि, पृ 154-155 2126 दी रेजीडेन्सी उपरोक्त, पृ 3-5

2 दी रेजीडेन्सी उपरोक्त, पृ 3-5, राणा जवानसिंह द्वारा इस हवेली को 10 हजार रुपये मे क्रय कर आंग्ल प्रशासन के प्रतिनिधियों का विश्रान्ति गृह बनाया था। 1862 ई म पोलिटिकल एजेन्ट का दफ्तर नीमच से उदयपुर स्थानान्तरित होने के पश्चात् (उपरोक्त पृ 7, 34)। यह 1881-82 ई तक एजेन्टो तथा रेजीडेन्सी बनने पर रेजीडेन्टो का कार्यालय एव निवास स्थान रहा था।

3 दी रेजीडेन्सी उपरोक्त पृ 8 19

4 अप रामायण (ह प्र चि), जग विलास पद 179, जनाना महल उदयपुर मे सग्रहित चित्रावली, प्रताप सग्रहालय सग्रहित—रागमाला कृष्णावतार गीत गोविन्द, नायक नायिका चित्र, देराश्री कलवशन—प्रताप सग्रहालय आर्ट गलेरी प्रोसीडिंग आफ इण्डियन हिस्ट्री काग्रेस (1958)—उदयपुर, नाथद्वारा तथा सिकलीगर सग्रह की पेंटिंग्स पर

खपरेल के जसे ही इनका निर्माण भी पत्थर-चूने और मिट्टी द्वारा किया जाता था। इन मकानो के प्रवेश द्वार छोटे होते थे। इन प्रवश द्वारो मे एक बैठकखाना बना होता था। पोल (प्रवश द्वार) के बाह्य मुख्य द्वार और अन्तरिम पष्ठ द्वार आमने-सामने नही होकर तिरछे बने होत थे। इसका मुख्य कारण पर्दा-प्रथा का प्रचलन था। इस अन्तरिम द्वार के आगे चौक बना होता था। ब्राह्मण जाति के घरों मे इस चौक के मध्य अथवा कोन म तुलसी-क्यारे के लिए स्तम्भ बना होता था। यह स्तम्भ पतवारी स्तम्भ कहलाता था। चौक के आगे ओवरे बने होत थे[1] जि ह चोपाल पठाल अथवा परछना कहे रखता था। यह परछना आदि गह सदस्यो की अ तरिम बैठको के काम मे लिया जाता था। औरतो के गहस्थ काय और वार्तालाप का समय व्यतीत करने मे भी यह उपयोगी होते थ।

ओवरो और पठाल के ऊपर यदि ओवरी और तबारी बनी होती तो ओवरो की छता पर घास की छवाई तथा ओवरी मे मिट्टी या चूने का फश किया जाता था। तीसरी मजिल पर बने कक्षो को मेडी' कहा जाता था। मेडियो का प्रयोग ग्रीष्मकालीन सोने-बैठने के लिए किया जाता था। परसना और तबारी के आधार-स्तम्भ मेहराबदार बनाये जाते थे। एक पोल म सयुक्त परिवार का निवास होने पर चौक बडा बनाया जाता था जिसके इद-गिद कुटम्बी जनो के अलग-अलग आवास बने होत थे। ऐस आवासो म इधन रखने पशु बांधन के लिए बने हुए स्थान को 'नोहरा' कहा जाता था। यह नोहरा, ग्राम्य नोहरो जैसा न होकर केवल कक्ष होता था। इस प्रकार के मकानो का क्षेत्र औसतन 20 से 38 वग गज रहता था। इन मकाना के भू तनियों का मूल्य 10 रुपये से 24 रुपये तक तथा अच्छे नोहर के निर्माण म 2000 रुपये तक का खच बैठता था।[2] पक्क मकानों का कुल निर्माण व्यय 1 5 हजार रुपया औसत तक रहता था।[3]

डॉ जी एन शर्मा का लेख पृ 558-64, कुमार स्वामी—राजपूत पेंटिंग्स, भा 2, प्लेट 6 वार्ता सग्रह ग क्र 512, 703 2524 आदि।

1 इन ओवरों का वर्गीकरण माताजी (कुल देवी) का ओवरा रसोडा, धान का ओवरा आदि के अनुसार किया जाता था।

2 सो ला मी रा पृ 66

3 बी बि, पृ 2125, 19 वी शती के हरिवल्लभ व्यास ब्रह्मपोल, उदयपुर निवासी क मकान के कमठाणा खच के ब्यौरे से उद्धत।

मकान साज सज्जा एव सामान

बहुद्-ग्राम एवं ग्राम्य-नगर के मकानो की सज्जा तथा गहपयोगी सामान की स्थिति ग्राम्य घरो से अधिक सम्पन्न रहती थी। यद्यपि रसोई के सामानो मे मिट्टी के बतन, लकडी की बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग इन बस्ती घरो म भी किया जाता था किन्तु सम्पन्न एव अभिजात वग म सोने-चांदी के बतन, पीतल के बतन, तावे क बतन शयनकक्ष म रेशम क गद्दे तकिये शृगार-कक्ष म कांच, चमेली का तेल, अजन फूलदान, बठक म गादी मोढे मोम-बत्तियां, शमादान आवनूस और सागवान काष्ठ क सदूक, मेज कुर्सियां, तख्ते, हिण्डोले फश की कालीन, खिडकियो और दरवाजो पर कांच की चिलमनें साटन के पर्दे, धूपदान आदि नाना प्रकार के गह सामान घरो म रख जाते थे।[1] किन्तु अल्प आय और साधारण जन के गह सामानो की स्थिति गह-स्वामियो की सामाजिक आर्थिक ऊँच नीच का अन्तर प्रकट करती थी। इस प्रकार जहा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न लोगों के घर द्रव्य सग्रहालय थे वहा विपिन्न लोगो के घर यथाथ जीवन क प्रयोगालय थे। एक भौतिक समद्धि की पराकाष्ठा रहे थे तो दूसरे साधारण जीवन की अभि-व्यक्ति थे।

बस्तियों मे दनिक जीवन[2]

ग्राम्य बस्तियो का दनिक जीवन प्रात 3 बजे से प्रारम्भ हो जाता था।

---

1 अचलदास खीची—उमा देवडी री वात (ह प्र) पत्र 51 अ चद्र-कुंवर री वार्त्ता (ह प्र), पत्र 85 ब, फुटकर कविता (ह प्र) वि स 1781 (1724 ई), पृ 179-180, कुमार स्वामी—राजपूत पेंटिंग्स, भा 2 प्लेट 1, सौवलीगर कलेक्शन—क्यूरीयस हाउस वात साहू ग्यान री पत्र 202 उद्धत—सो ला भी रा, पृ 68

2 यह विवरण सकलित रूप म विभिन्न एतिह्य साहित्य कृतियो पेंटिंग्स आधुनिक ग्राम्याचल के परम्पराई जीवन के प्रत्यक्षावलोकन वद्धजना के व्यक्तिगत मौखिक साक्षात्कार द्वारा प्रस्तुत किया गया है। सदभ सामग्री उपलब्ध—सोम सौभाग्य काव्य, सग 2, पद 5, जस विलास, पत्र 138 पत्र 10 भीम विलास पद 252, पृ 74 व 215, सहीकी पद 12-13, महजर नामा—उद्धत—शाहपुरा की ख्यात खण्ड 2 पृ 114 115 चद्रकुंवर री वार्ता पद 196, पत्र 325, सदाव्रत सावल गोरी री वात पद 40 45, पत्र 5-6 बीजा सोरठ री वात, पत्र

स्त्रियां दैनिक कर्म से निवृत्त होने के पश्चात् आटा पीसने के लिए चट्टी पर बैठ जाती थी। एक सेर से दो सेर तक अनाज पीसने के कार्यक्रम का प्रतिदिन निर्वाह किया जाता था। इस क्रिया द्वारा जहां खाना बनाने की सामग्री जुटती थी वहां स्त्रियों का प्रातःकालीन व्यायाम स्वतः हो जाता था। इसके बाद कुओं से पानी लाने का कार्य किया जाता था। कृषक लोग उषा बेला में ही हल बैल एवं अन्य मवेशियों के साथ खेत पर चल देते थे। वहां दिन भर कृषि-कार्य में संलग्न रहते हुए सायंकाल 5 6 बजे घर लौटते थे। यदि फसल का काल होता तो फसल की पाणत (पानी) करने में व्यस्त रहता था। संयुक्त स्वामित्व के कुओं पर ओसरा (पंक्ति) के अनुसार पाणत करनी पड़ती थी अतः रात को भी उसे खेत पर रहना पड़ता था। पकी हुई फसल की रखवाली के लिये किसान खेतों में बनी डागलियों में रात्रि व्यतीत करता था। कृषक स्त्रियां प्रातःकालीन गृह-कार्य से निवृत्त होकर खाने के साथ अपने परिवार का साथ देने खेतों पर पहुंच जाती थी। घर में वृद्धाएं छोटे बालकों को खिलाने पिलाने का ध्यान रखती थी। फसल-कटाई के लिए सम्पूर्ण परिवार खेत में जुट जाता था।

व्यावसायिक जातियों का दैनिक जीवन गृह-कर्मशालाओं में स्थानीय उद्योग करने तथा उत्पादन में व्यतीत होता था। किसानों के बालक बालिका गोचरी का कार्य भी करते थे। किसान और शिल्पी दस्तकारों की दुपहरी का खाना खेतों और कर्मशालाओं में होता था। साधारणतः राब या छाछ, जव या मक्का की रोटी और चटनी भाजी ही किसानों का भोजन रहा था। सायंकाल किसान और उनका परिवार इंधन पशुओं के लिये घास और पशुओं के साथ घर लौटते थे। खाना खाने के बाद किसानों, शिल्पी और दस्तकारों की स्त्रियां व बालक बालिकाओं की पारस्परिक बैठकें गप्प शप्प खेल कूद किस्से कहानियां ग्राम-स्थिति का व्यावहारिक आलोच्य-प्रत्यालोच भजन-कीर्तन आदि देर रात तक चलते रहते थे। मूलतः ग्राम्य संस्कृति में

59, गुटका (क्रमांक 2400 2412) में उल्लिखित आलेख चित्रण बात संग्रह कहानी क्रम 68 207 324 एनाल्स भा 2 पृ 788 910, भा 3, पृ 1653 इण्डिया एण्ड इट्स नेटिव स्टेटस, पृ 148 169, 183 सीक्लीगर पेंटिंग्स—गाया को घर लाता हुआ किसान, बच्चों को कहानी सुनाती हुई वृद्धा वार्ता मग्न किसान चक्की चलाती नारियां आदि—ए स्टडी आफ भील विलेज आफ वेस्टर्न उदयपुर पृ 73 75

जाति पचायतो की बैठक का कोई निश्चित स्थान नहीं रहता था किन्तु ऐसी बैठकें अधिकतर खुले हुए सावजनिक स्थानों पर होती थीं। एसे स्थान मंदिर हुआ करते थे।[2] दण्ड के रूप मे प्रायश्चित क्षमा-याचना, आर्थिक दण्ड, धार्मिक यात्रा आदि साधारण और जाति से भदर (बहिष्कृत) करना अथवा जाति को भोजन देना कठोर दण्ड माने जाते थे। निम्न जातियों म हरिजन चमार रगर, आदिवासी, भील, मीणों मे शारीरिक दण्ड भी जाति पचायतों द्वारा प्रदान किय जात थे।[2] दो गांवो या इसस अधिक गांवो की जाति पचायतो के मध्य उत्पन्न विवादो का निणय जाति की चोखला पचायतें करती थी।[3]

(आ) पचायत—मेवाड रा्य मे पच और पचायतो का क्रम गांव नगर एव परिवार से राज्य प्रशासन तक फैला हुआ था। प्रजातांत्रिक न्या व्यवस्था को बनाये रखन के साथ ही सामुदायिक निणय, भातत्व सहयोग भावना उत्पन्न करने म महत्त्वपूर्ण रही थी।[4] ऐसी पचायतो म रा्य कमचारी (पटेल पटवारी) तथा नगर मे नगर सेठ और नगर के प्रमु चोवटिया (कोतवाल फोजदार बख्शी आदि) के राज्य प्रतिनिधित्व साथ जाति पचायतो का जन प्रतिनिधित्व सम्मिलित रहता था। इन पचायतों की बैठक का स्थान चोरा, हथाई एव पचायती नोहरा कहलाता था।

---

1 जातियो के निजो मंदिरो अथवा पचायती नोहरों में आज भी ऐसं बठकें प्रचलित हैं। उत्सव मेलो आदि पर भी ऐसी बठकें हुआ करतं थीं—वी वि, पृ 1670-1672, 1771

2 सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महकमा खास, उदयपुर (अप्र) भा 1, प 163

3 पचायती वहिडा—आमेटा जात (ह प्र) सरक्यूलर रजिस्टर, उपरोक्त प, श्री लाड—औदिच्य आमेटा प 101-103

4 एनाल्स, भा 1 प 171 वी वि प 1551 1776 वि स 1848 (1741 ई) का इकरारनामा (प्रतिलिपित—वी वि प 1713) मेवाड का राज्य प्रबध, प 8 36-37 184

5 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन फाइल 181-220 546 578, बस्ता 13 व 28, श्यामलदास कलेक्शन पत्र स 719, नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 1 पृ 8, रजि न 12, पृ 6, 9-10 वि स 1847 (1790 ई), ज्येष्ठ सुदि का पत्र (प्रति वी वि, पृ 1771), एनाल्स,

इन पंचायतों का कार्य ग्राम्य-विवादों की जांच एवं निर्णय करना होता था।[1] किन्तु सामुदायिक व्यवस्थापन, जन कल्याण योजनाएं बनाना, ग्राम की सामाजिक आर्थिक व्यवस्थापन हेतु निर्णय लेना एवं राज्य को सामाजिक-राजनीतिक नीति का परामर्श प्रदान करना भी इनका विशिष्ट कर्तव्य रहा था।[2] बस्तियों के सार्वजनिक कार्यों के लिए लोगों का पारस्परिक सहयोग-पूर्ण व्यवहार 'पंचायती कार्य' कहा जाता था। इसके अन्तर्गत सार्वजनिक कुएं खुदवाने, तालाब का निर्माण कराने, अथवा मन्दिर बनवाने के कार्य को कराने में ग्राम्यजनों का सहयोग लिया जाता था। यह सामुदायिक संगठन नगर की अपेक्षा गांवों में अधिक दिखाई देता था।[3] ग्राम्य पंचायतों का क्षत्रिय समुदाय 'चौखला' कहलाता था।

(ई) चौखला—चौखला पंचायतों के लिये गांवों की निश्चित इकाइयाँ नहीं थी। एक से अधिक गांवों के अन्तर्विवाद एवं व्यवस्थापन के कार्य अथवा क्षत्राधीन प्रान्तीय विवाद का कार्य परगनों के चोवटिया (कामदार, फौजदार नगर सेठ तथा राज्य के सामन्त) तथा क्षेत्र सम्मिलित ग्राम-पंचायतों के विशिष्ट प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता रहा था।[4] यह 'चौखला' पंचायतें

भा 3, पृ 1635-1636, व ई, भा 2, पृ 1123, ए स्टडी ऑफ भील विलेज आफ वरटन उदयपुर पृ 72, मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध, पृ 7-8 36-37

1 मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध, पृ 36

2 श्यामलदास कलेक्शन, पत्र स 719, निजी संग्रह में संग्रहित पत्र, वि स 1819 (1762 ई), आषाढ सुदि 3 का शिलालेख (एनाल्स, भा 3 पृ 1729), शाहपुरा राज्य की ख्यात (अप्र), खण्ड 2, पृ 143 144, खण्ड 3 प 63, गोपीनाथ शर्मा—राजस्थान का इतिहास, भा 1 प 643। पत्रों में उल्लेखित पच-पटल, पच महाजन का अर्थ जाति या वर्ग विशेष से नहीं रहा था अपितु यह विशिष्ट और सम्मानित व्यक्तियों की समूह सभा थी।

3 सुख-दुख में एक अनेक के लिये और अनेक एक के लिये का पारस्परिक सहयोग ग्राम्य जीवन की विशेषताएँ रही हैं, जो कि आज भी विद्यमान हैं।

4 श्यामलदास कलेक्शन पत्र स 676, 679 699, कलेक्शन ग्राम बनेड़ा आर्कोइव्ज, भा 2, पत्र 10 वी वि पृ 1551, 1713, 2093, राजस्थान विलेज, प 119-137

भी उपरोक्त वर्णित स्थितियों के अनुरूप दीवानी व फौजदारी मुकदमों को सुनने तथा निर्णय देने के साथ ही बस्तियों की व्यवस्था बनाये रखने, लोक कल्याणकारी कार्यों को सम्पादन करने तथा राज्य समाज की प्रशासनिक व्यवस्था में सहयोग देने का काय करती थी।

उपरोक्त सामुदायिक व्यवस्था राजतत्रीय शासन-प्रणाली में कुलीन प्रजातन्त्र का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए आलोच्यकाल के पश्चात् तक चलती रहती थी।[1] यद्यपि 19 वीं शती के अतिम दशकों में आग्ल-प्रशासनाधिकारी मुख्यत पोलिटिकल एजेंट ईडन तथा निक्सन द्वारा इन सस्थाओं के स्वायत्त अधिकारों एव लोकाचारों को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया था कि तु जन विरोध स्वरूप इसमें उन्हे सफलता नहीं मिली थी। यह सस्थाएँ यथावत् काय करती रही थीं।[2]

मेवाड का जन-जीवन जसाकि बस्तियों के उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है ग्राम्य-वातावरण-प्रभावित रहा था। नवीन विचारों और विकास के प्रति ग्राम्यजनों की शका और सदेह आज भी देखा जा सकता है। परम्परा एव प्रथा मेवाडी-जीवन के सामाजिक सस्कृति का निर्माण करती थी जिनम धार्मिक विश्वास, समाजाचरण त्यौहार-मेले, उत्सव, खान पान रहन सहन, मुख्य थे।

त्यौहार-मेले उत्सव

राज्य के जन जीवन म धम (कत्त व्य) तथा अर्थ (जीविका) के प्रति प्रगाढ विश्वास था। आधुनिक जिजीविषा का झझावात आलोच्यकाल मे कही नही दिखाई देता था क्योंकि प्रत्येक दिन धार्मिक कृत्यो और फलित आशाओ से बधा रहता था।[3] आशा युक्त जीवन म काम (आनन्द) तथा

---

1 मेवाड राज्य रो हाल (ह प्र) प 170, श्री लाड—औदिच्य आमेटा, प 100, मेवाड का राज्य प्रब ध प 184-185, राजस्थान विलज, प 119-131

2 पो पो क —दिसम्बर 1863 न 43 47 जुलाई 1864 न 30 42 1861 ई का मोक प्रदशन 1864 ई की नगर (उदयपुर) हडताल 1881 ई का भील आ दोलन 1921 ई का किसान आन्दोलन इसी कारण हुए थे।—वी वि प 2069-70 2195, उ ई, भा 2, प 791

3 सोमवार का सम्बन्ध शिव से, मगल का हनुमान से बुध का गणेश से,

मोक्ष (मुक्ति) के लिये प्रत्येक दिन लोगो द्वारा कोई-न कोई व्रत रखना या उपवास करना तात्कालिक जीवन की विशेषता रखते थे। यद्यपि ग्राम्य समाज में व्रत-उपवास का स्थान मस्त तथा उसके प्रति प्राखडियो' ने ले रखा था किन्तु यह भावना भी जीवनोत्सग एव प्राशा के प्रति प्रास्थाप्रो को जाग्रत रखती थी। प्रत्येक माह के मध्य पूर्णिमा प्रमावस्या, ग्यारस, प्रदोष, दूज प्रादि के व्रत-उपवासो का पालन तथा पशुप्रो को कायमुक्त रखने की धर्मास्था समाज में प्रात्मा परमात्मा के लाक्षणिक प्रर्थों को स्पष्ट करते थे। वष के मध्य मे इसी प्रकार कई सामाजिक धार्मिक त्योहार तथा उत्सव प्रौर प्रार्थिक प्रावश्यकताप्रों व प्राकाक्षाप्रो की पूर्ति करने वाले मेलो मे 18-19 वी शताब्दी का सामाजिक जीवन दिखाई देता था।

मार्च प्रप्रेल की बसन्त ऋतु मे लहलहाती फसल के साथ चैत्र माह के प्रथम दिन वष प्रारम्भ होता था।[1] इसके दूसरे दिन 'गणगौर का दातण-हेला' नामक स्त्रियों का उत्सव प्रारम्भ होता था। इस महिने के तीसरे दिन राणा प्रौर सामन्तो की नगर में सवारिया निकलती थीं। लोग वस्त्राभूषणों से सज धज कर सवारियो का दृश्यावलोकन करते थे। सवारियो में पीछोला तालाब मे गणगौर राणा प्रौर सामन्तो की सैर, वेश्याप्रों के नाच म नत्य, रग बिरगी रोशनी प्रादि सामन्तकाल की चमक दमक प्रदर्शित करते थे। चौथे दिन भी यही कायक्रम चलता था। यह उत्सव देखने लोग दूर दूर से उदयपुर प्राते थे। मेवाड की गणगौर-सवारी तत्कालीन राजपूताने में निराली रही

गुरु का वहस्पति ऋषि से शुक्र का मुस्लिम जाति मे नमाज (ईश्वर प्रार्थना) से शनि का शनि देव से तथा रविवार का भाग्यदेव प्रथवा सूय से रहा था। प्रत प्रत्येक दिन का प्राधिकारिक देवता लोगो की प्राशा प्रौर विश्वास का सम्बल होता था। इन्हे मानने वाले लोग शुभ जीवन की प्राशा धारण किये हुए इनके निमित्त व्रत उपवास करते थे। मेवाड मे पर्वों एव *धार्मिक दिनो की स्थिति के बारे मे कनल टाड ने* लिखा है कि मेवाड मे सात वार (दिन) प्रौर नौ त्योहार विद्यमान थे (एनाल्स भा 2 प 656)। इससे भी मेवाड की धार्मिक सस्कृति का स्पष्टीकरण होता है कि जन जीवन पर प्रचलित धार्मिक सामाजिक व्यवहारो का प्रत्यधिक प्रभाव व्याप्त रहा था।

1 राज्य के शासन-कार्यों में नवीन वष श्रावण कृष्णा 1, को प्रारम्भ होता था।—वी वि प 119

थी।[1] इस माह की शुक्ला अस्टमी को जन साधारण कुल देवी का पूजन तथा नवमी को रामनवमी का त्यौहार मनाते थे। ऋषभदेव म इस दिन मेला भरता था जिसमे भील वैश्य के साथ अ य द्विज जाति के लोग यहा दशनार्थ आते थे। अप्रेल-मई में वैशाख माह की कृष्ण ततिया को धीगा गणगौर का उत्सव राज्य भर मे होता था। इसमें भी सवारियां आदि का प्रदशन किया जाता था। यह उत्सव मेवाड राज्य के अतिरिक्त कहीं भी नही होता था।[2] ग्रीष्म काल मे मई जून की ज्येष्ठ शुक्ला 11 को निजला एकादशी तथा जून जुलाई की आपाढ़ शुक्ला 2 को रथयात्रा उत्सव सामाजिक उल्लास तथा उपवास के दिन रहे थे। इसी माह की पूर्णिमा को ब्राह्मण अथवा धार्मिक लोगो को, द्विज जातियो को दान-पुण्य एव भेंट दी जाती थी। यह पव गुरु पूर्णिमा कहलाता था। जुलाई अगस्त के वर्षा के दिनो मे श्रावण माह का प्रत्येक सोमवार सुखिया सोमवार कहलाता था। इन दिनो बागो मे झूले डाले जाते तथा स्त्रियां बच्चे बच्ची तथा पुरुप घर से बाहर प्राकृतिक स्थानो पर आहार विहार करते थे। बडी तीज नामक व्रतोत्सव के दिन स्त्रिया शिव पावती की अचनाथ गांव के बाहर जाती तथा दिन भर के व्रत के पश्चात् रात्रि को चन्द्र दशन कर खाना खाती। अगस्त-सितम्बर मे भाद्रपद कृष्णा 10 को गवरी-पूजन का कायक्रम प्रारम्भ होता था जो कि सितम्बर-अक्तूबर की शरदृऋतु के आश्विन माह की शुक्ला नवमी को समाप्त होता था। इन दिनो मे भील जाति के लोग स्थान स्थान पर गवरी नृत्य करते थे। यह लोकनत्य शिव गौरी की अचना करने के माध्यम के साथ ही लोक-मनो विनोद का साधन भी रहा था। महेन्द्र भानावत ने इस नत्य की सास्कृतिक स्थिति का एक पक्षीय अवलोकन किया हैं।[3] किन्तु इस नत्य के पृष्ठ मे सामाजिक मेल मिलाप एव आर्थिक सतुष्टि का अन्य पक्ष भी दिखाई देता है जबकि भीलो की गवरियां 1½ माह तक अपने घरो से दूर अपन गावो की विवाहित बहिन बेटियों के यहां धार्मिक नत्य करना उनके यहा खाना, पहिरावणिया पहिनना आदि की सामाजिक आर्थिक प्रक्रियाए इस नत्य के सामाजिक आर्थिक पक्ष को प्रस्तुत करती हैं। इन्हीं दिनो में भाद्र शुक्ला 11 का देवझूलनी उत्सव सभी स्थानो पर मनाया जाता था। इस

---

1 एनाल्स भा 2, प 665 670, वी वि प 120-123

2 वी वि प 123

3 डॉ महेन्द्र भानावत—लोकनाट्य गवरी उदुभव और विकास, राजस्थानी लोक साहित्य परम्परा प 8-9

दिन चारभुजा नामक स्थान पर यात-मेले लगत थे। इन यात मेलो मे राज्य में रहने वाली मिभिन्न द्विज जातियो की यात चोखला पचायतो की बैठकें होती थीं।[1]

शरद् ऋतु म सितम्बर-अक्तूबर के आश्विन शुक्ला[1] का राज्य में विशेष महत्त्व रहा था। इस दिन से दशहरा तक राज्य के सभी सामन्तो को राजधानी म उपस्थित होना पड़ता था। इन सामन्तों के दरबारी और सैनिकों के साथ राणा तथा उसके अन्य परिवार वालो और उच्चाधिकारियो की दैनिक सवारियों का क्रम दस दिन तक चलता रहता था।[2] सामन्तों के साथ राणा द्वारा चोगान के खेल तमाशे देखना हाथी लड़ाना भैंसों का बलिदान करना आदि राजपूत जाति की शौर्य-प्रदशन-प्रवत्ति के द्योतक रहे थे। इन दिनों का राजपूत जाति और मात (देवी) भक्तजनो के पाठ-पूजन निमित्त विशेष महत्त्व रहता था। इसी प्रकार का मैं य प्रदशनात्मक उत्सव आश्विन शुक्ला 11-13 के मध्य आयोजित होता था। इस उत्सव को 'मुहल्ला' कहा जाता था।[3] आश्विन पूर्णिमा पर शरद् ऋतु की अचना की जाती थी। इस दिन अभिजात वग तथा सम्पन्न जाति के लोग रात्रि गोठा व विहारों का आयोजन करते, सफेद वस्त्र पहिन कर देव-दशनाथ मन्दिरों मे जाते थे।[4]

अक्तूबर-नवम्बर में कार्तिक माह दीपावली का त्योहार आता था। इसी माह में अन्नकूट पव पर नाथद्वारा में मेला लगता था जहा दूर दूर से यात्री श्रीनाथजी के दशनों के लिये आते थे। कार्तिक शुक्ला 11 को अभिजात वग में तुलसी विवाह का धार्मिक उत्सव किया जाता था। इस पव पर धर्मार्थ निमित्त भोजन खिलाये जाते थे। कार्तिक पूर्णिमा को मात्रिकुंडिया नामक स्थान पर विशाल मेला भरता था। इस मेल म राज्य के किसान एव पशु पालक जातियों की यात गोठिया होता थी। सम्पूर्ण माह मे स्त्रियां प्रात उठ कर अलग अलग तालाबो व कुओ पर स्नान करती तथा व्रत रखती थी। यह धार्मिक प्रथा कार्तिक स्नान कहलाती थी। नवम्बर-दिसम्बर

---

1 एनाल्स भा 2, प 666-67, वी वि पृ 126

2 एनाल्स, भा 2, प 654-55, 681-84, वी वि पृ 127-131, देवनाथ पुरोहित—उदयपुर, प 89

3 वी वि प 131

4 एनाल्स भा 2, पृ 694-95, वी वि, पृ 131-132, उदयपुर, पृ 88

की हेमन्त ऋतु में मार्गशीर्ष माह की कृष्णा 1 को राणा और सामन्तो द्वारा मुहूर्त का शिकार अथवा अहेरिया के मुहूर्त से माहपर्यन्त शिकार-यात्राएं की जाती थी।[1]

दिसम्बर-जनवरी की हेमन्त ऋतु की पौष शुक्ला 15 को मकर-सक्रांति पर्व जनवरी फरवरी की शिशिर ऋतु के माघ शुक्ला 5 को बसन्त पंचमी के दिन धार्मिक मेले तथा सामाजिक उत्सव आयोजित किये जाते थे।[2] इसी माह मे मेवाड-डूंगरपुर राज्य की सीमा-स्थित बेणेश्वर महादेव का मेला लगता था। फरवरी मार्च के फाल्गुन माह की कृष्णा 14 को एकलिंगजी मे शिवरात्रि का मेला[3] तथा शुक्ला 11 को आहड मे आवली एकादशी पर्व पर भील जाति का मेला लगता था। मार्च अप्रेल मे बसन्त ऋतु की चैत्र माह की कृष्णा 1 को धुलंडी उत्सव तथा 7 8 को शीतला-पूजन पर्व के साथ मेलों उत्सवों तथा त्यौहारों का ऋतुचक्र पूर्ण हो जाता था।

मेले त्यौहारों का सामाजिक आर्थिक महत्व

उपरोक्त त्यौहारो एवं उत्सवों मे जन जीवन का उल्लास, जीवन को मानसिक एवं आध्यात्मिक संतुष्टि प्रदान करता था। स्थान स्थान पर पर्वों पर लगने वाले मेलो म लोग सामाजिक मेल मिलाप का लाभ उठाते थे, साथ ही उनकी सामाजिक आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति भी होती थी।[4] सामाजिक धार्मिक पर्वों पर जहा लोगों द्वारा स्नान, संध्या देव दर्शन,

---

1 उपरोक्त प 660-661 वी वि, प 133

2 एनाल्स, उपरोक्त, पृ 697 698, वी वि पृ 134, नाथूलाल व्यास संग्रह रजि न 7, पृ 42

3 एनाल्स उपरोक्त, पृ 660 661 वी वि, पृ उपरोक्त।

4 अखमेद री क्या (ह प्र) पत्र 11। तीज गणगोर, जन्माष्टमी, आंवली एकादशी, दवझूलनी ग्यारस, हरियाली अमावस पोषी इतवार आदि पर्वों पर लगने वाले मेलों मे आमोद प्रमोद के लिए नट नटनियो के खेल-तमाशे तथा हटवाड (बाजार) मे वस्तु क्रय विक्रय, यातायात की विविधावस्था के कारण इन मेलो मे परिचितों और सम्बन्धियों का मेल-मिलाप, न्यात पचायतो की गोष्ठिया आदि कई काय सम्पन्न होते थे।—सदाव्रत सांवल गौरी री वात (ह प्र) पत्र 9 मनोरथवल्लरी (ह प्र), पत्र 194 भीम विलास, पद 54 पृ 19, याटे—मेवाड़, पृ 72, वी वि, पृ 126

भजन कीर्तन, दान पुण्य के रूप मे सात्विक धार्मिक जीवन दिखाई देता था[1] वहां नृत्य-गायन खेल-कूद, खान पान और गोठो मे[2] उल्लसित सांस्कृतिक जीवन छोटे-बडो का भेदभाव समाप्त कर देता था। त्यौहार पर्वों तथा उनकी ऋतुओ पर भिन्न भिन्न प्रकार के वस्त्र पहिनना भी जीवन के वैविध्यपूर्ण रगों को प्रकट करता था। यद्यपि साधारण जन आर्थिक विपन्नता के कारण अभिजात वर्ग जसे नानावर्णी कपडे नही पहिन सकत थ कि तु राज्य में पगडी प्रथा के प्रचलन के कारण, वृहत् ग्राम और ग्राम्य-नगर की बस्तियो मे पुरुषो द्वारा तीज पर लहरिया दशहरे पर मभल छपाई, होली पर पीली, बसत पचमी पर केसरिया, वर्षा ऋतु म हरी या कसुमल,

---

1 भीम विलास, पद 257; पृ 74, वी वि, पृ 124, 129, 132, 134

2 धार्मिक पर्वो पर मन्दिर मे नृत्य हेतु भगतणें रखी जाती थीं (हुकुम की बही वि स 1931 ब रि। बस्ता 4)। अभिजात वर्ग में पर्वों पर वेश्याए नचाई जाती थी (जग विलास पत्र 10, भीम विलास पद 47, पृ 13, वी वि, पृ 135)। साधारण वर्ग लोक नृत्यो का स्वय सचालन कर अथवा देख-सुन कर मस्त रहता था। ऐसे लोक नृत्यो मे जनमाष्टमी पर रास लीला व डडिया नृत्य, गणगौर पव पर घूमर दीपावली पर भवाई और चग नृत्य तथा होली पर घेर-नृत्य रहे थे। कुछ जातिगत नृत्यो में गरबा पारीख नागर ब्राह्मण, भोई माली, मोची जातियो द्वारा (भीम विलास, पद 33 पृ 8; उदयपुर, छ 36-39) व भीलो द्वारा गवरी, गरासिया द्वारा वालर कालबलियो द्वारा इडोणी नृत्य आयोजित किये जाते थे। धुलहरी और जमरा बीज का पव तो नित्य ही उन्मुक्त त्यौहार रह थे जिसमें औरतो व आदमियो की भद्दी मजाकें व गालियों के गीत गाने की स्वतन्त्रता थी (वी वि पृ 135)। खान पान और गोठों के लिये सभी त्यौहारो म जन जीवन द्वारा सग-सम्बधियों और मित्रों को आमत्रित किया जाता यद्यपि इसमे व्यय आतिथ्य करने वाले की आर्थिक स्थिति एव स्तर पर निर्भर रहता था। —जग विलास (ह प्र) पत्र 23, सदाव्रत सावलगोरी री वात (ह प्र), पत्र 40 जगदेव पुवार री वात (ह प्र) पत्र 25, श्यामलदास कलेक्शन—नगीना बाडी की चोपन्या क्र 212, एनाल्स भा 3 पृ 1656, वी वि, पृ 122 124 25, 130-31, 133, कोठारी, पृ 103-111

सर्दियो मे कसुम्बी व गर्मियो मे केसरिया पगडी पहिनते थे। इसी प्रकार अक्षय तृतीया व बसन्त पचमी पर्व पर पीत वर्ण के कपडे, शरद्पूर्णिमा को सफेद कपडे पहिने जाते रहे थे।[1] स्त्रियो मे भी तीज पर लहरिया-ओढ़नी (साडी) होली पर फालगणिया बसत पचमी पर पीलिया ओढ़नी पहनी जाती थी।[2] त्यौहारो-उत्सवो पर घर की सफाई-पुताई के साथ नवीन अलकरण भी किया जाता था, इन अलकरणों मे माडणा बनाना विशेषत प्रचलित रहा था।[3] मेलो मे धर्मनिरपेक्ष जीवन दिखाई देता था उदाहरणार्थ—जहां ऋषभदेव का मेला आदिवासी भीलो और हिन्दुओं का जातिगत सम्मेलन रहा था वहां मात्रिकुण्डिया और तेजाजी का मेला किसान, शिल्पी तथा दस्तकारो का वर्गगत सम्मेलन था। निष्कर्षत लोगो का जीवन इन पर्वों और त्यौहारो के साथ-साथ नवीन उत्साह और उमग से भर कर काम से मोक्ष की ओर बढता रहता था।

वस्त्राभूषण तथा शृ गार

वस्त्रो, आभूषणों तथा प्रयुक्त किये जाने वाले शृ गार-प्रसाधनो द्वारा मानव का सामाजिक आर्थिक स्तर व स्थान के साथ ही लोगों का सांस्कृतिक रुचियो के लक्षण स्पष्ट होते हैं। हम इसी रूप में इसका अंकलन करेंगे—

(क) वेश भूषा पुरुष वर्ग—अभिजात एव कुलीन लोगों की वेश भूषा पर मुस्लिम तथा हिन्दू वेशो का सम्मिलित प्रभाव दिखाई देता था। आलोच्यकालीन वेश भूषा का विशद् चित्रण प्रताप सग्रहालय, उदयपुर की मुख्य गेलरी मे लगे राणाओ के चित्रो तथा जनाना महल उदयपुर में प्रदर्शित विभिन्न कलम चित्रा द्वारा प्रकट होता है। वेश भूषा पहिनने के आगिक

---

1 कपड कुतूहल (ह प्र) पत्र 7-8, वर्षा ऋतु रा दोहा (ह प्र) पत्र 87 अ, फुटकर कविता (ह प्र श्र 2508), पत्र 85, श्यामलदास कलेक्शन, न 292 (राणा अरिसिहजी री हकीकत), नाथूलाल व्यास सग्रह, रजि न 2 प 24-26, रजि न 7, पृ 41-44, एनाल्स, भा 2, प 758-759, वी वि, प 123 127, 131, 133, कोठारी, प 110

2 कपड कुतूहल, उपरोक्त पत्र 7-9, सदाव्रत सावलगोरी री वात (ह प्र) पत्र 9, चन्द्र कुंवर री वात (ह प्र), पत्र 55-56, एनाल्स भा 2, पृ 676

3 सहीवी, पद 13, भीम विलास, पद 271, प 79

स्थानों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—(अ) सिर, (ब) गदन से कमर तक धड़ का मध्य भाग तथा (स) कमर से पैर तक का निम्न भाग।

(अ) सिर पर विभिन्न त्यौहारों और उत्सवों पर पहनी जाने वाली पगड़िया का उल्लेख पहले किया जा चुका है। किन्तु बाधने के ढग के अनुसार इनको अलग अलग नामों से जाना जाता था। राणा अमरसिंह द्वितीय के पूव प्रचलित उदयशाही तथा अमरशाही पगडी[1] दरबारी वेश-भूषा के लिये अधिकृत रही थी। 18 वी शताब्दी मे राणा अरिसिंह द्वारा अरसीशाही[2] 19 वीं शताब्दी में राणा भीमसिंह द्वारा भीमशाही स्वरूपसिंह द्वारा स्वरूपशाही पगडी[3] दरबारी वेश के लिये अधिकृत की गई थी। विभिन्न सामन्तो द्वारा अपनी-अपनी जागीरो मे क्षत्रिय पगडियो का प्रचलन किया गया था। इन पगडियो म सलुम्बर की चूण्डावतशाही, देवगढ की जसवन्तशाही कानोड की माडपशाही बदनोर की राठौडी भसरोडगढ की मानशाही तथा बनेडा की हमीरशाही पगडिया उल्लखित रही थीं।[4] महाराणा

---

1 इस पगडी का खग सिर के दाइ ओर रहता था। इस खग में 'जरी लगी रहती थी। पगडी पर तीन पछेवडिया और सामने चन्द्रमा बाधा जाता था। अमरशाही पगडी 12 हाथ की और उदयशाही 20 हाथ लम्बी होती थी। अमरशाही पगडी के पीछे पासा तथा मध्य म जरी लगाई जाती थी। इसमे दो पछेवडिया बाध कर खग म मोतिया की लड व किरण लगाते थ।

2 इसम ऊपर निकला हुआ खग तीखा रुईदार होता था। इसके अन्दर के आटो मे रुई रखी जाती थी। इसम तीन पछेवडियां मोरछल मोती कलगी आदि जड़ाऊ जेवर बाध जात थ। राणा भीमसिंह तक यह दरबारी पगडी रही थी।—एनाल्स भा *1*, पृ *409*

3 भीमशाही और स्वरूपशाही में खग का अन्तर था—भीमशाही मे खग सिर को ढक लेता था वहा सरूपशाही म खडा रहता था। दोनो ही पाग बटदार थी। स्वरूपसिंह सिर को आराम प्रदान करती थी। यह पगडी अध्ययनकाल के पश्चात् तक चलती रही थी। 20 वी शती के चौथे दशक मे राणा भूपालसिंह द्वारा भूपालशाही नामक साधारण पहिनने की परम्परा डाली गई थी जिसका प्रचलन त्यौहार मेलो व उत्सवो म आज भी देखा जा सकता है।

4 चूण्डावतशाही में कपडे की इमली तीन पासे पासो व सिर पर जरी

महलो मे प्राय 'बखेरमा' पगडी बाधे रहता था।[1] सामन्तिक पगडियो पर सोने-चादी के चन्द्रमा सरपेच, बाला बन्द, फतहपेच भामली, सुनहरी रूपहरी तारो के तुर्रे, मांभा पछेवडी, दुगदुगी, लटकन सुनहरी छोगा पक्षो की कलगी आदि बाधी जाती रही थी।[2] पगडी आभूषण पहिनने का विशेषाधिकार राणा द्वारा स्वीकृतिपूर्वक प्रदान किया जाता था।[3] द्विज

1

तथा सामने भाग्या रहता था। इसम तीन पछेवडियां, च द्रमा, कलंगी, लटकन व जडाऊ आभूषण बांधे जाते थे। जसवन्तशाही बगर इमली क बांधी जाती थी जिसमे खग पगडी का ही रहता था। माडपशाही म तीन पासे और जरी लगाई जाती थी इसका भग्या' दाइ ओर रहता था राठौडों का बन्धज बाइ ओर होता था। मानशाही पगडी बटदार, इमलीविहीन तथा गुम्बजा आकार भाटा से ब धी हुई खडी पगडी थी। हमीरशाही अरसीशाही पाग का समान रूप रहा था।—अप रामायण (चित्रित ग्र थ भ्रप्र) पृ 30 56 पुरोहित देवनाथ कलेक्शन— दशहरा रो चोप यो पुरोहित की हस्तलिखित डायरी मज्भमिका, 1971 ई प 156-157 बनडा राज्य का इतिहास पृ 276

1 मज्भमिका उपरोक्त, पृ 156

2 जग विलास (ह प्र) पृ 9, कपड कुतूहल (ह प्र) पृ 184, ब रि —खतावणी पाण्डेजी की ओवरी, बस्ता 3, नाथूलाल व्यास सग्रह, रजि न 2, पृ 17-20 24 26 32-47, रजि न 7, पृ 41-44, श्यामलदास कलेक्शन—क्रमांक 292 (राणा अरिसिंहजी री हकीकत), एनाल्स, भा 1, पृ 429, पुरोहित देवनाथ डायरी (ह प्र), पृ 30-34

3 एनाल्स भा 2 पृ 758-759। इसके दो उदाहरण हमे वीर विनोद मे प्राप्त होते है—(क) सलूम्बर रावत द्वारा जब पगडी पर बगर स्वीकृति के मोती लगाया तो उसे दरबार म प्रवेश करन से पूव ड्योढीदार द्वारा रोक दिया गया था (पृ 2002)। इसी प्रकार (ख) स्वय वीर विनोद के लेखक को राणा सज्जनसिंह द्वारा पगडी म सुनहरी माभा पहिनने का अधिकार प्रदान किया गया था (पृ 184)। इन विवरणो की पुष्टि पुरोहित देवनाथ की डायरी से होती है जो दरबार म आचार-नियम बनाय रखने वाले अधिकारी के वशज थ। प्रदत्त किय अधिकार का उल्लेख व्यक्ति विशेष की मुरजाद म अकित किया जाता था।

जातियों मे ब्राह्मण अधिकतर खुले सिर अथवा खिड़कीदार पगड़ी का प्रयोग करते थे।[1] महाजन साधारण पट्टीदार पगड़ी पहनते थे। किसान पशुपालक व अन्य व्यवसायी फेंटा साफा और निम्न जातियां पोतिया अथवा अगाछा लपेट लेती थीं।[2] 19 वीं शताब्दी की एक कलाकृति म[3] एक व्यक्ति को सिर पर हैट जसी टोप पहिने हुए दर्शाया गया है सभवत उस समय खजूर-पत्तों मे बनी ऐसी टोप का प्रयोग किया जाता रहा होगा। यह चित्र मेवाड़-समाज की वेश-भूषा पर मुस्लिम आग्ल प्रभाव को भी स्पष्ट करता है। 19 वी शताब्दी के उत्तराद्ध म मुस्लिम टोपियों की शली पर आधारित टोपिया पहनने का प्रचलन प्रारम्भ होने लगा था।[4]

(ब) मध्यभाग मे डगलो या डगला डोढ़ी दोवड तथा कोट जसा ढीला जामा' अगरखा और अगरखी पहिनने की परम्परा अभिजात वग मे व्याप्त रही थी।[5] अध्ययनकालीन एतिह्य-साहित्य-स्रोतों एव चित्रित ग्रन्थो[6] म तत्कालीन पहिने जाने वाले विभिन्न वस्त्रों का उल्लेख किया गया है। इनके अनुसार वेश भूषा मे हिन्दू मुगल वेशो का समन्वय रहा था।[7] शरवानी बागा, कमरबधा या इजारबन्द, पेशवाज गावा बगलबन्दी, कुर्त्ता मुगल प्रभाव का स्वरूप था, अन्यथा 18 वीं शताब्दी के पूव मेवाड़ में आच्छादन अग बधन, तथा उत्तरीय पहिना जाता था।[8] 19 वीं शती के अन्तिम दो

---

1 कपड़े की इमली पर यह पगड़ी बांधी जाती थी। इसम रुई का सीधा खग सिर को ढक देता था।

2 एनाल्स भा 3, पृ 1655, ट्रैवल्स इन सेन्ट्रल इण्डिया पृ 143

3 प्रताप सग्रहालय, उदयपुर चित्र वीथिका क्रम 2

4 कोठारी पृ 110 फाटो प्लेट, 19 20 वीं शताब्दी की कलमकारी चित्र—जनाना महल, उदयपुर तथा धाभाई चतुभुजजी सग्रह।

5 सहीवी, पद 27, विजयपुर क कुशालसिंह को लिखा गया राणा अमरसिंह द्वितीय का परवाना वि स 1762 (1705 ई), वैशाख सुदि 10—राजस्थान विद्यापीठ सकलन।

6 कपड़ कतूहल (ह प्र), पत्र 8-अ, मनोरथवल्लरी (ह प्र), पत्र 293, ढोकरी री कथा (ह प्र) पत्र 55, एनाल्स भा 2, पृ 758-759 नाथूलाल व्यास सग्रह, रजि न 7, पृ 42, पुरोहित देवनाथ डायरी, बनेड़ा राज्य का इतिहास पृ 276

7 सो भा भो रा पृ 143

8 उपरोक्त।

दशक के काल मे आंग्ल वेश भूषा का प्रभाव मेवाड़ में दिखाई देने लगा था। इससे सर्वाधिक प्रभावित समाज का अभिजात वर्ग हुआ था। अंगरखियों तथा बगलबन्दियों का स्थान कोट ने और अंगोछे का स्थान गले के रूमाल ने ले लिया[1] जो कि टाई की गांठ जसे गले मे बांधा जाता था। साधारण जन जबला पहिनते थे। ब्राह्मण लोगों म उत्तरीय अथवा मात्र दुसाला लपेट कर मध्यभाग के शरीर की धूप, हवा और सर्दी से सुरक्षा करने का प्रचलन रहा था। यद्यपि अभिजात ब्राह्मण बगलबन्दी पहिनते थे किन्तु घरो म उनका वश साधारण ब्राह्मणो जसा ही रहता था। ग्रामीण-जन बख्तरी अथवा छोटा अगरखा पहिनते थ। भील मीणा आदिवासी तथा निम्न जातियो मे अधिकतर मध्यभाग नगा रखा जाता था। त्यौहार मलो उत्सवो मे इनके द्वारा अगरखा या गमछे का प्रयोग किया जाता था। दरबारी वेश भूषा मे सुनहरी, रुपहरी अथवा कपडे का कमरबधा बाधने की परम्परा रही थी।[2] सर्दी के दिनो मे अभिजात वग द्वारा गुदडी खेस शाल, पामडी दोवड आदि ओढी जाती थी।[3] साधारण जन रेजे का बना हुआ पछेवड़ा अथवा रग या गम लोई ओढते थे।[4]

(स) अधो (निम्न) भाग मे एकलगी धोती दोलगी धोती पहिनने का प्रचलन रहा था।[5] मुस्लिम प्रभावस्वरूप सलवार, घेरदार जामा, पायजामा जांगिया हिन्दू और मुस्लिम समुदाय म पहिना जाता था।[6] आदिवासी भील, ग्रासिया मीणा आदि अपने कटि-भाग को ढकने के लिय 5 10

---

1 रूमाल के पूव गले म सभवत गमछा डाला जाता रहा होगा।

2 सहीकी, पद 27, पुरोहित देवनाथ की डायरी (ह प्र) मेवाड रेजीडेन्सी, पृ 39

3 कपड कुतूहल (ह प्र) पृ 188, श्यामलदास कलेक्शन, क्र 292, नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 7 पृ 41-44

4 एनाल्स भा 2 पृ 812 813। लोई का मूल्य 19 वी शती के उत्तरार्द्ध म 4 रुपय से 60 रुपय तक रहा था।—वी वि, पृ 1670। आधुनिक काल म भी साधारण जन इसका प्रयोग करता है।

5 सहीकी, पद 27, एनाल्स भा 3, पृ 1630

6 आप रामायण (चि ग्र) पत्र 20-29 37, सदाव्रत सावलगोरी री वात (ह प्र), पत्र 16 23 मेवाड रेजीडेन्सी, पृ 39, वी वि पृ 207

अगुल चौडी एक लगोटी का प्रयोग करते थे।[1] किन्तु ग्राम वातावरण से प्रभावित आदिवासी लगोट के स्थान पर छोटी धोती बाधते थे। इसी प्रकार की छोटी धोती ग्राम्य जनो द्वारा पहनी जाती थी जो 'पोत्या' कहलाती थी। सैनिक वग के लोग एव दाम घटनो तक का जागिया या धोतिया पहिनते थे।[2] अभिजात कुलीन वग के लोग पावो मे मखमली रुई या कुरमसाभर की खाल की जूतियां और मोजडी पहनते थे। यह जूते जि ह कि पगरखा' कहा जाता था पष्ठ भाग मे खुले हुए होते थे। 19 वी शताब्दी मे ब द मोजडी लम्बे बूट चप्पल आदि का प्रचलन हो गया था किन्तु इसे शौकियाना प्रवत्ति म गिना जाता था।[3] अ यथा निम्न जातिया अधिकतर नगे पाव जावन यतीत करती रही थी।

(ख) वेश भूषा स्त्री वग—अध्ययनकाल मे साधारणत स्त्रियो की पोशाक मे ओढनी (साडी) काचली घाघरा अथवा लहगा मुख्य परिधान रह थे।[4] स्त्रियो की पोशाकें भी अलग अलग आर्थिक स्थिति और स्तर के अनुपात में कीमती वस्त्र तथा साधारण वस्त्र पहिने जात थ। अभिजात वग की स्त्रिया सुनहरी और रुपहरी तारो के काम किये हुए जरी के कपडे पहिनती थी। काम किये हुए वस्त्र तथा उनकी किस्मो के अनुसार उ ह अतलस जामदानी, कीमखाब टसर, पारचो छींट, मसरु चीक, इलायचो, बापता मलमल, नसबो मु गीपटण मुलतानी, साखो, सालु आदि कई विभिन्न वस्त्रो को अलग-अलग नाम द्वारा जाना जाता था।[5] राजपूत स्त्रियो में लम्बी कुर्तो छोटी साडी तथा कई सलवटों वाले पायजामा जैसी घाघरी

---

1 ट्रेवल्स इन सेन्ट्रल इण्डिया, पृ 143

2 उपरोक्त पुस्तक म अकित तत्कालीन वेश का रेखा-चित्र।

3 जग विलास (ह प्र), पत्र 6, सहोकी प 27, आप रामायण (प्र चि), पत्र 27 एनाल्स भा 2 पृ 759, 19 वीं शताब्दी क कलमकारी चित्र—धाभाई चतुभु जजी एव सीकलीघर सग्रह।

4 कपड कुतूहल पत्र 7 8 9, श्यामलदास कलेक्शन, क्र 292, नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 7 पृ 41-44 व रि जनानी आगोल्या री ओवरी नामो वि स 1919 (1862 ई) हिसाब कपड भण्डार बस्ता 3 एव 4, एनाल्स, भा 3, पृ 1727, 1729

5 उपरोक्त।

पहिनी जाती थी।[1] यह वेश राजपूत स्त्रियो मे मुगल वेश भूषा के प्रभाव को दृष्टिगत कराता है।[2]

आलोच्यकालीन चित्र ग्रथो म[3] उद्धत चित्रणों से स्पष्ट होता है कि साडी का एक छोर पटला' लगा कर घाघरे' के साथ बधा रहता था दूसरा छोर हाथ की बगल से सिर पर होता हुआ वक्ष ढकने के काम लिया जाता था। वक्षस्थल के छोर पर सु दर छपाई और किमखाब का काम किया हुआ होता था।[4] तत्कालीन फैशन का स्वरूप प्रकट करने वाली छपाई विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक आकृतियो द्वारा व्यक्त की जाती थी। समाज म उच्च और कुलीन वर्गों म घू घट प्रथा होने के कारण साडी के पल्लु से सिर ढका जाता था।[5] द्विज जातियों म कांचली और कुर्ती के स्थान पर आधी अथवा पूरी बाहो की अगरखी पहिनने का प्रचलन भी विद्यमान रहा था। 19 वी शती के आंग्ल प्रभावत कब्जा पहिनने में स्त्रिया रुचि लेने लगी थीं क्योकि इसके पहिनने के पश्चात् पामडी दुशाला अथवा लोर्ट द्वारा सर्दी से शरीर रक्षा की आवश्यकता नहीं रहती थी। कपड कुतूहल में एक परिधान के अलग अलग नाम प्राप्त होते हैं[6] जो सम्भवत तात्कालिक जातिगत प्रचलित नामो की सज्ञाए रही होंगी। साडियों के रग और छपाई के अनुसार धारीदार साडा को लहरिया, पीली साडी को पीलिया लाल

---

1 आप रामायण (चि ग्र) पत्र 2 एव 5, सती चबूतरा—जनरल हास्पिटल एव अलका होटल, उदयपुर के फाटक के साथ सहीवाला भा 1, पृ 95

2 सो ला मी रा, पृ 349 350

3 कृष्ण-चरित्र (चि ग्र) स्वकीया और परकीया नायक नायिकाओ के चित्र क्रम 18-19 कवि-प्रिया (चि ग्र), पत्र 13

4 यह छपाई लकडी के नक्काशीयुक्त चौरस या गोल ब्लॉको से की जाती थी। यह काय छीपा जाति के लाग करत थे।

5 सदाव्रत सावलगोरी री बात (ह प्र) पद 75 पत्र 18, वारता वीरोचन्द मेहता री (ह प्र), पत्र 60, एनाल्स भा 2, पृ 758-59, भा 3, पृ 1727

6 कपड-कुतूहल (ह प्र) पत्र 7 अ 8 9 10। साडी को चीर, चोरसो, चुनडी, चोल दुकूल वृक्षावरण को कचुकी, चोली, कांचली, अधोवस्त्र को घाघरा, घाघरी लहगा आदि।

किनारी साडी को फागणिया, पोमचा, कसुमल (गहरी लाल) तथा विविध छपाई वाली साडियो को माखोभात, फूलभात बूटाभात कहा जाता था।[1]

कृषक एव पशुपालक जातिया निम्न जातियो तथा आदिवासियो मे स्त्रिया घुटनो तक घेरदार घाघरा पहिनती थीं। उनकी साडी लम्बाई में छोटी होती थी जिसे लुगडा' कहा जाता था। विधवा स्त्रिया काले, सफेद रग की छीट तथा पक्के रग मे रगा हुआ हरा या लाल कपडा पहिनती थी। उसके लिये शृगार करना वर्जित था एक प्रकार से वह सन्यास-व्रत का पालन करते हुए त्याग का जीवन व्यतीत करती थी।[2]

अभिजात वग की स्त्रियो मे सुनहरी काम किये मखमल, कुरम अथवा साभर की जूतिया पहिनने का प्रचलन था। कृषक पशुपालक तथा ग्राम्य स्त्रियो मे जरबी' पहिनी जाती थी। किन्तु अधिकतर स्त्रियाँ बगर जूतियो के चलती-फिरती और काम करती थी।[3] इसका प्रमुख कारण साम तशाही सामाजिक वातावरण था बडे बूढो के सम्मुख स्त्रियो का जूत पहिनना पुरुषो के प्रति अमर्यादा दिखाना माना जाता था। यद्यपि कृपक एव पशु-पालक जाति की स्त्रियो पर इसका कठोर प्रतिबन्ध नहीं था परन्तु राजपूत जागीर ग्रामो म वह जूतो को पहिन गाव मे चल फिर नही सकती थी। स्त्रियो की दलित सामाजिक स्थिति का यह दृष्टान्त पुरुषो को अधिकारी तथा स्त्रियो को अनुचरी' वग के वर्गीकरण म प्रतिस्थापित करता था।

शृगार एव आभूषण

मेवाड के समाज मे पुरुष एव स्त्रियो द्वारा सौन्दय-प्रसाधनो के लिए विभिन्न सुगन्धित पदार्थों का उपयोग किया जाता था। चादणी, चमली और चन्दन के तल का प्रयाग धनिक वर्गों मे किया जाता रहा था।[4] विभिन्न प्रकार के इत्रों और सुगन्धियों का वणन हम तत्कालीन स्रोतो से उपलब्ध

---

1 उपरोक्त, पत्र वही लोकगीत पृ 77 मेनारिया—राजस्थानी साहित्य का इतिहास, पृ 203

2 वो वि, पृ 189

3 आप रामायण पत्र 5, 16, 25 27, 29, डोकरी री कथा पत्र 55, पुरोहित देवनाथ कलक्शन—हू लि डायरी एनाल्स, भा 2 पृ 759, मेवाड रेजोडेन्सी, पृ 39

4 जग विलास 81 पृ 7, बारहमासी रा दूहा पत्र 149, सदाव्रत सांवल गोरी री वात, पत्र 12 म।

होता है इनमे गुलाब और चन्दन के इत्र प्रसिद्ध रहे थे।[1] स्नान, उबटन और लेप म केसर, कुकुम और अरगजा का प्रयोग अधिक किया जाता था।[2] कलात्मक फुदनो और फूलो से वेणी गूथना स्त्रियो मे प्रिय रहा था। अभिजात एव साधारण वग की स्त्रियो में आखो मे काजल और सुरमा का अजन तथा भाल पर कुकुम टीकी लगाने की समान प्रवत्ति रही थी।[3] मेहदी का प्रयोग सभी वर्गों मे प्रचलित रहा था। पुरुषो मे भी मेहदी लगाने का शौक रहा था। महदी शृगार के साथ-साथ स्वास्थ्य के लिये भी हितकर थी इससे व्यक्ति के शरीर म ठड की तासीर बनी रहती थी। पुरुषो मे पचकशी (बटे हुए बाल) दाढी और मूछें रखना पौरुष का प्रतीक माना जाता था।[4] किन्तु 19 वीं शताब्दी के उत्तराद्ध मे आग्ल फैशन के प्रभावस्वरूप दाढी के स्थान पर गलमुच्छें रखने का प्रचलन बढने लगा था।[5] सिर के बाल साफ करने के पश्चात् चेहरे बनवाना भी लोगो का शौक रहा था। धनाढय लोगो द्वारा दातो को सोने से मढवाने का प्रचलन भी विद्यमान रहा था।[6]

शरीर-शृगार के लिए आभूषणो का प्रयोग स्त्री और पुरुषो म समान रूप से प्रचलित रहा था। स्वण रजत मोती, हीरा पन्ना, माणक पीतल, कांसा हाथीदांत लाख तथा नारियल के खोपरे से बने आभूपण शिशुग्रा से वद्ध तक सभी लिंगो म पहिने जाते थे।[7] किन्तु सामाजिक-आर्थिक प्रतिष्ठा पद और सम्मान के साथ साथ जातिगत नियमानुसार ही आभूषण धातुओ

---

1 उपरोक्त, पृ वही जगदेव पुवार री वात पत्र 29, बीजा सोरठ री वात पत्र 31, एनाल्स, भा 3, पृ 1735, सहीवाला भा 2 पृ 28 कोठारी पृ 16

2 बारहमासी रा दूहा पत्र 149, चन्द्रकुंवर री वात पत्र 179, सदाव्रत सांवल गोरी री वात पत्र 11 ब बीजा सोरठ री वात, पत्र 31-ब।

3 सहीकी, पद 27, आप रामायण पत्र 7 अ कवि प्रिया पत्र 8, 90, आवमेद री कथा, पत्र 20 चन्द्रकुंवर री वात पत्र 179

4 सहीकी पद 27, आप रामायण पत्र 66, डोकरी री कथा पत्र 56 पुरोहित देवनाथ कलक्शन—ह लि डायरी, ट्रवल्स इन सेन्ट्रल इण्डिया पृ 143 सहीवाला, भा 1, प 83

5 डोकरी री कथा, पत्र 56

6 सो ला मी राज प 155

7 आभूषण—परिशिष्ट।

का प्रयोग किया जा सकता था। वि स 1826 (1769 ई) में राणा प्ररिसिंह द्वारा मराठो को दिये गए विभिन्न प्राभूपणो के मूल्यांकन से पता चलता है कि 18 वीं शताब्दी मे साधारण जन द्वारा स्वर्ण तथा बहुमूल्य धातुओं के प्राभूपणो का शौक स्वप्न मात्र था।[1] ऐसे रत्नजडित एव मूल्यवान प्राभूपणों का शृंगार प्रभिजात वग तथा धनिक लोगों मे प्रचलित था। द्विज जातियो मे चांदी, हाथीदात व लाख के प्राभूपण निम्न जातियों मे चादी पीतल कांसा, लाख तथा नारियल के प्राभूपण तथा दलित व प्रादिवासियों म कासा कथीर व नारियल के प्राभूपण पहिने जाते थे।[2] स्वर्ण पहिनने का सम्मान शासक द्वारा प्रदान किया जाता था।[3] इसी प्रकार भिन्न भिन्न जातियो के लिये प्राभूपण की किस्म तथा विशिष्ट धातु पहिनने की विस्तत सामाजिक नियमो की परम्परा का पालन प्रध्ययनकाल के प्रन्त तक होता रहा था।[4] लोकाचारों के इस सामाजिक नियन्त्रण के कारण राज्य मे साधारण प्रौर लालसाविहीन प्रार्थिक जीवन चलता रहा था। यद्यपि प्राधुनिक दृष्टि से यह सामन्तिक एव राज्य समाज की स्वेच्छाचारी प्रवत्ति का दिखलाते ये परन्तु सामाजिक प्रार्थिक व्यवस्था को बनाय रखने मे मुरजाद पहरीस्त' का महत्त्व गौण नही किया जा सकता है।

आहार एव पेय

समाज में शाकाहारी प्रौर मासाहारी भोजन का प्रयोग किया जाता

---

1 नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 2 प 17-20 24-26 32-47, उद्ध त मूल्य— सिरपच हीरा-पन्ना जडाऊ—50 हजार से 3 लाख, छोगा साधारण या मयूर—4 हजार से 67 हजार चन्द्रमा एक लाख, माला मोतियो की 77024 रुपया, पन्ने, माणक नीलम रुद्राक्ष माला प्रादि, रोजनामा वि स 1919, पाण्डे की प्रोवरी का खाता (ब रि, बस्ता 3)।

2 ट्रेवल्स इन सेन्ट्रल इण्डिया पृ 143, 147

3 सहीवाला, भा 2, पृ 29, 42-43, कोठारी प 15-16, 62, 66, वी वि, पृ 1793, 1801 2116, 2228

4 पहरिस्त राहमुरजाद जात वि स 1909 (1852 ई)। यह पहरिस्त राणा प्रमरसिंह द्वितीय द्वारा बनवाई गई थी तत्पश्चात् राणा हम्मीरसिंह के काल मे सशोधित की गई जिसे राणा स्वरूपसिंह के काल में सशोधित की गई जिसे राणा स्वरूपसिंह के काल में पुनप्रतिलिपित किया गया था—पुरोहित देवनाथ—ह लि डायरी।

रहा था। ब्राह्मण एव द्विज जातियो मे मासाहार पूर्णत वर्जित रहा था। यह दोनो जातियां प्याज और लहसुन भी नही खाती थी।[1] निधन कृषक दस्तकार एव ग्राम्य जन का मुख्य भोजन मक्की अथवा धान की रोटी और चटनी रहा था। मक्की द्वारा घुघरी राब, घाट या था[2] भी बनाये जाते थे। ज्वार, कागणी कोदरा सामा को खाद्य के काम म लिया जाता था। दुधारु पशु पालना लोगो का शौक रहा था अत साधारण वग दूध, दही, तूणी (मक्खन) तथा छाछ और उच्च वग दूध से बने मिष्ठान्न व घी का प्रयोग करते थे।[3] *19 वीं शती की पावणी बहियों*[4] मे उल्लेखित पथ्या (भोजन की कच्ची सामग्री) नामा के अनुसार दरबारी सेवक तथा कर्मचारियो को माहवारी गेहू चावल दाल, शुद्ध घी तेल आदि दिया जाता था। इससे यह कहा जा सकता है कि राज्य कर्मचारियो का आहार कृषक एव दस्तकार से भिन्न प्रकार का रहा था। सुविधा प्राप्त ब्राह्मण महाजन-वैश्य तथा अ य उजली (उच्च) जाति के लोग भी गेहूँ चावल का भोजन खाते थे। इनके भोजन में खिचडी आचार तथा साधारणत उपलब्ध ढोचरा किकोडा चोल की भाजी, बथुआ टिंडोरी आदि की सब्जियो का उपयोग किया जाता था।[5] पयू षणा के दिनो मे लिलोतरी (हरी सब्जिया) धाद्यान्न खाना अहिंसा के प्रति अनास्था माना जाता था। साधारण जन पाषाण वाटकों तथा पत्तल दोनो म खाना खाते थे।[6] भील मीणा हरिजन

---

1 वी वि, प 207

2 मक्की के आटे की बाटी जिसे आक के पत्तों में लपट कर सैंका जाता है, इससे इसका स्वाद मीठा बन जाता है और बगर लगावन के खाया जा सकता है।

3 बारहमासी रा दूहा, पत्र 149 एनाल्स भा 3 पृ 1638, वी वि, पृ 2083, मेवाड रेजीडेन्सी पृ 39, सेन्सेज आफ इण्डिया 1961 राजस्थान, पाट 6-बी प 8

4 ब रि बस्ता 3 4 6, 9 10 द्रष्टव्य।

5 अहिंसा परमोधर्म' सिद्धा तानुसार सायकाल के पश्चात् खान पान स जोव-हत्या का पता नहीं लगता और अनजाने ही कीट-पतग खाये जा सकते हैं इसी धारणा से यह प्रथा प्रचलित थी।

6 आप रामायण पत्र 8, जग विलास, पत्र 23 मेवाडी सवाद पद 2, उदयपुर वणन छद 2-3, सदाव्रत सावल गोरी री वात पत्र 40,

ब्राह्मण, वैश्य, जाट, जरणा गायरी जाति के अतिरिक्त शेष जातियों में शराब पीने का प्रचलन व्याप्त रहा था।[1] अफीम का सेवन और भांग का प्रचलन ब्राह्मण और वैश्यों में विद्यमान रहा था।[2] तम्बाकू का प्रयोग खाने और पीने दोनों प्रकार से किया जाता था। ब्राह्मणों में तम्बाकू खाना वर्जित नहीं था। अन्य जातियां बीडी, हुक्के और चिलम द्वारा तम्बाकू पान करती थी।[3]

विशिष्ट भोजन

विशिष्ट भोजन विवाह सामाजिक-धार्मिक उत्सवों त्यौहारों, पर्वों अथवा अशौच भोज परम्परा के निमित्त बनाया और खिलाया जाता था। आलोच्यकाल में महाराणा जगतसिंह का आतिथ्य करने के लिए किये गये भोज का खर्च 40 हजार रुपया, राणा अरिसिंह के समय में शाह मोतीराम बोल्या द्वारा 275 मरण शक्कर का भोजन, धायभाई रूपा द्वारा मन्दिर प्राण प्रतिष्ठा के समय किये भोज का 35000 रुपया खर्च, राणा स्वरूप सिंह के शासनकाल में कोठारी केशरसिंह द्वारा अपनी पुत्री के विवाह-भोज पर 18 हजार रुपयों का व्यय आदि[4] तत्कालीन अभिजात वर्ग की आर्थिक स्थिति और स्तर को इंगित करने के साथ-साथ साधारण जन से उनकी आर्थिक दूरी के उच्चतम और निम्नतम छोरों को प्रतिष्ठापित करता है। साधारण वर्ग द्वारा किये जाने वाले विशिष्ट भोजनों के खर्च का ब्यौरा प्राप्त

---

1 एनाल्स भा 3, पृ 1633, राणा स्वरूपसिंह द्वारा नशाबन्दी का प्रयत्न किया गया था किन्तु सफल नहीं हो सका था।—वी वि, पृ 2047

2 अमल पानी और भांग पानी की परम्परा का प्रत्येक सामाजिक कार्यों पर निर्वाह आज भी किया जाता है।

3 डोकरी री वथा (ह प्र) पत्र 56, सदाव्रत सावल गोरी री वात (ह प्र) पत्र 17, पद 75-76, जगदेव पुवार री वात (ह प्र), पत्र 27, वारता मदन कुंवर री (अप्र), पत्र 68 कारणा रजपूत री वात (ह प्र) पत्र 30 श्यामलदास कलेक्शन, क्रमांक 292 करणविलास रिकार्ड, वही रोकड भण्डार, वि स 1957 (1900 ई), एनाल्स, भा 2, पृ 788, भा 3 पृ 1633, वी वि पृ 209

4 बोल्या वश री विगत, पत्रांक 3-ब तथा 5-ब, वी वि, पृ 1670, 1673, कोठारी, पृ 38

नहीं होता है किन्तु उन पर लगाये गये सार्वजनिक नियन्त्रणों[1] से यह प्रमाणित हो जाता है कि उनमे भी व्यय खर्च करने की रूढिगत परम्परा विद्यमान रही थी। उनके द्वारा किये जाने वाले ऐसे खर्च उन्हें ऋणग्रस्त बना देते थे[2] फिर भी इन विशिष्ट भोजनों की प्रक्रिया समाज म समाप्त नहीं हो सकी थी।

आतिथ्य और उद्देश्य की दृष्टि से ऐसे भोज मुख्यत पांच श्रेणियों मे विभक्त किये जा सकत हैं—

(अ) प्रसादी—धार्मिक यात्राओ से लौटने पर देवताओं से मन्नत (प्रार्थना) तथा अभिलाषा की प्राप्ति पर बच्चो के मुण्डन सस्कार, रातिजगा (रात्रि जागरण)[3] अथवा ऐसे ही अ य धार्मिक-सामाजिक पर्व पर किये जाने वाला भोज 'प्रसादी' कहलाता था।[4] यह भोज व्यक्ति की आर्थिक स्थिति और प्रतिष्ठा के अनुसार कुटुम्ब परिजनो या स्थानिक स्वजाति को खिलाया जाता था। ताजावर (धनिक) लोगो द्वारा आयोजित प्रसादी के व्यय का उदाहरण हमें वि स 1819 (1762 ई) में प्रभुवारातण वाडी के मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा महोत्सव पर प्रभुबाई द्वारा खर्च किये गये प्रमाण द्वारा प्राप्त होता है।[5] साधारण वर्ग द्वारा प्रसादी भोज मे कितना खर्च किया जाता था इसके प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं किन्तु उनके भोजों मे प्रयुक्त खाद्य सामग्री—गुड की लपसी लड्डू, पूड़ी अथवा बाटी का प्रयोग, कुलीन व अभिजात वर्ग द्वारा प्रयुक्त सामग्री—शक्कर और गुड के पकवानो

---

1 फहरिस्त राह मुरजाद जात, वि स 1909 (1852 ई), उदयपुर के ओसवाल जाति के महाजनों का जाति-प्रब ध (वि स 1955), 1898 ई।

2 उपरोक्त।

3 देवताओं अथवा पित्रों को प्रसन्न करने अथवा उनको नवेद्य चढाने, परिवार के सुख की कामना निमित्त धार्मिक कृत्य करने स्त्रियो और पुरुषों द्वारा रात्रि-जागरण कर भजन कीर्तन गाये जाते थे। यह गीत एक प्रकार से परम्परागत लौकिक प्रार्थना रहे थे।

4 आधुनिक काल में भी यह प्रसादी-परम्परा उदयपुर सभाग मे प्रचलित है।

5 बी बि पू 1670

के साथ-साथ दाल-भात और सब्जियों आदि का विशाल व्यय[1], दोनो वर्गों के आर्थिक अन्तर का स्पष्ट कर देता है।

(आ) उज्जेणी—मेवाड राज्य की आर्थिक व्यवस्था कृषि जीवन पर आधारित रही थी अत राज्य के जन जीवन मे वर्षा का बहुत महत्त्व था।[2] धार्मिक मान्यताओ के अनुसार वर्षा का देवता इन्द्र माना गया है। इसलिए इन्द्र-अचना हेतु कौटुम्बिक सदस्यों का सहभागी भोज या एक परिवार द्वारा अपने सग सम्बन्धियों को उल्लेखित उद्देश्य से दिया गया भाज 'उज्जेणी' कहलाता था।[3] अनावृष्टि या अतिवृष्टि पर इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये परिवार समूहो द्वारा बस्ती के बाहर खेतों या धार्मिक स्थानो पर खाना बना कर, इन्द्र-नवेद्य के प्रतीकात्मक प्रसाद रूप मे यह भोज खाया और खिलाया जाता था। यह भोज परम्परा अधिकतर साधारण वग मे प्रचलित रही थी। इसमें भी प्रसादी के जसे ही गुड से बने खाद्य प्रयुक्त किये जात थे।

(इ) वास्तु—भवन या गह निर्माण के पश्चात् शुभ मुहूर्त पर गृह प्रवेश एव गह शाति क लिये किय जाने वाला सामाजिक भोज 'वास्तु' कहलाता था।[4] वह भोज-परम्परा अधिकतर द्विज जातियो में प्रचलित रही थी किन्तु अन्य जातियों में मात्र गह प्रवेश के रूप में मांगळ भोज किया जाता था। यह भोज भी मागलिक कार्यों तथा घर मे सुख शान्ति बनाये रखने हेतु देव अचनाथ

---

1 कोठारी प 132

2 आधुनिक काल म भी प्रचलित प्राचीन परम्परा का स्वरूप एक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है कि वर्षा नहीं होने पर बस्ती की स्त्रिया कई प्रकार के टोटके (जादू मन्त्र के विश्वास) करती हैं। इनमें रोडो का कचरा तथा पशुओं का गोबर मटकों मे भर कर वणिक की दुकानों के सम्मुख फोडा जाता है। इसके पृष्ठ म तात्पय यह है कि वैश्य वग अकाल से प्रसन्न होता है और इसमें उसे वणिक लाभ मिलता है। इसलिय स्त्रियां लौकिक विरोध प्रकट करने निमित्त यह क्रिया करती हैं कि वह भी इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना प्रारम्भ कर दे। इसी प्रकार यज्ञ-हवन आदि क्रियाए करना वर्षा के महत्त्व तथा उसके प्रति जनधारणा को स्पष्ट करता है।

3 उज्जेणी-भोज की परम्परा के दशन सभागीय दात्रों म अभी तक किये जा सकते हैं।

4 जग विलास—विलास, 305-331

नैवेद्य के रूप में ब्राह्मणों सन्तो और भोपों को खिलाया जाता था। आर्थिक स्थिति और सामाजिक प्रदर्शन की भावना से प्रेरित लोग इसमें स्थानिक स्वजाति और परिजनों को भी आमन्त्रित करते थे।

(ई) गोठ—सामाजिक उत्सवों अथवा पर्वों या किसी भी प्रकार की खुशी आदि पर समान स्तर एवं विचार वाले व्यक्तियों के मध्य किये जाने वाला भोज 'गोठ' कहलाता था।[1] इसी प्रकार विवाह के पश्चात् घर लौटते हुए मार्ग के भोजन को बींद गोठ कहा जाता था।[2] गोठ की भोज प्रक्रिया मूलतः सामाजिक-आर्थिक प्रतिष्ठा पद और प्रदर्शन को व्यक्त करने का साधन रही थी। इसलिए गोठों का खर्च औसत हजार रुपये से बीस हजार रुपये तक किया जाता था।[3] निर्धन तथा निम्न जातियों में इस प्रकार की भोज-परम्परा विद्यमान नहीं रही थी।

(उ) जीमण—सामाजिक-धार्मिक संस्कारों उत्सव-पर्वों पर किये जाने वाले जातिगत और सामाजिक भोज 'जीमण' कहलाता था। जीमण को पुनः अवसर और उद्देश्य के अनुसार विवाह भोज, पाश्चात्यिक (मृत्यु) या करियावर भोज, गोरणी श्राद्ध नारायण बली श्राद्ध आदि में विभक्त किया जा सकता है। व्यक्ति आमन्त्रण के आधार पर ऐसे भोज तीन स्तर में वर्गीकृत होते थे—साधारण, बड़ा और प्रतिष्ठित (चौरासी)।

परिवार या व्यक्ति द्वारा गांव की सम्पूर्ण स्वजाति को दिया जाने वाला भोज साधारण माना जाता था। जबकि स्थानीय स्वजाति के साथ चौखला की जाति को खिलाया जाने वाला भोज बड़ा माना जाता था।[4] प्रतिष्ठित

---

1 बात संग्रह (ह. प्र.) पत्र 90 श्यामलदास कलेक्शन—नगीना बाडी के रोजनामचा को चोपयों वि. स. 1819 (1762 ई.) क्र. 212 एनाल्स भा. 3 प. 1656 वी. वि., पृ. 123-124, 133, कोठारी पृ. 67 133

2 द्रष्टव्य—परिवार विवाह एवं प्रथाएं।

3 वि. स. 1918-1919 (1861-62 ई.) का हिसाब—कोठारी कलेक्शन रा. रा. अ. उदयपुर।

4 धायभाई पुल के मन्दिर की प्रशस्ति वि. स. 1820 (1763 ई.) में उल्लेखित "यात मेला करना बड़े जीमण का उदाहरण है (वी. वि. प. 1673)। बावनी (52 जाति या 52 गाँव) चौरासी (84 जाति या गाँव) को भोज दिये जाने के उल्लेख इस सन्दर्भ की पुष्टि करते हैं। —कोठारी, पृ. 38

भोज मे स्वजाति के अतिरिक्त अन्य जाति के सदस्य आमंत्रित किये जाते थे।[1] अभिजात वर्ग में प्रतिष्ठित भोजो का खर्च 10 हजार से 1 लाख रुपया औसत तक किया जाता था।[2] साधारण जन राज्य-नियंत्रण के कारण बगैर स्वीकृति के प्रदर्शनात्मक खर्च नहीं कर सकते थे, फिर भी उनके द्वारा भी हजार रुपया औसत खर्च कर दिया जाता था।[3] आदिवासियों एवं अछूत जातियों में साधारणतः मक्की या धान की बाटी का जीमण किया जाता था।[4]

सामंतिक भोज परम्परा[5]

अभिजात वर्ग के विशिष्ट भोज विविध प्रकार के व्यंजनो से युक्त होते थे। इन व्यंजनों में पंच पकवान पंच शाक पंच दाल आदि के रूप में पंच भोग बनाने की परम्परा प्रमुख रही थी।[6] घेवर, जलेबी, फीणी खाजा, लड्डू मोतीपाक के मिष्ठान्न प्रतिष्ठा के प्रतीक थे अन्यथा मेवे-मिश्रित गुड़ की लपसी, लड्डू का भोजन साधारण रूप मे किया जाता था। खीर, *श्रीखण्ड, मलाई पूआ, हलवा आदि मिठाइयां भी आलोच्यकालीन सामंतिक* भोजो मे प्रयुक्त होती थी। चावल, चावल फुलाव, केसरियाभात, खिचड़ी,

---

1 उपरोक्त पृ 103-111

2 द्रष्टव्य—परिवार, विवाह एवं प्रथाएं।

3 फहरिस्त राहमुरजाद जात, वि स 1931 32 (1874-75 ई) में नवला डांगी की मां के करियावर पर उसके द्वारा 40 मण गुड़ के मालपुए बनाये गये थे।—कणविलास रिकार्ड—कपासन परगना री लागत री बहिड़ो।

4 यह भोजन सहयोग की भावना से संचालित होता था जिसमे प्रत्येक घर से पेट्या जाता था और उसे ही बना कर आपस में बांट कर खा लिया जाता था। यह क्रिया एक प्रकार से शोक दिनो मे दुःखी परिवार की आर्थिक सहायता एवं उल्लास में सुख मे हिस्सा बटाई की परम्परा थी।

5 मनोरथवल्लरी (ह प्र), पत्र 13-14, आप रामायण (ह प्र), पत्र 8 अ, जग विलास—विलास पृ 305-329, भीम विलास प 61 75, पद 197, 253-58, मेवाड़ी सवाद, पद 2, बात संग्रह, पत्र 345

6 पंचभोग बनाना व्यक्ति की विशिष्टता के चिन्ह माने जाते थे।

मक्कोल पूड़ी, पराठे, पूड़ी, दूपड दालो में उडद, चना, मूग तथा चवला, सब्जियो मे कद्दू बैगन करेला, गोभी, सूरण, अरवी, रताल् आदि की सब्जियां विशिष्ट भोजो में बनाई और खिलाई जाती थीं। आम का अमरस शबत ठडाई, मठा रायता और दही के साथ पोदीने, आम, इमली आदि की चटनी आचार व मुरब्बो मे विभिन्न सुगध डाली जाती थी।[1] मूग, चने, उडद के पापड मीठी पपडिया शक्करपारे, गूजे आदि भी भोजन में सम्मिलित रहते थे। मासाहार म बकरे हिरन सूअर, तीतर, बत्तख, मछली आदि के मास को काम म लाया जाता था। उच्च साधारण वग का भोजन अधिक से अधिक एक मिष्ठान्न चावल, पूडी और साग-दाल युक्त होता था।

मागलिक अवसरों पर किये जाने वाले भोज में भोजन के साथ-साथ राग-रग का आयोजन करना सामतिक परम्परा की प्रमुख विशेषता रही थी। ढोलनियो द्वारा गायन-वादन अथवा भगतणो द्वारा नत्य दखत हुए भोजन करना, भोजन के पश्चात् मुजरे सुनना आदि का वातावरण मुगल-दरबारी भोज-गोष्ठियो का मवाडी सामत समाज पर लाक्षणिक प्रभाव परिलक्षित होता है।

प्रकरण के सपूर्ण विवेचन के निष्कष मे कहा जा सकता है कि मेवाड का सम्पूर्ण समाज सामाजिक-आर्थिक स्तर और स्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार के वर्गों मे वर्गीकृत रहा था। बस्ती के अनुसार वह ग्रामीण तथा नागरिक वग म, स्तर के अनुसार वह साधारण तथा विशिष्ट तथा इसमें भी किसान व्यवसायी, कमचारी अधिकारी, अभिजात कुलीन तथा सामत श्रेणियो मे विभक्त रहा था। आर्थिक दृष्टि से प्रथम वग आभिजात्यों का रहा था। इसमें राज्य-कृपापात्र उच्च अधिकारी तथा धन-सम्पन्न द्विज जाति क लोग एव राज्य-शिल्पी और दस्तकार लोग थे। द्वितीय वग मे आभिजात्यों के आश्रित द्विज तथा कृषक पशुपालक, शिल्पी और दस्तकार लोग थे। ततीय वग में समाज एव बस्ती-परित्यक्त जाति के लोगों के साथ आदिवासी दास दासी तथा खेतिहर मजदूर (हाली) सम्मिलित किये जा सकते हैं। सभी वर्गों की सामाजिक आर्थिक प्रतिष्ठा और पद उनके मकानो पहिनावों तथा उनक द्वारा किये जाने वाले भोजों में दिखाई देता था। मेवाड का जन-जीवन ग्राम्यावरण लिप्त रहा था अत उनक जीवन का स्वरूप आर्थिक आत्मनिर्भरता और पारस्परिक सहयोग का सामुदायिक अभिव्यक्तियों म प्रकट होता

---

1 चटनी आचारो में गम मसाले तथा मुरब्बों में केशर, बरख आदि डाले जाते थे।

[illegible]

अध्याय 7

शिक्षा-प्रचलन और प्रबन्ध

सामाजिक आर्थिक जीवन के मूल्य व्यवहार और विश्वासों को जन-मानस की मानसिक परिपक्वता के संदर्भ में देखा जा सकता है। यह परिपक्वता 'सामाजीकरण' की अन्त और बाह्य क्रियाओं से उपार्जित अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त होती है। शिक्षा जीवन के इन्हीं अनुभवों और प्रशिक्षण का एक स्वरूप है वस्तुतः शिक्षा किसी भी समाज के लिए दो प्रकार का कार्य करती है। पहली पूर्वजों द्वारा संचित ज्ञान को नई पीढ़ी को हस्तांतरण तथा पूर्व ज्ञान के आधार पर नए ज्ञान की सृष्टि। अनौपचारिक शिक्षा का सारा स्वरूप इन्हीं संदर्भों के साथ जुड़ा हुआ है। जैसे-जैसे विश्व विशेषीकरण की ओर अग्रसर होने लगा वैसे वैसे अनौपचारिक शिक्षा का विस्तार भी होता चला गया जिसे दूसरे शब्दों में हम आधुनिक शिक्षा के नाम से जानते हैं। व्यावहारिक शिक्षा का ज्ञान उद्देश्य नैतिक आध्यात्मिक अथ संतुष्टि और बौद्धिक विकास युक्त मानव को सामाजिक मानव बनाना कहा जा सकता है। 18 वीं सदी के एक प्रतिलिपित ग्रन्थ मधुमालती द्वारा मेवाड़ के सामाजिक जीवन में शिक्षा का उद्देश्य आनन्द ज्ञान और जीविका-निर्वाह उल्लेखित किया गया है।[1] इसकी पुष्टि अन्य परवर्ती स्रोतों द्वारा भी होती है।[2] 1863 ई. के पूर्व तक शिक्षा का संचालन समाज द्वारा किया जाता था न कि राज्य द्वारा।[3] इस प्रकार परिवार, जातियां, धार्मिक संस्थाएं और व्यक्ति का आत्मिक इच्छा स्वशैक्षणिक संस्था के रूप

---

1 चतर्भुज—मधुमालती (ह. प्र.), पत्र 74 187 प्रा. वि. प्र. उ., प्रति स. 189

2 कोठारी, पृ. 43, सो. ला. मी. रा., पृ. 266

3 मेवाड़ रेजीडेन्सी पृ. 82। 1900 ई. तक व्यक्तिगत पाठशालाएं, मकतब विद्यमान रहे थे जहां साधारण हिन्दी, उर्दू एवं गणितपाटी का ज्ञान प्रदान किया जाता रहा था। अध्यापक प्रत्येक पाटी पर 1 आना प्रति माह शुल्क लेता था।—गजेटियर रिपोर्ट आफ मेवाड़ (ह. प्र.), पृ. 218

म प्रतिष्ठापित रहे थे। इनके द्वारा लौकिक, व्यावहारिक सैद्धांतिक एव व्यावसायिक आदि विभिन्न प्रकार के ज्ञान प्राप्त और प्रदान किये जाते थे। आलोच्यकाल मे शिक्षा सबधी कई सुविधाए दिखाई देती हैं। काफी काल तक राज्य द्वारा शिक्षा प्रदान करने का कोई दायित्व न था बाद म अंग्रेजी शिक्षा का प्रादुर्भाव हुआ। परिवार, पडित, पाठशालाएं तथा इसी प्रकार की अन्य सस्थाए क्षत्र के प्रमुख साधन थे। इन्हीं सस्थाओं का क्रमबद्ध विवेचन आगे की पक्तियों म प्रस्तुत है—

(अ) परिवार

शिक्षा प्रदाय सस्था के रूप म जीवन को सफल बनाने तथा सामाजिक-आर्थिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिय प्राचीन समय से ही परिवार प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रमुख केंद्र रहा है। इस सस्था द्वारा प्राणी जीवन की नैतिकता, सदाचरण और सामाजिकता का व्यावहारिक पाठ पढता है। वस्तुत *व्यक्तित्व निर्माण की प्रथम पाठशाला के रूप मे परिवार* ही काय करता आया है। परम्परावादी समाज में इस सस्था का महत्त्व शिक्षा की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जबकि जन-विश्वासो, रूढियो और मूल्यों का ज्ञान एक पीढी से दूसरी पीढी मे निरन्तर प्रवाहित होता रहता है। मेवाडी समाज मे भी परम्परात्मक सस्था के रूप म परिवार शिक्षा अर्जन का मुख्य केन्द्र रहा था।

व्यावहारिक ज्ञान

रोटी बनाना कपडे धोना, कपडे सीना अपने छोटे भाई बहिनो की देखरेख रखना, रुग्ण व्यक्तियों की देखभाल करना इत्यादि व्यावहारिक ज्ञान को बालिकाओं द्वारा परिवार मे रहते हुए अपनी मा तथा बुजुर्ग स्त्रियो से सीखा जाता रहा था। नैतिकता सदाचरण और मर्यादा के स्त्रियोचित गुण भी परिवार द्वारा प्राप्त किय जाते थे। उत्सव-गीतो विभिन्न त्योहारों पर अकन किये जाने वाले रग माडनो सझा साथिया (स्वास्तिक) आदि आकृति चित्रण शृगार प्रसाधन मेहदी गृह साज सज्जा परिवार मे उत्पन्न हुए नवजात शिशु का प्रसूति कम तथा कुटीर औषधियो के गुण-अवगुण व प्रयोग का ज्ञान आदि के रूप मे लोक-कला और विज्ञान की प्रायोगिक शिक्षा परिवार के सदस्यो द्वारा ही प्राप्त होती थी। नव विवाहित वधुओं के लिए उनकी सास एव ननदें गृहस्थ धर्म की ज्ञान प्रदाता अध्यापिकाएँ होती थी। सक्षप मे स्त्री के ज्ञान के विकास म परिवार महत्त्वपूर्ण

शैक्षणिक संस्था था।[1] इस संस्था का यह शैक्षणिक स्वरूप आधुनिक स्वच्छंदवादी पारिवारिक प्रवृत्तियों वाले युग में भी समाप्त नहीं हो सका है। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि वर्तमान समय में परिवार के ये समस्त कार्य लोप-से होते दिखाई देते हैं तथा परिवार के इन सदस्यों को इन तथ्यों का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए भी औपचारिक शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है।

बालक भी परिवार से अपनी पैतृक परम्परा, कुल-मर्यादा तथा सामाजिकता का ज्ञान अर्जित करता था। वह अपने दादा दादी माता पिता और अन्य पारिवारिक बुजुर्गों तथा अग्रजों से व्यावहारिक शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक, शास्त्रीय तथा उपयोगी ज्ञान प्राप्त करता था।

व्यावसायिक ज्ञान

मेवाड़ का समाज-संस्तरण मूल रूप में जाति व्यवस्था पर आधारित था।[2] प्रत्येक जाति का कार्य लौकिक धर्म के अनुसार बंधनयुक्त था, यद्यपि उसमें ब्राह्मण द्वारा वणिक कर्म वैश्य(महाजन)द्वारा क्षत्रिय कर्म और क्षत्रिय द्वारा ब्राह्मण कर्म करने पर रोक-टोक नहीं थी। यह तीनों जातियाँ दास और दलित जातियों का कार्य करने पर धर्मच्युत और पतित मानी जाती थीं। कृषि एवं राज्य-सेवा का काम द्विज (उपरोक्त तीनों) जातियों के लिये बाधित नहीं था किन्तु कृषि कर्मी शिल्पी, सेवक तथा निम्न जातियों के लिये कई प्रतिबंध विद्यमान थे। इन प्रतिबंधों का निर्माण तथा पालन जाति-समाज की इकाइयों और जाति पंचायतों के माध्यम से होता था। कहने का तात्पर्य यह कि जाति के परम्परागत कार्यों और सामाजिक नियमों का प्राथमिक ज्ञान बालकों को परिवार द्वारा प्राप्त होता था। ब्राह्मण राजपूत (क्षत्रिय) और वणिक महाजन जातियों में धार्मिक राजनीतिक तथा व्यवसायात्मक कर्त्तव्यों का ज्ञान बालक पित-दीक्षा द्वारा ग्रहण कर लेते थे। इस ज्ञान के लिये उन्हें शास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता नहीं होती थी।

व्यावसायिक ज्ञान और जाति समाज

ब्राह्मण-पुत्र द्वारा पंचांग देखना ज्योतिष का फलित ज्ञान पाठ पूजन-विधि तथा सामाजिक धार्मिक संस्कारों को क्रियान्वित कराने के लिए पौरो-

---

1 शिवचरण मेनारिया—मेवाड़ का इतिहास (अप्र शो) पृ 240

2 द्रष्टव्य—जातियाँ एवं व्यवसाय अध्याय।

हित्य काय करना। राजपूत-पुत्रो द्वारा अस्त्र शस्त्र चलाना, शिकार करना, घुडसवारी और जागीरदारी काय तथा वणिक् पुत्रों द्वारा साधारण लेन देन और व्यापार करने का काय जाति-परिवारों द्वारा प्रदान किया जाता रहा था।[1]

चारण भाट जाति के लोग कवित्त एव पीढी नामा का ज्ञान कायस्थ लोग साधारण लिखने-पढ़ने का काय पित परम्परा द्वारा सीखते और अपने पुत्रों को सिखलाते थे।[2] जाट, जणवा, धाकड, डांगी माली तथा भोई नामक कृषि-व्यवसायी अहिर, गुर्जर, गायरी व रेबारी नामक पशुपालक जातियो के बालक कृषि और पशु सम्बन्धी ज्ञान परिवार के प्रकार्यात्मक अनुभवा से सचय करते थ। इसके अतिरिक्त जाट जणवा, धाकड, डागी जातिया क बालक सूत कातने और कपडे बनाने जैस जुलाही ज्ञान को गृह-प्रशिक्षण मे रह कर प्राप्त करत थे।[3] माली व भोई बागवानी के काय में रेबारी बालक ऊटीया (ऊन का कम्बल) बनान गायरी भेड के ऊन को काटने तथा उससे कम्बल एव वस्त्र बनाने अहीर व गुजर पशुओं की गह-चिकित्सा का सामान्य ज्ञान अपने घर के अग्रज लोगो से व्यवहार एव प्रयोग द्वारा अर्जित कर व्यवस्यात्मक ज्ञान की परम्परा को निरन्तर बनाये रखते थे।

पारिवारिक व्यवसायी ज्ञान का सर्वाधिक प्रचलन शिल्पी और दस्तकार जातियां में विद्यमान था। इन जातियो मे लाख व नारियल की चूडिया बनाने वाले लखारे मुस्लिम जाति के चूडीघर, बधनी की पाग, लहरिया तथा चून्दड पर रंगाई का काय करने वाले रगरेज, कपडों पर छपाई का काय करने वाले छीपा, अस्त्र शस्त्र बनान वाल उस्ता और सिकलीगर लुहार सुथार गाछी वारी आदि के साथ उच्च वग क शिल्पी मे सुनार जडिया पटवा कसारा चित्र बनाने वाले चतारा आदि वशानुगत ज्ञान की परम्परा को पीढी से पीढी को प्रदान करते थे। परम्परागत कौशल के प्रभाव के फलत आर्थिक दृष्टि से परिवार के परिवार विशेष योग्यता से दक्ष बन कर निश्चित व्यवसाय मे पतक विशिष्टता प्राप्त कर लेते थे।[4]

---

1 गजेटियर रिपोट आफ मेवाड (ह प्र) मे सकलित।

2 उपरोक्त।

3 गजेटियर रिपोट आफ मवाड—उपरोक्त।

4 वि स 1788, मागशीष सुदि 1 (1731 ई) का ऋषभदेव मन्दिर मे

सेवक जातियो मे कन्दोई मिठाई बनाने, दर्जियों म सूचिका ज्ञान, नाइयों में प्रसूति परिचर्या ढोली द्वारा उत्सवो पर बजाय जाने वाले वाद्य-वादन आदि का ज्ञान भी परम्परात्मक रहा था।[1]

परम्परागत शास्त्रीय ज्ञान

परम्परात्मक शास्त्रीय ज्ञानो मे लिपि लेखन का ज्ञान प्रमुख था। इस पतृक शिक्षा द्वारा उपार्जित पारिवारिक ज्ञान के प्रमाण हमे राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा उदयपुर मे सग्रहित असख्य ग्रन्थो, उदयपुर सभाग के मन्दिरो मे उत्कीर्ण प्रस्तर प्रशस्तियो तथा ब्राह्मण-परिवारो मे सग्रह किये धर्म-ग्रन्थों द्वारा प्राप्त होते हैं। सुन्दरतम लिपि लेखन और भाषा का शिला-लेखन करने का ज्ञान पीढी दर पीढी चलता रहता था। इस वंश-परम्परा म भट्ट सोमेश्वर भट्ट रामकृष्ण भट्ट पुरषोत्तम आदि के उदाहरण लिये जा सकते हैं जो कि पितृ प्रदत्त ज्ञान के द्वारा प्रसिद्ध प्रशस्तिकार बने थे।[2]

नाट्य एव सगीत जैसी शास्त्रीय विद्या का ज्ञान रावल सरगडा, नट, भील आदि जातियो तथा पातर भगतण के परिवारो मे गृह-शिक्षा द्वारा

वासुपूज्य मूर्ति का लेख (उ ई भा 2, पृ 622), वि स 1819 ज्येष्ठ सुदि 14 का प्रभुवारातण बाडी की प्रशस्ति (1762 ई)—(वी वि, 1669-70), वि स 1847 ज्येष्ठ सुदि 13 (1790 ई) की राम प्यारी बाडी के मन्दिर की प्रशस्ति (वी वि, पृ 2137-38) आदि। ऋषभदेव मन्दिर सलूम्बर भीण्डर कुरावड के आसपास की बस्तियो मे विद्यमान प्राचीन काष्ठ शिल्प के उदाहरण काष्ठकारी परम्परा पत्थर पर खुदाई का काय भीलवाडा मे कासा के बतन बनाने वाले, कुंआरिया मे मिट्टी के बतन बनाने वाल कसारा और कुम्हारो की ज्ञान परम्परा आज भी विद्यमान और प्रचलित है।

1 आधुनिक जीवन में भी इस पारिवारिक परम्पराई व्यवसायात्मक ज्ञान का प्रतिरूप देखा जा सकता है।

2 वी वि पृ 1173, उ ई, भा 2, पृ 622, 639 644 व 663। वश परम्परागत शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त करने वाले परिवारो को राज्य द्वारा भट्ट व्यास, राजज्योतिषी राजवद्य आदि की वशानुगत उपाधिया दी जाती थी। उपरोक्त वर्णित भट्ट रूपजित के वश को 'सस्कृति' कहा जाता था।—उ ई भा 2, पृ 644

वशानुगत चलता रहा था। तुर्रा कलगी, भवई नत्य ख्याल रास आदि गद्यात्मक लोक नाट्य, गवरी, गेर तथा घूमर जसे नत्य नाट्य, बासुरी, थाली मादल एकतारा आदि वाद्य वादन अनुभवजन्य तथा पारिवारिक ज्ञान परम्परा के रूप में ही विद्यमान था।[1]

अन्य ज्ञान

अन्त मे, परिवार और परम्परा से प्राप्त ज्ञान के रूप मे ऋतु विधान सम्बन्धी कहावतें देशी चिकित्सा सम्बन्धी भेषज ज्ञान लोक शल्य चिकित्सा नैतिक-आचरण सम्बन्धी दोहा कहानियों और कथाओं आदि का उल्लेख किया जा सकता है जिनका समाज में सवत्र प्रचलन रहा था।[2] रूढिगत अनुभवो से प्राप्त इस ज्ञान परम्परा का प्रभाव समाज के अन्धविश्वासो, जादू मन्त्र भूत प्रेत तथा प्राकृतिक चिकित्सा की परम्परा मे दिखाई देता रहा था।[3]

(ब) परम्परागत पाठशालाए (सद्धान्तिक शास्त्रीय)

सैद्धान्तिक ज्ञान प्रदान करने वाली शास्त्रीय शिक्षा, प्राचीन भारतीय पद्धति के अनुरूप मेवाड मे भी धर्म का एक अग रही थी। अत शिक्षा के केन्द्र भी धार्मिक-स्थल और धर्माधिकारियो के घर होते थे। उपासरा, मठ मन्दिर,

---

1 पुरुषोत्तम लाल मेनारिया—राजस्थानी साहित्य का इतिहास पृ 197-199 परम्परा—राजस्थानी लोकसाहित्य विशेषाक पृ 4 39। आधुनिक काल में भी यह परम्परा इन जातियो में विद्यमान है।

2 नानूराम सस्कर्ता—राजस्थानी लोक साहित्य पृ 11-12, पूर्णिमा गहलोत—लोकगीत (सपादन), पृ 8-9 12

3 राणा सरदारसिंह पर गोगुन्दा के झाला लालसिंह द्वारा जादू मत्र कराये जाने का आरोप (वी वि, पृ 1891), पाणे री गोपाल द्वारा राणा स्वरूपसिंह पर जादू कराये जाने का आरोप (वी वि, पृ 1957), राणा स्वरूपसिंह का पत्र पोलिटिकल एजेन्ट जाज लारेन्स को (वी वि पृ 2021-22) डाकन भूत और प्रेतो मे समाज का विश्वास (वी वि पृ 2039 40), फोडे पर तेजाब आदि की पट्टी करना (वी वि, पृ 2044), सहीवाला, भा 2, पृ 93-94 कोठारी पृ 62-63। अग को जलाना (डाम लगाना), साँप के जहर को मत्र से उतारना आदि कई आज भी प्रचलित हैं।

मस्जिद जसे धार्मिक स्थल एक प्रकार से आधुनिक स्कूल का प्रतिरूप रहे थे।[1] जन साधु, साध्वियों और यतियो द्वारा उपासरों एव मठो मे छात्रा व आगार्थियो को धम, दशन तथा नैतिक ज्ञान की शिक्षा के साथ ही आवश्यकतानुरूप प्रारम्भिक गणित और भाषा नान प्रदान कराया जाता था।[2] उपासरो में निहित ज्ञान की श्रवण-परम्परा का लाभ देशाटन करते रहने वाले साधुओ के चातु मासो मे प्रवचन द्वारा प्रौढ लोग भी उठाते थे।[3] इस प्रकार उपासराश्रित शिक्षा द्वारा प्रौढ शिक्षा की व्यवस्था स्वतः बन जाती थी। उपासरों से विशेषत जन सम्प्रदाय सम्बधित रहता था किन्तु इनमे अध्ययन शिक्षा व ज्ञान का लाभ प्रत्येक द्विज जाति या सदस्य प्राप्त कर सकता था।[4] उपासरो मे साधुजन नान प्रदान करने के अतिरिक्त प्राचीन और उपयोगी हस्त लिखित ग्रथों की प्रतिलिपिया तैयार करते रहते थे।[5] इस प्रकार शास्त्रीय नान की यह पुस्तक-लेखन परम्परा आधुनिक छाप-खान की पूर्ति करती थी। मराठा अतिक्रमण काल (17 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 1818 ई तक) म इन उपासरों की अवस्था अवनत होने लगी थी जिसका मुख्य कारण तत्कालीन राजनीतिक दुबलता एव असुरक्षात्मक समाज-व्यवस्था थी।

मठो, मदिरो तथा मस्जिदो के अन्तगत यति साधुओं, महाराज

---

1 1885 ई से युनाइटेड प्रेस्वेटेरियन मिशन द्वारा उदयपुर सभाग म अपने धम-प्रचाराथ कायक्रम मे मिशन-शिक्षा का प्रचार गिरजाघर के माध्यम से करना प्रारम्भ किया था। पोलिटिकल कन्सलटेशन 'ए', नवम्बर 1885, न 37 सो ला भी रा पृ 269-70

2 कोठारी पृ 114 120-21। प्रारम्भिक गणित में गणितपाटी' और भाषा मे 'बारखडी' तथा उच्च गणित म अकगणित व भाषा म प्राकृत, डिंगल, सस्कृत आदि का ज्ञान आता था। उच्च ज्ञान प्राप्त करना आभिजात्य लोगा के लिये ही समव था जबकि साधारण ज्ञान कोई भी सवण जाति का छात्र प्राप्त कर सकता था।

3 कोठारी पृ 114

4 प्राच्य विद्या शास्त्री एव इतिहासज्ञ स्वर्गीय आचाय मुनि जिनविजय इसके दृष्टान्त रह थे जो कि राजपूत जाति के होते हुए जन धम से दीक्षित होकर जनाचाय बने थ।

5 सो सा भी रा पृ 275, डॉ ब्रजमोहन जावलिया का लेख। द्रष्टव्य —मेवाड़ का जैन साहित्य (मज्जमिका अक 1)।

गुसाइयो और उस्तादो के द्वारा धार्मिक और व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने का क्रम आलोच्यकाल के पश्चात् भी चलता रहा था।[1] सम्पन्न एवं अभिजात्य वर्ग के विद्यार्थियो को इन धर्माश्रयो से धर्म ज्ञान के अतिरिक्त अक्षर ज्ञान गिनती (पहाडा) ज्ञान एवं सामान्य ज्ञान के साथ सामाजिक ज्ञान की शिक्षा भी दी जाती थी।[2] इसके लिये धर्मगुरुओं को राज्य अथवा व्यक्ति की ओर से धर्मार्थ भूमि जीवन निर्वाह हेतु प्रदत्त की जाती थी।[3] मठ मन्दिर तथा मस्जिदों में स्थाई रूप से निवास करने वाले यति बाबा और काजी लोग जन साधारण के चिकित्सक का काम भी करते थे। इस प्रकार धर्म-स्थान लोक कल्याणकारी देशी चिकित्सालयों के रूप में प्रतिष्ठित थे।

धर्म मुक्त शिक्षा-दीक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक पाठशाला पोशाला चौकी तथा मकतब चला कर छात्रों को शिक्षा देते थे। इनका जीवन-निर्वाह समाज द्वारा दक्षिणा प्रदान कर किया जाता था।[4]

देशी शिक्षा का अवलोकन

18 वी शती के उत्तरार्द्ध तक गुरुकुल प्रणाली पर आधारित देशी पाठशालाओं और मकतबो में विविध शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक ज्ञान की शिक्षा शिक्षार्थियो को दी जाती थी।[5] किन्तु मराठा उपद्रवो ने इस व्यवस्था

---

1 इस शोधार्थी ने स्वयं अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पोशाला से प्राप्त की थी।

2 सहीवाला भा 2 पृ 33

3 वि स 1764 पौष कृष्णा 4 (1704 ई) का राणा अमरसिंह द्वितीय द्वारा काजी सुल्तान मुहम्मद को दिया गया 100 बीघा जमीन का पट्टा वि स 1782 श्रावण शुक्ला 5 (1725 ई) का राणा संग्रामसिंह द्वितीय द्वारा काजी अब्दुल हुसन का दिया गया पट्टा (द्रष्टव्य —राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर शाखा में संग्रहित पट्टा प्रतियां), वि स 1770 (1713 ई) का दक्षिणामूर्ति शिलालेख (वी वि पृ 1165-66) देवस्थान जमा खर्च बही वि स 1930 (1873 ई) सं 17 (रा रा अ, बीकानेर उदयपुर रिकार्ड) सो ला भी रा पृ 270 टिप्पणी 19 पृ 280 टिप्पणी 90 90 अ।

4 मेवाड रेजीडेंसी, पृ 82 प्रोसीडिंग आफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 1968 ई पृ 164

5 प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा उदयपुर में संग्रहीत, विविध ज्ञान के प्रतिलिपित ग्रन्थ क्रमांक 61 115 225, 552 685 728 820 854 1491, 1550 1731 आदि इसके उदाहरण हैं।

को समाप्त प्राय कर दिया था। 19 वी शताब्दी में जब इस जीर्ण व्यवस्था ने अपना कार्य प्रारम्भ किया तब हिन्दी, उर्दू भाषा तथा अंक लिखने व पढ़ने का सीमित ज्ञान कराना ही इन गुरुकुल संस्थाओं का एक मात्र उद्देश्य रह गया था।[1] इस स्थिति के अनुसार इन धर्म मुक्त शैक्षणिक संस्थाओं का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता गया था। इस जर्जर बनाने मे केवल मराठा अतिक्रमणो का हाथ ही नही अपितु राजनीतिक-सामाजिक असुरक्षा से ग्रसित जन विश्वासो मे भाग्यवादी अभिधारणा और सामन्तिक नियन्त्रण का सामाजिक प्रभाव भी मुख्य कारण रहा था। फलस्वरूप ब्राह्मण जाति का ब्रह्मज्ञान का स्तर किंचित् मंत्र ज्ञान धार्मिक क्रिया निष्पादन तथा पचाग पढ़ने तक सीमित हो गया था, वहा अन्य द्विज जातियो म राजपूत पढ़ना-लिखना व्यर्थ का शौक मानते थे और वणिक् महाजन हिसाब बही के अक अक्षर से अधिक जानना अपनी जाति-मर्यादा का उल्लघन मानते थे।[2] राज्य सेवा के उच्च पदाधिकारियो के शैक्षणिक ज्ञान का स्तर साक्षरता तक सीमित था।[3] अभिजात्य एव कुलीन लोगों के शिक्षा स्तर की इस दशा मे जनता की शिक्षा का स्तर प्रगतिपूर्ण होना असभव था, फिर भी आग्ल सरकार के प्रयास और परामर्श पर राज्य में 19 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे आग्ल शिक्षा का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया।

(स) अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली

राणा स्वरूपसिंह का उत्तराधिकारी राणा शम्भुसिंह 14 वर्ष की अल्पावस्था मे मेवाड का शासक बना था।[4] अत उसके वयस्क होने तक ब्रिटिश भारत की सरकार ने राज्य की शक्ति और व्यवस्था का कार्य-भार पोलिटिकल एजेन्ट मेवाड की अध्यक्षता मे गठित एक रीजेंसी कौंसिल के सिपुर्द कर दिये थे।[5] किन्तु कौंसिल की

---

1 मेवाड पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल ईडन का राजपूताना ए जी जी पी लारेंस को लिखा गया पत्र—5 अगस्त 1883 ई (उद्धृत—मेवाड एजेंसी रिपोर्ट पेरा 2) मेवाड रेजीडेंसी, पृ 82

2 द्रष्टव्य—जाति एव व्यवसाय अध्याय।

3 सहीवाला भा 2 पृ 33-34 42 60 कोठारी पृ 43

4 राणा स्वरूपसिंह की मृत्यु 16 नवम्बर 1861 ई को हुई थी (वी वि, पृ), उ ई, भा 2 पृ 781 एव 786

5 फो पो क दिसम्बर 18 1861, न 135-138, अप्रेल 1862, न 93-95

अयोग्यता और पारस्परिक विवादो के परिणामस्वरूप 14 अगस्त 1863 को कौसिल के समस्त अधिकार तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल ईडन के अधिकृत कर दिये गये।[1] प्रशासनिक व्यवहार मे कठोर एवं प्रगतिमुख विचारधारक कर्नल ईडन ने अपना कार्यभार ग्रहण करते ही राज्य मे प्रचलित परम्परागत शिक्षा प्रणाली की स्थापना का विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। उसने मई 1862 ई मे भारत सरकार को प्रेषित प्रतिवेदन मे राज्य की शिक्षा व्यवस्था की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उदयपुर नगर मे एक अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली का स्कूल खोलने के लिये 25000 रुपया के अनुदान का प्रस्ताव रखा। किन्तु यह प्रस्ताव भारत सरकार द्वारा उपेक्षित कर दिया गया।[2] 5 अगस्त 1863 ई को पुन अनुदान प्रस्ताव को दोहराते हुए उसने लिखा कि—यहा कला और विज्ञान के क्षेत्र मे किसी भी प्रकार की प्रगति को मानसिक निर्बलता का प्रतीक समझा जाता है अत इसके लिये आवश्यक है कि राज्य मे अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार हेतु अनुदान स्वीकृत किया जाय।[3] इस प्रतिवेदन पर भी भारत सरकार ने ध्यान नही दिया जिसका प्रमुख कारण ईडन द्वारा की जाने वाली कार्यवाहियो के प्रति मवाडी सामन्तो तथा जन साधारण का विरोध था। इसीलिए सरकार की सहायता का तात्कालिक विचार त्यागते हुए ईडन द्वारा व्यक्तिगत प्रयत्न किये गये। फलत उदयपुर नगर मे स्थित कई धर्मार्थ पाठशालाओ को मिलाकर एक बडे स्कूल की नीव रखी गई। इस स्कूल का नाम तत्कालीन राणा शम्भूसिंह तथा उसके गुरु रत्नेश्वर के नाम पर 'शम्भु रत्न पाठशाला' रखा गया।[4] इस पाठशाला मे प्रारम्भिक गणित, हिन्दी उर्दू, फारसी

---

1 राजपूताना एजेन्सी रिकार्ड (मेवाड) न 132, फो पो क अगस्त 21 1863, न 206-296 कर्नल ईडन ने मेजर टेलर से 26 अप्रेल 1862 को पद भार ग्रहण किया था।—वी वि, पृ 2063

2 पो क जुलाई 1862, न 75

3 उपरोक्त जुलाई 1864 न 10 18, मेवाड एजन्सी रिपोर्ट सन् 1863 64 प्रोसीडिंग आफ राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस 1968, पृ 164

4 इस स्कूल को खोलने मे राणा के गुरु पंडित रत्नेश्वर की प्रमुख भूमिका रही थी। उसने इसकी नीव जनवरी 1863 ई मे ही स्थापित कर दी थी।—गजेटियर रिपोर्ट आफ मेवाड (ह प्र) पृ 213, वी वि, पृ 2068 उ ई भा 2 पृ 792

ग्रौर सस्कृत की शिक्षा प्रदान की जाने लगी । 1863-1864 ई तक इस पाठशाला म छात्रो की सख्या 300 के लगभग रही थी जो कि 1865 ई तक 513 हो गई थी । इसी वष पाठशाला म अग्रेजी भाषा का विषय पढाना प्रारम्भ किया गया ।[1]

1873 ई मे पाठशाला के दो विभाग स्थापित किये गये जिसके अनुसार अग्रेजी प्राईमरी स्कूल को ग्रलग कर हिन्दी प्राईमरी स्कूल को इसका ब्राच स्कूल बना दिया गया।[2] 1884-1885 ई म अग्रेजी प्राईमर को हाई स्कूल तथा हिन्दी को मिडल स्तर का कर शम्भु रत्न पाठशाला के स्थान पर इसका नाम महाराणा हाई स्कूल रखा गया था । इसी वष इस स्कूल मे सस्कृत का ग्रलग से एक विभाग खोला गया जिसकी परीक्षा पजाब विश्वविद्यालय स सचालित होती थी । इसी प्रकार मिडिल एव एन्ट्रेस परीक्षा के लिय इलाहबाद विश्वविद्यालय से सम्ब ध स्थापित किया गया था । 1890 ई तक इस स्कूल से 4 छात्रा ने इलाहाबाद मिडिल बोड 5 छात्रो ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय स एन्ट्रे स तथा 5 छात्रो ने पजाब विश्वविद्यालय से सस्कृत प्रन परीक्षा उत्तीण की थी ।[3]

प्राथमिक पाठशालाओ का विकास

1880 ई मे राजधानी के ग्रन्दर ब्रह्मपुरी तथा कुशलपोन नामक स्थान पर दो हिन्दी प्राथमिक पाठशालाग्रो का श्रीगणश किया गया ।[4] 1871 ई के पूव तक राजधानी के ग्रतिरिक्त राज्य मे कोई व्यवस्थित स्कूल नही था ग्रत 1872-73 ई म राज्य के प्रमुख सभागीय केन्द्र भीलवाडा ग्रौर चित्तौड म भी हिन्दी प्राथमिक-पाठशाला प्रारम्भ की गई । इन दोनो पाठशालाग्रो की ब्राच स्थापित की गई । इन प्राईमरी पाठशालाग्रो के ग्रतिरिक्त भीला की शिक्षा एव उन्नति के लिये ग्रादिवासी क्षत्र काटहा (1875 ई) जावर (1883 ई) तथा ऋषभदेव (1883 ई) म प्राईमरी स्कूल ग्रौर 1884 ई के वष बारापाल तथा पडूना म 'ग्र ब-स द की पूव प्राथमिक

---

1 गजेटियर रिपोट—उपरोक्त मेवाड रेजीडेन्सी, पृ 82

2 गजेटियर रिपोट पृ 213 218

3 उपरोक्त पृ 215-216

4 मेवाड रजीडे सी पृ 83

पाठशालाए प्रारम्भ की गई थीं।[1] इस प्रकार 1900 ई तक राज्य के खालसा प्रदेश म प्रत्येक वहत्-ग्राम मे प्राथमिक पाठशालाए राज्य द्वारा चलाई गई थी कि तु राज्य की शिक्षा व्यवस्था और मुख्यत राणा फतहसिंह एव साम तो की सामतिक प्रवत्तिया के कारण कोई फलदायक परिणाम उत्पन्न नहीं किया जा सका था।[2]

सरदार-कक्षा

1877 ई मे राणा सज्जनसिंह द्वारा राज्य के सामतिक-राजपूत वग के पुत्रो की शिक्षा क लिये शम्भु-रत्न पाठशाला के अ तगत 'सरदार-कक्षा खोलने की आज्ञा प्रदान की गई थी।[3] इस कक्षा का चलाने का मुख्य लक्ष्य राजपूत जाति के आभिजात्य वग के बालको को सवसाधारण जन के बालको से अलग शिक्षा प्रदान करना था। सरदार कक्षा के विद्यार्थियों की पुस्तक-व्यवस्था का प्रब ध महकमाखास' द्वारा किया जाता था। इस प्रब ध में छात्रो का शुल्क तथा मुफ्त किताब कापी देने का प्रावधान किया हुआ था। कि तु विद्या के प्रति राजपूतो मे इस प्रयत्न द्वारा भी जागति उत्पन्न नही की जा सकी थी। कवि श्यामलदास ने तत्कालीन राजपूत मनोवत्ति को उल्लेखित किया है कि वे शिक्षा अजन का काय ब्राह्मण और बनियो का मानते थे।[4] मेवाड रिकार्डों के आधार पर इस कक्षा म 1882 ई तक कई राजपूत पुत्रो के नाम पञ्जीकृत किये गय कि तु नियमित रूप से एक या दो लडके पढने आते रहे थे। अत इस कक्षा को 1883-84 ई म ब द कर दिया गया। इसके पश्चात् ठाकुर पुत्रो के लिय यह व्यवस्था प्रारम्भ की गई कि

---

1 गजटियर रिपोट आफ मेवाड (हू प्र), पृ 217, मेवाड रेजीडे सी पृ 82 उ ई भा 2, पृ 829

2 19 वीं शताब्दी के पश्चात् प्रथम दशक तक जनसख्या का 4 प्रतिशत भाग साक्षर था। प्रत्यक्ष अवलोकन करने वाले ठाकुर अमरसिंह से लेखक के मौखिक साक्षात्कार (दि 10-12-1976) म ठाकुर न बतलाया कि स्कूल म एक या दो द्विज जाति के छात्र पढते थे व निम्न जाति के छात्रा का प्रवेश वजित होता था।

3 मेवाड एजेन्सी रिपोट 1877-78 ई, पृ 42

4 वी वि, पृ 1330

यदि कोई ठाकुर अपने पुत्र को पढाना चाहे तो महाराणा स्कूल का हेडमास्टर उन्हें अलग से पढाया करेगा ।[1]

स्त्री शिक्षा

1866 ई म कर्नल ईडन क उत्तराधिकारी मेजर जे पी निक्सन के प्रयत्नो से उदयपुर म एक क या पाठशाला प्रारम्भ की गई । इस पाठशाला मे अ ब स द तथा गणित पाटी के साथ-साथ सिलाई-बुनाई और कसीदाकारी सिखान का कायक्रम रखा गया था ।[2] इस स्कूल मे पञ्जीकृत 13 छात्राओं के अध्यापन हेतु 2 अध्यापिकाओ की नियुक्ति की गई थी । 1885 ई म इस स्कूल को मिडिल स्कूल म क्रमोन्नत किया गया किन्तु छात्राओ की सख्या मे कोई वृद्धि नही हो सकी । 1867 ई मे 51 1881 ई मे 82, 1891 ई में 72 तथा 1901 ई में 109 छात्राए इस स्कूल म पञ्जीकृत रही थी ।[3] यह सख्या राज्य की शिक्षा-प्रगति दर्शाने तथा ब्रिटिश भारत सरकार को भेजी गई पोलिटिकल एजन्ट रिपोट के आधार पर लिखी गई है कि तु मूल म 20 वीं शती के पूर्वार्द्ध तक भी उदयपुर की क या पाठशाला में बालिकाओं की सख्या उल्लेखित अकों से अधिक नही रही थी ।[4] स्त्री-शिक्षा के प्रति जन अरुचि का कारण समाज में प्रचलित बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, जातिवादी रूढिया और सामाजिक नियन्त्रण रहा था ।

मिशन स्कूल

यूनाईटेड प्रेस्बिटेरियन मिशन ने 1885 ई मे उदयपुर नगर मे एक मिशन स्कूल स्थापित किया था ।[5] इसमे केवल धर्म-परिवर्तित ईसाइयो तथा रेजीडे सी के ईसाई बालको के अध्ययन की व्यवस्था थी । धम-प्रचार के काय को गति प्रदान करने मे मिशन के अधिकारी शिक्षा को प्रमुख साधन मानत थे । अत मेवाड क आदिवासी क्षेत्रो म चच स्थापित कर इनके द्वारा

---

1 गजेटियर रिपोट आफ मेवाड (ह प्र) पृ 214, मवाड रेजीडेन्सी पृ 82
2 गजेटियर रिपोट—उपरोक्त, पृ 216
3 एफ एल रीड—रिपाट आन दी स्टेट एज्युकेशन इन दी नेटिव स्टेट आफ राजपूताना (1905) पृ 21, मेवाड रेजीडेन्सी, पृ 82
4 प्रो श्याम स्वरूप कुलश्रेष्ठ—मेवाड का राज्य-प्रबन्ध, पृ 151
5 पो क 'इन्टरनल-ए, नवम्बर 1885 न 37

शिक्षा देने की योजना के अन्तर्गत खेरवाड़ा, कोटड़ा देवली आदि क्षेत्रो म मिशन स्कूल प्रारम्भ किये गये।[1] खेरवाड़ा और कोटड़ा छावनी के सैनिक कर्मचारियों के लिये 1887-1888 ई के लगभग दो मिशन स्कूल खोले गये थे। इस प्रकार राज्य मे 1900 ई के अन्त तक मिशन स्कूलों की कुल सख्या 14 हो गई थी जिनमे 8 स्कूल आदिवासी क्षेत्रो में और 6 स्कूल उदयपुर और उसके आसपास के क्षेत्र मे चलत थे।[2]

प्रशिक्षण-कक्षा

सन् 1884 85 ई से पूर्व काल तक स्कूलों में अध्यापक परम्परागत पद्धति द्वारा पढाते रहे थे। राणा सज्जनसिंह द्वारा नियुक्त 'एज्यूकेशन-कमेटी' की सिफारिश पर देहात के स्कूलो म पढाने के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का निश्चय किया गया। इसके लिये महाराणा हाई स्कूल मे एक नारमल क्लास चलाई गई। यह कक्षा एक प्रकार से आधुनिक अध्यापन प्रशिक्षण का प्राचीन स्वरूप था। किन्तु ग्रामीण जनता मे शिक्षा के प्रति अधिक रुचि नही होने तथा देहात स्कूलो मे छात्र सख्या की न्यून स्थिति को देखते हुए 30 जून 1891 ई को यह कक्षा बन्द कर दी गई।[3] प्रशिक्षण-कक्षा का प्रारम्भ किया जाना राणा सज्जनसिंह का विद्या-प्रेम दर्शाता है, स्वय राणा पढा लिखा तथा विद्वानो का आदर करने वाला था। यह राणा अल्पकाल मे ही स्वर्गवासी हो गया था अन्यथा मेवाड म शिक्षा की प्रगति अधिक होती और मेवाड एक आधुनिक राज्य के रूप म उन्नत हो सकता था। निम्न तालिका 1890 स 1900 के बीच इन अंग्रेजी स्कूलो म छात्र-छात्राओं की सख्या को प्रस्तुत करती है।

अंग्रेजी स्कूलो की छात्र सारणी

	स्कूल	1890 1891 ई			1900 ई		
	स्कूल		छात्र	छात्राए	स्कूल	छात्र	छात्राए
1	अपर हाई स्कूल	1	293		1	290	×
2	लोअर ' (मिडिल)	×	×	X	1	26	X
3	प्राईमरी अपर स्कूल	5	243	72	8	637	109
4	प्राईमरी लोअर स्कूल	19	1452	X	32	1765	X
5	ट्रेनिंग क्लास	1	9	X	×	×	×

---

1 गजटियर रिपोर्ट आफ मेवाड (ह प्र) पृ 218-219
2 उपरोक्त।
3 गजेटियर रिपोर्ट आफ मेवाड (ह प्र), पृ 217, मेवाड रेजीडेन्सी, प 84

अध्ययन विषय एवं पद्धति

परम्परात्मक ज्ञान अर्जन करने के क्षेत्र में पिता अपने पुत्र को अपना अनुभवजन्य ज्ञान मौखिक अथवा प्रयोगात्मक पद्धति द्वारा प्रदान कर दिया करता था। अतः शिल्प दस्तकारी, औषधज्ञान, पशुचिकित्सा, गायन वादन, तन्त्र मन्त्र, साधारण ज्योतिष हिसाब-किताब लेखन, शिकार घुड़सवारी, गृह-परिचर्या शिशु स्वास्थ्य तथा गृहस्थ धर्म आदि का ज्ञान बालक-बालिकाओं द्वारा बगैर पुस्तकों के प्राप्त कर लिया जाता था। भारतीय शिक्षा-पद्धति से ज्ञान अर्जित करने के लिये अध्ययन विषयों का कोई सीमित क्षेत्र नहीं था। किन्तु इनमें मुख्यतः धर्म एवं न्याय दर्शन ज्योतिष वैद्यक, साहित्य नीति, व्याकरण, इतिहास, संगीत, शिल्प आदि विषय पढ़ाये जाते थे।[1]

अंग्रेजी स्कूल प्रणाली के अन्तर्गत लोअर प्राईमरी में अबसद तथा गणितपाटी अपर प्राईमरी में हिन्दी, संस्कृत उर्दू फारसी तथा गणित का साधारण ज्ञान कराया जाता था। इस अध्ययन के लिये पुस्तकों की आवश्यकता नहीं होती थी अपितु अध्यापक प्राचीन पद्धति के अनुसार उच्चारण तथा मौखिक पाठन द्वारा छात्रों को श्रवण और उच्चारण आवृतियों से पठन कराते थे। लिखने के लिये लकड़ी की पाटियाँ होती थीं जिन पर खड़िया मिट्टी के बने बतन द्वारा लिखाया जाता था। लिपि और चित्रकारी की शिक्षा के लिये कागज के अभाव के कारण पाटी अभ्यास कराया जाता था और अच्छा अभ्यास होने के पश्चात् कागज पर आवृतियां दी जाती थीं। 19 वीं शती के उत्तरार्द्ध में लिथो प्रेस की स्थापना होने के पश्चात् राज्य में पुस्तकें छपने लगी थी किन्तु इनकी मात्रा अधिक नहीं थी।[2]

मिडिल तथा हाई स्कूल में भाषा और गणित के साथ इतिहास, भूगोल एवं सामान्य विज्ञान के विषय सम्मिलित किये जाते थे। आंग्ल शिक्षा पद्धति में ज्ञान प्रसार तथा विद्वान बनने पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता था जितना कि राज्य के प्रशिक्षित सेवक बनाने की ओर। इसीलिये इस शिक्षा के प्रति अधिक जन-जागृति उत्पन्न करने में ब्रिटिश भारत सरकार सफल नहीं

---

1 द्रष्टव्य—प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान संगृहीत ग्रन्थ एवं ग्रन्थ सारिणी।

2 राणा सज्जनसिंह के समय में राज्य द्वारा सज्जन मुद्रणालय' नामक सरकारी लिथो प्रेस प्रारम्भ किया गया था। इसके पूर्व छपी हुई पुस्तकें अजमेर तथा नीमच से मंगवाई जाती थीं।

हो सकी थी। इसके साथ ही राज्य मे जन-वातावरण का कारण भी सम्मिलित रहा था। आलोच्यकाल मे लिखे गये सस्कृत अवधी, ब्रज तथा मेवाड़ी भाषा के हस्तलिखित ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं कि भारतीय शिक्षा पद्धति मे भाषा का कोई निश्चित प्रतिबन्ध नही रहा था।[1] धनिक वर्ग के लोग स्वआनन्द हेतु अपना ज्ञान बढ़ाने के लिये निजी पुस्तकालय रखते थे जिनमे प्रतिलिपित दुर्लभ ग्रन्थों का सग्रह किया जाता था। 18-19 वीं शती मे मेहता कोठारी सहीवाला आदि के परिवार और विद्या प्रमी सामन्तो के यहा निजी पोथीखाने विद्यमान रहे थे। मेवाड के शासक भी पुस्तकालय के प्रति जागृत थे। आधुनिक सरस्वती भवन नामक जिला पुस्तकालय एव प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर मे सग्रहित ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं कि मेवाड के राणा विद्या-सग्रह के प्रति अनुरागी थे।[2]

छात्र शुल्क

देशी शिक्षा प्रदान करने वाले गुरु, मन्दिर के आचार्य व पुजारी उपासरो व मठो के यति साधु मकतब क मौलवी आदि छात्रो को निशुल्क शिक्षा प्रदान करत थे। इसके लिये उन्ह राज्य समाज द्वारा पुण्यार्थ भूमि या द्रव्य दान भेंट किया जाता था। 18 वी शती के उत्तरार्द्ध म राज्य के राजनीतिक वातावरण के कारण इन शिक्षण सस्थाओ का ह्रास हुआ। किन्तु 19 वीं शताब्दी मे जब पुन शांति-व्यवस्था प्रारम्भ हुई तब प्राचीन पाठशालाओं का पुनर्जागरण होने लगा। ऐसी रहू पाठशालाओ मे अध्यापक नियत अन्न तथा प्रति पाटी 1 आना प्रतिमाह लेता था। 1863 ई म स्कूली शिक्षा प्रारम्भ होने के पश्चात् स्कूल मे पढने वाले निर्धन छात्रो को नि शुल्क शिक्षा दी जाती थी, किन्तु अन्य विद्यार्थियो से 1 आना से 4 आना प्रति माह शुल्क लिया जाता था। 1880 ई में भू-बन्दोबस्त वाले क्षेत्रो मे काश्तकारो पर उपज के 1 रुपये पर ½ आना 'स्कूल-लागत प्राप्त किया जान लगा था। ऐसी लागत प्रदाता कृषक के बालक बालिका से स्कूल म कोई शुल्क नही लिया जाता था।[3] मिशनरी स्कूलों म शिक्षा नि शुल्क प्रदान की जाती थी।

---

1 *द्रष्टव्य—प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर म सग्रहित ग्रन्थावलिया।*

2 सो ला मी रा पृ 281 82। राणा सग्रामसिह अरिसिह भीमसिह जवानसिह शम्भुसिह तथा सज्जनसिह न राज्य ग्रन्थालय (वाणी विलास) में कई ग्रन्थ सग्रहित किये थे।

3 गजटियर रिपोर्ट आफ मेवाड (ह प्र), पृ 216-219

अध्यापक वेतन

देशी शिक्षालयो के अध्यापको का वेतन धर्मार्थ भूमि तथा सामाजिक-धार्मिक पर्वों के दान पुण्य के साथ-साथ प्रति फसल पर यजमानी अश एव छात्रों द्वारा प्रदत्त गुरु दक्षिणा होता था।[1] 19 वीं शती मे अग्रेजी शिक्षा पद्धति के शिक्षालय स्थापित होने पर उनम नियुक्त शिक्षको का वेतन निम्न प्रकार निर्धारित रहा था[2]—

	पद स्कूल एव विषय	प्रतिमाह रुपयो से	रुपयों तक
1	हेड मास्टर—अग्रेजी स्कूल	100/-	150/-
2	हड मास्टर—हिन्दी स्कूल	20/-	50/-
3	नायब हे मास्टर—अ स्कूल	50/-	75/-
4	नायब हे मास्टर—हि स्कूल	10/-	20/-
5	अग्रेजी का मास्टर	10/-	20/-
6	फारसी- "	10/-	20/-
7	सस्कृत- "	5/-	10/-
8	हिन्दी- "	5/-	10/-
9	लड़की पढाने वाला	4/-	10/-

उपरोक्त वेतन तालिका स स्पष्ट होता है कि हिन्दी एव सस्कृत भाषा के अध्यापको की तुलना म फारसी तथा अग्रेजी भाषा का अध्यापन कराने वाले अध्यापकों का वतन अधिक रहा था। इस वेतन भेद द्वारा सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि अग्रेजी शिक्षा पद्धति का मुख्य ध्येय राज्य मे नौकरशाही को पनपाना तथा अग्रेजी भक्त लोगो का मवाड मे समूह बनाना रहा था। किन्तु राज्य में परम्परा और रूढियो से चले आ रहे पतक पदो की स्थिति और जनता की शिक्षा के प्रति अरुचि के कारण अग्रेजी शिक्षा का वातावरण अधिक पल्लवित नहीं हो सका था। परिणामत 19 वीं सदी

1 वि स 1858 (1801 ई) वि स 1874 (1817 ई) के पट्टे तथा वि स 1894 (1837 ई) का रुक्का (द्रष्टव्य—सो ला मी रा पृ 280) देवस्थान जमा-खच बही वि स 1930 (1873 ई), स 17, रा रा अ उदयपुर रिकाड गुरु पूर्णिमा रक्षाबन्धन आदि पर्वों पर छात्रों द्वारा गुरु दक्षिणाए भेंट की जाती थी।—वी वि, पृ 214

2 ब रि उ खच बही, वि स 1930 (1873 ई), बस्ता 5

के पश्चात् भी राज्य की कुल जनसंख्या का 96% भाग पढना लिखना नहीं जानता था।[1]

शिक्षा की उपरोक्त स्थिति का अवलोकन करने के पश्चात् तथ्यत कहा जा सकता है कि अध्ययनकालीन मेवाड में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सामाजीकरण करने जीवन धम को समझाने तथा मानव व्यवहार को सिखलाने वाला ज्ञान तथा आर्थिकोपाजन के लिये प्रशिक्षण प्रदान करना था। किन्तु 19 वीं शताब्दी मे आग्ल शिक्षा पद्धति ने शुद्ध ज्ञान प्राप्ति के साधन विद्या को केवल अथ प्राप्ति एव राज्य सेवा के सेवक बनाने की शिक्षा को पनपाना प्रारम्भ किया जो कि मेवाड की जन अभिधारणाओं के विरोधाभास के कारण पल्लवित नही हो सकी थी। अशिक्षा का विस्तत प्रभाव तत्कालीन मेवाड राज्य ही नही अपितु सभी देशी राज्यों मे पनप रहे सामाजिक नियन्त्रणो का प्रतिफल था। फिर भी मेवाड मे प्रचलित शिक्षा का स्वरूप सामाजिक-आर्थिक ज्ञानाजन से सम्बन्धित रहा था जिसका कि आधुनिक शिक्षा पद्धति में सवथा अभाव है।

---

1 मेवाड रेजीडेंसी पृ 82

अध्याय 8

उद्योग, वाणिज्य एव व्यापार

आलोच्यकाल में मेवाड क्षेत्र मे उद्योग-धधो का वह आधुनिक स्वरूप उपलब्ध नहीं था जो आज देखा जाता है। उद्योग-धधो का अभिप्राय उन कुटीर तथा हस्त उद्योगो से है जो तत्कालीन समय मे समाज की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति करता था। मेवाड के जन-जीवन मे ये उद्योग धन्धे जाति समाज की जातियो तथा वशानुगत स्थितियो पर आधारित थे। जातिगत उद्योगो मे कार्यरत शिल्पियो के दो स्तर थे—(अ) ग्राम्य शिल्पी तथा (ब) नगर शिल्पी। ग्राम्य शिल्पी लोग कृषि एव ग्राम्यजीवन की आवश्यकताओं के लिए उद्योग करते थ। इन शिल्पियो का आर्थिक जीवन कृषि-आश्रित रहता था। वस्तुत ग्राम्य शिल्पी अर्द्ध कृषक और साधारण शिल्पी का जीवन व्यतीत करते थे। नगर के शिल्पी कुशल शिल्पी की श्रेणी मे आते थे।[1] पुन जीविका के आधार पर ये शिल्पी दो उपश्रेणियो—श्रमिक-शिल्पी तथा व्यवसायी-शिल्पी में वर्गीकृत थे। श्रमिक-शिल्पियो मे भवन निर्माण करने वाले मिस्त्री, कारीगर आदि कपडों की सिलाई करने वाले महिदोज, रेजा बुनने वाले बलाई कपडा रगने वाले रगरेज कागज बनाने वाले कागदी, सोना-चादी के बरक बनाने वाले, कपडो की छपाई करने वाले छीपा, बतन गढने वाले कसारा इत्यादि जाति के लोग प्रमुख थे। व्यवसायी शिल्पियो म सुनार, लुहार सुथार कुम्हार, दर्जी जीणगर सिकलीगर, अत्तार गधी, पटवा, उस्ता बलाल आदि जातिया रही थीं।[2] शिल्पी जातियों के प्रत्येक बस्ती मे शिल्प समूह थे जो कि भिन्न-भिन्न मोहल्लो मे शिल्पगत आवास से स्पष्ट होते थे।[3] शिल्पी समूहो के अनुसार आलोच्यकालीन मेवाड मे मुख्यत उद्योग निम्न थ—

(अ) वस्त्र उद्योग—ग्रामोद्योग के रूप म प्रत्येक गाव मे चर्खे द्वारा सूत कातने और मोट सूती कपडे (रेजा) की बुनाई का काय किया जाता था।

---

1 मेवाड रेजीडे सी, पृ 49-50

2 द्रष्टव्य—जातियां एव व्यवसाय अध्याय।

3 द्रष्टव्य—आवास निवास, रहन-सहन, खान पान अध्याय।

मुस्लिम जाति के जुनाहा बारीक कपड़े की बुनाई करते थे किन्तु यह उद्योग मोटे सूती कपड़ा उद्योग जैसे विस्तृत स्तर पर प्रचलित नहीं रहा था।[1] मेवाड़ के मध्यवर्ती एवं पूर्वी-दक्षिणी भाग में कपास का उत्पादन होने के कारण यह क्षेत्र रंगाकारी के केन्द्र रहे थे।[2] दुपट्टा और छींट के वस्त्र बनाने के लिए हम्मीरगढ़, रेजा की आजम व पछेवड़ा बनाने वस्त्र बधाई, रंगाई और छपाई के लिए चित्तौड़ आकोला तथा उदयपुर प्रमुख केन्द्र थे।[3] पगड़ियां मोठड़े चूंदड़ियां व लहरिया की छपाई और रंगाई बहुमूल्य कपड़ों पर सोने चांदी के तार तथा रेशम के धागों द्वारा कढ़ाई का उद्योग उदयपुर की विशेषता थी। यह उद्योग मुस्लिम जाति के रंगरेजों, छीपाओं तथा हिन्दू पटवा लोगों द्वारा किया जाता था।[4] छपाई का काम लकड़ी के ब्लाकों द्वारा होता था जिनका निर्माण शिल्पी सुथार करते थे। गोटे किनारी के व्यवसाय पर पारख जाति के ब्राह्मणों का एकाधिकार था।[5]

1880 ई. में राज्य द्वारा वाणिज्य व्यापार के प्रमुख केन्द्र भीलवाड़ा में कपास तथा ऊन ओटने का कारखाना स्थापित कर औद्योगिक क्षेत्र में नवीन प्रयास प्रारम्भ किया गया। किन्तु इसमें राज्य को इसकी अव्यवस्था के परिणामस्वरूप घाटा रहा था। अतः 1887 ई. में इसे बम्बई की मोफुसील कम्पनी को 40 हजार रुपये में बेच दिया गया।[6] कम्पनी द्वारा कारखाने में ओटने के साथ-साथ गांठ बांधने की मशीनें लगा कर इसका विस्तार किया गया। 1898 ई. में मोफुसील कम्पनी ने यह कारखाना पुनः राज्य को

---

1 मेवाड़ में बारीक वस्त्रों का प्रचलन मात्र अभिजात्य एवं कुलीन वर्ग में प्रचलित रहा था। एक कहावत के अनुसार मोटो खाणो मोटो पेरणो अर छोटो रेहणो अर्थात् मक्की धान आदि खाना रेजा पहिनना तथा नम्र रहना लोगों में समाज आदर्श माना जाता था।

2 गजेटियर रिपोर्ट ऑफ मेवाड़ पृ 5-6

3 उदयपुर गजल, पद 37 39, एनाल्स भा 1, पृ 239-240 भा 3 पृ 1726-1727, 1729, वर्टे—मेवाड़ पृ 69

4 उदयपुर गजल, उपरोक्त, वाराणसी विलास (ह लि), पृ 7-8, मेवाड़ रेजीडेन्सी, पृ 55

5 आधुनिक काल में भी शोधकर्त्ता द्वारा प्रत्यक्षावलोकन पर यह तथ्य प्रमाणित होता है कि आलोच्यकाल मे इसी जाति का एकाधिकार रहा होगा।

6 मेवाड़ रेजीडेन्सी, पृ 55

विक्रय कर दिया। इस प्रकार व्यक्तिगत उद्योग क्षेत्र राज्य उद्योग क्षेत्र में आने से इसके उत्पादन का लाभ राज्य को प्राप्त होने लग गया था।[1]

(आ) **काष्ठ उद्योग**—मेवाड़ का ⅓ भू-भाग वनाच्छादित था। अतः लकड़ी की दृष्टि से सीसम, सागवान आम, बबूल बांस आदि के वृक्ष बहुतायत में थे।[2] इन पेड़ों की लकड़ियों से कृषि उपकरण, मकानों की खिड़कियाँ किवाड़ें गोखड़ों, छत की छाती, लकड़ी के बर्तन आदि बनाने और उनमें खुदाई तथा नक्काशी का कार्य सुथार शिल्पियों द्वारा किया जाता था। उदयपुर में व्यवसायी शिल्पियों द्वारा लकड़ी के कलात्मक खिलौने व चूड़ियां बनाई जाती थीं।[3] भीलवाड़ा जहाजपुर और शाहपुरा में भी सुन्दर खिलौने तथा पावड़ा पर पालिश का कार्य किया जाता था।[4] सलूम्बर, कुरावड़ भीन्डर क्षेत्र में कलात्मक गवाक्ष खिड़कियाँ महराब स्तम्भ आलोच्यकालीन मेवाड़ के काष्ठ उद्योग की कलापूर्ण विस्ततता के साक्ष्यस्वरूप वर्तमान में भी विद्यमान हैं।

(इ) **लुहारी और चर्मदारी उद्योग**—ग्राम्य बस्ती में कृषकों के लिए लौह उपकरणों में हल कुदाल नीराई-गुड़ाई करने की खांप, चड़स आदि के साथ साथ घरेलू सामान, यथा—चिमटा, सांकल दतुली चाकू आदि बनाने का कार्य ग्राम्य लुहार चमार एवं घुमक्कड़ व्यवसायी जाति के गाडूलिया लुहार करते थे। नगर में लौह व चर्म-शिल्प का कार्य सिकलीगर, जीणगर मोची आदि द्वारा किया जाता था। उदयपुर में तलवार खंजर-छुरी कटारी,

---

1 इस कारखाने का वार्षिक उत्पादन डॉ कालुराम शर्मा द्वारा 12000 गांठ रुई तथा 2140 टन ऊन लिखा गया है (उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक और आर्थिक जीवन पृ 180)। किन्तु मेवाड़ के राजकीय अभिलेखों के अनुसार इसका उत्पादन 15386 गांठ रुई तथा 630 टन ऊन का रहा था।—गजटियर रिपोर्ट आफ मेवाड़ (ह प्र), पृ 140, मेवाड़ रजीडेन्सी पृ 55। इस कारखाने में 642 श्रमिक कार्य करते थे जिनकी दैनिक मजदूरी 2 आना से 5 आना तक प्रदान की जाती थी।

2 द्रष्टव्य—मेवाड़ राज्य के भौगोलिक तथ्य अध्याय।

3 लाला मूलराज—नोटस ऑन दी फोरेस्ट ऑफ दी बांसवाड़ा स्टेट (1907 ई) पृ 23 इम्पीरियल गजटियर (प्रोविंसियल सिरीज), पृ 203 267

4 उपरोक्त, अर्टे—मेवाड़ पृ 69

भाले, ढाल हाथी घोड़े तथा ऊँटों की जीण या काठी बनाने का शिल्प-व्यवसाय प्रसिद्ध था।[1]

(ई) बर्तन उद्योग—प्रत्येक बस्ती में कुम्हार जाति के शिल्पियों द्वारा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मिट्टी के बर्तनों का निर्माण किया जाता रहा था। किन्तु कुँआरिया उदयपुर और कपासन आदि स्थानों पर मिट्टी के कलात्मक बर्तनों का उद्योग आलोच्यकाल में विद्यमान था। राज्य के वन प्रदेशों में बांस-उत्पादन होने के कारण बांस के बर्तनों का भी राज्य में प्रचलन रहा था। बांस का काम गाछी तथा हरिजन जाति के लोग करते थे। इनके द्वारा टोकरियां, छाब, कु डया टाटा आदि का दस्तकारी काम किया जाता था। बिगोद नामक स्थान पर लोह खान से प्राप्त लोहे द्वारा हमामदस्ता तथा सगारियां बनाने का काम होता था।[2] भीलवाड़ा में तांबा, पीतल तथा कांसा नामक मिश्रित धातु के बर्तन बनाने का काम कसारा जाति के लोग करते थे। उदयपुर में पीतल तांबा बर्तन के साथ साथ सोनियों द्वारा सोने चांदी के थाल, कटोरे गिलास लोठे, तरबाने आदि बनाये जाते रहे थे।[3] 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रेल यातायात के विकास स्वरूप कांसा के बर्तनों का निर्यात किया जाने लगा था। निर्यात की औसतन मात्रा का कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। किन्तु मेवाड़ की सम्पूर्ण निर्यात-स्थिति की दृष्टि से कहा जा सकता है कि इसमें राज्य को कोई अधिक लाभ नहीं था।

(उ) आभूषण एवं जड़ाई उद्योग—उदयपुर में कलात्मक आभूषण बनाने तथा उनमें नगीनों की जड़ाई का काम सोनी तथा जड़िया लोग करते थे। इसी प्रकार तलवारों, कटारियों की मूठ पर लगे सोने-चांदी में जड़ाई व

---

1 वाराणसी विलास (प्रप्र), पृ 7 विलास 149, बनेड़ा फोट ग्राफीक्स—उद्धवा की चौपयों, वि स 1818 (1761 ई), पटे—मेवाड़, पृ 69। रेगरों व मोचियों द्वारा घी और तल रखने के चमड़े के कुप्पे बनाये जाते थे।—मेवाड़ रेजीडेंसी, पृ 55। उदयपुर में सरस्वती भवन के बाहर रखा विशाल लौह-कड़ाहा भी तत्कालीन लौह-शिल्प का परिचय देता है।

2 इम्पीरियल गजेटियर (ओ सी) पृ 203, 267

3 उपरोक्त, वाराणसी विलास (इ प्र), पृ 7, विलास पृ 138, 145, उदयपुर वर्णन छंद, पृ 42, मेवाड़ रेजीडेंसी पृ 55

खुदाई का काय जडियो और सिकलीगरो द्वारा किया जाता था।[1] नाथद्वारा मीनाकारी काय के लिए प्रसिद्ध था। यहां की मीनाकारी की वस्तुए धार्मिक-यात्री लोग क्रय करते थे।[2] इस प्रकार इसका अप्रत्यक्ष निर्यात होता था।

(क) अन्य उद्योग—उपरोक्त उद्योग-शिल्प के अतिरिक्त चूडी इत्र, मूर्ति एव चित्रकारी, कागज तथा शराब बनाने के उद्योग राज्य मे विद्यमान थे। उदयपुर और भीलवाडा म हाथीदात, लाख और नारियल की चूडिया, कोठारिया में मोमबत्ती एव खमनोर मे गुलाबजल तथा गुलाब का इत्र बनाया जाता था।[3] देवगढ मे कम्बल बनाने रिखबदेव मे हरे घीया पत्थर की मूर्तिया नाथद्वारा और उदयपुर मे चतारो द्वारा भीत्तिचित्र एव कलमकारी का उद्योग प्रचलित था।[4] चतारा-उद्योग का यापक प्रचलन मेवाड म स्थित विभिन्न ठिकानों हवेलियो तथा लोक शिल्प के रूप में प्रत्येक घर पर देखा जा सकता है। कागज का राज्य द्वारा गुजरात से आयात किया जाता था किन्तु मेवाड में घास की गुदा बांस कपडो को सडाकर लेप तय्यार कर मोटा कागज बनान का उद्योग घुसुंडा मे रहा था।[5] ऐमा कागज बनाने वाले कागदी' कहलाते थे। केलवा चित्तौड व पुर मे सोरगरो द्वारा बारूद बनाने का उद्योग किया जाता था।[6] 18 वी शताब्दी की कृति वाराणसी विलास म साबुन के प्रयोग का उल्लेख मिलता है।[7] 19 वी शती मे उदयपुर तथा भीण्डर मे देशी साबुन बनाने के गृह उद्योग प्रचलित रहे थे।[8] कलाल जाति द्वारा राज्य में मुख्यत महुआ, केशर तथा गुलाब की शराब बनाई

---

1 वाराणसी विलास (ह प्र) पृ 7, विलास उपरोक्त उदयपुर वणन छद पृ 42, मेवाड रेजीडे सी, पृ 55

2 मेवाड रेजीन्सी पृ उपरोक्त।

3 वाराणसी विलास पृ 7-8 विलास पृ 139, 145-146, यटे—मेवाड, पृ 69 मेवाडहाल, रजि न 1932

4 यटे—मेवाड पृ 69, मवाड रेजीडे सी पृ 55

5 गजेटियर रिपोट ऑफ मेवाड (ह प्र) पृ 139

6 वाराणसी विलास उपरोक्त, मेवाड रेजीडेन्सी, पृ 55

7 उपरोक्त, पृ 8 विलास 154। किन्तु जनसाधारण द्वारा नहान व कपडे धोने के लिए अरीठा, मुल्तानी मिट्टी व उस' काम में ली जाती थी।—एनाल्स भा 2 पृ 761

8 गजटियर रिपोर्ट ऑफ मेवाड (उ प्र), पृ 139, मेवाड रेजीन्सी, पृ 55

जाती थी।[1] इसी प्रकार खनिज उद्योग भी राज्य मे प्रचलित रहा था जिसका अध्ययन मेवाड राज्य के भौगोलिक तथ्य प्रकरण मे किया जा चुका है।

मेवाड राज्य के महलो के प्रशासनाधीन कई कारखानो में शिल्प-उद्योग काय किया जाता था। शासन द्वारा बगार मे अथवा वेतन मजदूरी पर कुशल तथा साधारण शिल्पियो से कारखानो में काम लिया जाता था। कारखानो से उत्पादन किया गया माल राज्य के मर्दाना महल एव जनाना महल मे रहने वालो के लिये प्रयुक्त किया जाता था।[2] इनमे मुख्यत पत्थर-नक्काशी मूर्ति शिल्प, चित्रकारी, वस्त्र सिलाई, स्वर्णकारी, आभूषण-जडाई पालकी डोली नाव, औषधी आदि बनाये जाते थे।

मेवाड के उद्योग प्राय कुटीर ग्रामोद्योग की श्रेणी म रहे थे। अत आत्म-निभर आर्थिक व्यवस्था क अनुरूप इन उद्योगों का विस्तार राज्य की माँग तथा पूर्ति तक सीमित रहा था। यद्यपि 19 वी शताब्दी के अ तिम दशकों म देश क पूर्वी भाग मे तथा मध्यवर्ती भाग मे रेल लाइन बन जाने के फलत भील-वाडा एव उदयपुर से कासे के बतन, रुई हथियार पशुओ की खाल, काष्ट-खिलौने छपाई क कपडे आदि का निर्यात प्रारम्भ होने लगा था। परन्तु इस निर्यात की मात्रा कम होने की वजह से स्थानीय उद्योग के विकास तथा उन्नति पर गुणित प्रभाव नही पडा था।[3] मेवाड की भौगोलिक स्थिति के अनुसार यातायात की सुगम अनुपस्थिति म कच्चे माल का आयात तथा निर्मित माल का निर्यात दुष्कर काय था। इसके साथ साथ सामाजिक निय-न्त्रण जनसाधारण का सादे जीवन मे विश्वास तथा वैज्ञानिक तथ्यो के प्रति शासकीय अरुचि मेवाड क औद्योगिक पिछडेपन क कारण थे।[4] यद्यपि

---

1 मेवाड रजीडे सी, उपरोक्त।

2 जनल आफ दि राजस्थान इ स्टीटयूट आफ हिस्टोरीकल रिसच ख 7 न 3 (जुलाई अगस्त 1971) पृ 39-40

3 गजेटियर रिपोट आफ मेवाड (ह प्र) पृ 141-142, टेरीफ (शरह-नामा) महसूल दाण (सायर) राज्य उदयपुर मेवाड।

4 ट्रिटीज—एगेंजमे ट खण्ड 3 पृ 49-54 धारा 28 फोरेन डिपाट-मे ट इ टरनल सितम्बर 1883 न. 228-236, राजपूताना एजे सी रिकाड (मेवाड) पृ 1892-1894। आर्थिक प्रतिस्पर्धा की भावना समाज तथा राज्य द्वारा लोकाचारा तथा जाति नियमो स नियंत्रित रहती थी।

20 वीं शताब्दी के पूर्व मे रेल और सड़क मार्गों का निर्माण हो चुका था किन्तु आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था और ग्राम्य वातावरण के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका था।[1]

आलोच्यकालीन अभिलेखों से विदित होता है कि[2] साधारण शिल्पी का दैनिक पारिश्रमिक प्राय 4 आना से 6 आना अथवा 1 सेर आटा ½ पाव दाल तथा पैसा भर घृत तथा कुशल शिल्पियो को 8 आना से 13 आना या 2 सेर आटा, आधा पाव दाल छटाक घृत बीड़ी तम्बाकू तथा अमल के साथ 2 रुपये स चार रुपये माहवारी दिया जाता था। राज्य कृपा-पात्र शिल्पियो का आर्थिक स्तर जन-साधारण शिल्पियो की अपेक्षा अच्छा रहा था। उन्हें राज्य की ओर से 20 से 60 रुपया माह सिरोपाव तथा इनाम में खेती की जमीन तक प्रदान की जाती थी।[3] कई बार शिल्प-शुल्क नही चुकाने की अवस्था में शिल्पियो से राज्य द्वारा शिल्प-विष्टी का काय कराया जाता था।

वाणिज्य एव व्यापार

बस्तियो म जिस प्रकार शिल्प समूह थे उसी प्रकार वणिक-समूह भिन्न-भिन्न मुहल्लो म अवस्थित रहते थे। वणिकों के व्यवसाय की दृष्टि स तीन वग किये जा सकते हैं—(अ) ग्राम्य वणिक (ब) नगर वणिक तथा बोहरा या साहूकार। बोहरागत व्यवसाय करने वाले वैश्य महाजन अथवा अन्य सम्पन्न द्विज जाति के व्यक्ति ग्राम वणिक तथा नगर वणिक के मध्य की कड़ी होते थे। जहा उनके द्वारा गावो मे उधार लेन देन तथा माल क्रय-विक्रय का धधा करत थे वहां नगर वाणिज्य की आवश्यकता पूर्ति हेतु ग्राम्य-भण्डार स

---

1 राजस्थान विलेज पृ 89-90

2 ब रि—टीपणी रोजगारी—कपडा भडार हुक्का री ओवरी, आतिश-बाजी का कारखाना, गुलाल का कारखाना, इत्र गुलाब जल की ओवरी शिल्प सभा नाव का कारखाना आदि का खच-विभिन्न खच बही सकलन खच बही, वि स 1930, नामा बही वि स 1908-1919, बही रोजनामा वि -स 1919, बही हुकुम वि स 1931, टीपणी रोजगारी वि स 1930-1931, बस्ता 1 से 5 महता सग्रामसिंह कलेक्शन फाइल 30-60 90-144 152, 156-180 बस्ता 2 4, 5, 9 12 आदि।

3 ब रि—हुकुम री बही वि म 1931 सावत बहिड़ा वि स 1932, पावणी बही वि स 1932 आदि, बस्ता 4 5 व 6

माल को मडी मे थोक से विक्रय करते थे । किसान शिल्पी तथा अन्य सेवक वग से इन बोहरों का आर्थिक सम्बन्ध वस्तु अथवा नक्द के पारस्परिक विनिमय पर आधारित होता था।[1] इस प्रकार बोहरा व्यापारी ग्रामीण प्रजा के लिए बैंक तथा मडी माल के मुख्य सग्रहकर्ता एव वितरक थे । बहुत ग्राम व नगर की मडियो में ग्राम वणिकों से माल का सौदा बोहरों को छोड कर प्रत्यक्ष भी किया जाता था, एसा माल ग्राम भण्डार या कृपक के घर ही पडा रहने दिया जाता और आवश्यकता अनुरूप मगवाया जाता था । अच्छी स्थिति वाले कृपक अथवा जागीरदार अपनी उपज को सीधे मण्डी द्वारा विक्रय करते थे । इससे उन पर गांव दलाली का भार नही पडता था। मण्डी में दलाल लोगो द्वारा आसामियो (कृपक) का माल बोली लगाकर आढतियो को बेचा जाता था । दलाला को इस परिश्रम हेतु माल के मूल्य का 4 स 6% दलाली प्राप्त होती थी ।[2] अत वे किसानो क माल को अपन लाभाजन के लिए ऊची बोली पर बेचते थे । जागीरदारी क्षेत्रो मे वस्तु-विनिमय प्रथा के कारण दलाली व्यवसाय का अधिक प्रचलन नही था । राज्य द्वारा दलाला को दलाली पट्टे दिये जाते थे जिन पर वार्षिक शुल्क आमद के अनुसार लिया जाता था ।[3] बगैर राज्यानुआज्ञा पत्र के कोई व्यक्ति दलाली नही कर सकता था। इसी प्रकार के अनुज्ञा-पट्टे मण्डी क्षेत्राधीन अलग अलग वाणिज्य-व्यापार समूहो को प्रदान किय जाते थे । इन समूहों में अभिलेख रिकार्डो के अनुसार तम्बाकू मासका तेल-गुड कोयला किराणा दूध दही भू गडा आदि के साथ अन्य व्यापार-व्यवसायों मे कलाली पट्टा लाख पट्टा

---

1 आधुनिक काल मे भी उदयपुर सभाग के ग्रामीण क्षेत्रो म वस्तुविनिमय द्वारा लेन देन की परम्परा देखी जा सक्ती है ।

2 उदयपुर गजल, प 34 66, ब रि —साबत रो वहिडो वि स 1932 (1875 ई), बस्ता 6, मेहता सग्रामसिह कलेक्शन, फाइल 269, बस्ता 19

3 ब रि—पट्टा बही वि स 1777 (1720 ई), बही वि स 1901 1902 1903 1904 (1844-1848 ई), आमद जमा बही वि स 1913 (1856 ई) बही वि स 1924 (1867 ई) साबत रो वहिडो वि म 1932 (1875 ई), बस्ता 1 3 6 व 8 कणविलास डिपोजिट रिकाड—पडाखा बही वि स 1891 (1934 ई) ।

कसौटी पट्टा आदि पर वार्षिक शुल्क लिया जाता था।[1] इन शुल्कों को संग्रह करने का वार्षिक ठेका प्रत्येक वाणिज्य-व्यापार समूह के प्रमुख आढतिया को प्रदान कर दिया जाता था। राज्य की ओर से सहणा और ढाणी मण्डी मे राज्यहितों का ध्यान रखते थे। इनके द्वारा मण्डी म माल तुलाई राज्य की दुकानों के किराये पर हटवाड तथा भाडा लागत प्राप्त की जाती थी।[2]

इस पट्टा-पद्धति द्वारा राज्य का क्षत्रिय वाणिज्य-व्यापार पर प्रत्यक्ष नियन्त्रण रहता था। मण्डी-व्यवस्था पर राज्य-नियन्त्रण से व्यापारी मनमाने भाव नही बढा सकत थे। सकट के समय राज्य द्वारा मण्डी की व्यवस्था राज्य भण्डार से की जाती थी। और माल की कमी हो जाने पर बाहर से राज्य की जमानत पर मगवाया जाता था।[3] इस प्रकार मण्डी-नियन्त्रण की आलोच्यकालीन व्यवस्था आधुनिक बिक्री-कर आय-कर तथा वाणिज्य-कर क कार्यालय स्थापित किय बगैर व्यवस्थित रहती थी।

आन्तरिक व्यापार एव क्षेत्रिय नियन्त्रण

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक मेवाड राज्य का प्रत्येक जागीर क्षेत्र उपराज्य के रूप मे अपने क्षेत्राधीन वाणिज्य व्यापार पर नियन्त्रण रखती थी। जागीर से माल बाहर ले जाने अथवा लाने के लिए जागीर-प्रशासन की स्वीकृति लेनी पडती थी। मराठा अतिक्रमण काल मे तो प्रत्येक जागीर ने निजी चुगी क्षेत्र स्थापित कर दिये थ।[4] अत जागीर चुगी घरो को चुगी देने के पश्चात् ही व्यापारी जागीर से बाहर या अन्दर माल आयात-निर्यात कर सकता था। केन्द्र को भी जागीर क्षेत्र से माल-निकासी अथवा मगवाने के लिए जागीरदारो को व्यक्तिगत पत्र लिखने पडते थे।[5] 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे राणा शम्भूसिह के काल से जागीर चुगी क्षेत्र समाप्त कर केवल केन्द्रिय चुगी व्यवस्था को मान्यता प्रदान की गई थी।[6]

---

1 उपरोक्त।

2 उपरोक्त।

3 ब रि—महता शेरसिह का पत्र, 20 जून 1849 तथा अन्य पत्र बस्ता 13 एआल्स भा 1 प 503, वी वि प 2029

4 महता सग्रामसिह कलेक्शन—वि स 1893 (1836 ई) की बही, बस्ता 1, ट्रेड्स इन मेवाड इण्डिया, प 138

5 वी वि, प 960-61

6 1863 ई मे तत्कालीन पो ए कर्नल ईडन द्वारा यह व्यवस्था कठोरता-

व्यापार के प्रमुख केन्द्र

आन्तरिक व्यापार के लिए राणाधीन खालसा क्षेत्र में उदयपुर, भीलवाड़ा सनवाड राशमी, कपासन, जहाजपुर, छोटी सादड़ी प्रमुख केन्द्र रहे थे।[1] गावो म साप्ताहिक (साती) अथवा मासिक (मासी) हठवाड (बाजार) लगा कर व्यापार किया जाता था। ऐसे हटवाड प्रत्येक 10 12 गावों के मध्य लगाये जाते रहे थे।[2]

अन्तर्राज्यीय व्यापार के लिए मेवाड से वणिक व्यापारी दल बना कर क्रय-विक्रय हेतु दूरस्थ प्रदेशों मे जाते थे।[3] व्यापारिक यात्राए सर्दी के पश्चात् प्रारम्भ की जाती तथा वर्षा पूव समाप्त हो जाती थीं। राणा जगतसिंह तक राज्य का वाणिज्य व्यापार बहुत ही उन्नति पर रहा था।[4] विदेशी व्यापारी एव सौदागरो द्वारा मेवाड म माल लाया और माल ले जाया जाता था। राज्य द्वारा इनकी सुरक्षा का ध्यान रखा जाता और उ हें पूण सुविधाए प्रदान की जाती थी।[5] 18 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से 19 वीं शताब्दी

पूवक लागू कराई गई थी क्योंकि इससे पूव 1854 ई का समझौता कर लिया गया था। फिर भी जागीरदार स्वेच्छाचारी कायवाहियो से हट नही रहे थे। यद्यपि सीमा और भोमट की जागीरो के यहां यह नियमन स्थापित नही हुआ था फिर भी अधिकतर जागीरो ने इस व्यवस्था को अगीकार कर लिया था।

1 एनाल्स भा 3 पृ 1736-1738, गजेटियर रिपोट आफ मेवाड (ह प्र) प 141 मेवाड रेजीडे सी, प 56

2 मनोरथवल्लरी पत्र 194, शाहपुरा राज्य की ख्यात खड 3, प 63 मेवाड रेजीडे सी प उपरोक्त कोठारी प 191-192

3 वर्षाऋतु रा दोहा (ह प्र) पत्र 88-अ दोहा 29, चन्द्रकुंवर री वार्ता (ह प्र) पत्र- 55 ब बारामासी रा दूहा (ह प्र), पत्र 153, बीजा सोरठ री वात (ह प्र) पत्र 49, त्रिया विनोद (ह प्र) पत्र 59

4 एनाल्स भा 1 पृ 454

5 राणा अमरसिंह द्वितीय का वि स 1755 (1698 ई) मगसर सुदि 5 का पर्वाना (वी वि , पृ 2202), राणा जगतसिंह द्वितीय का पर्वाना, वि स 1793 (1736 ई), राव केसरी का दालाजी को पर्वाना वि स 1863 (1806 इ), एनाल्स भा 1 पृ 243 454, ट्रिटीज—एगेंजमेन्ट खण्ड 3, पृ 49 54, धारा 4

के पूर्वार्द्ध तक के काल मे विदेशी व्यापारियो के काफिलो का ग्रावागमन तत्कालीन राजनीतिक वातावरण ग्रौर लूटमार प्रवृत्तिया के भय से कम हो गया था किन्तु शक्ति सम्पन्न व्यापारी निज सैनिक बल पर विभिन्न राज्या मे माल क विक्रय हेतु घूमते थे । सम्पूर्ण ग्रालोच्यकाल म उपरोक्त काल, व्यापार वाणिज्य की दृष्टि से ह्रास-काल' रहा था ।[1] 1818 ई म राज्य के व्यापार विकास हेतु कर्नल टॉड ने कम्पनी की जमानत पर कई विदेशी व्यापारियो को विशिष्ट सुविधाए प्रदान कर मेवाड मे बसाया था ।[2] इससे शनै शनै 19 वी शती के उत्तरार्द्ध पश्चात् वाणिज्य व्यापार गति लेने लगा था । राज्य द्वारा विदेशी व्यापारिक वस्तुग्रो पर लगने वाली चुगियो को 30 मे 50% घटाया गया तथा सेठ जोरावरमल बापना को राज्य वक का ग्रधिकार दिया गया था ।[3]

ग्रध्ययनकाल में राजपूताना के जयपुर कोटा पाली, पचभद्रा सिरोही गुजरात के ग्रहमदाबाद' सूरत बडौदा, भुज पाटन कच्छ उत्तर प्रा त के दिल्ली, बनारस ग्रागरा कानपुर, मालवा के सारगपुर, ग्रा ध्र के ग्रौरगाबाद, पाकिस्तान में स्थित मुलतान पजाब व काश्मीर प्रदेशो से माल सामान ग्रायात किया जाता था तथा महाराष्ट्र गुजरात के कई स्थानो राजपूताने मे ग्रजमेर जयपुर ब्यावर, मालवा म नीमच जावद ग्रादि स्थानो पर निर्यात किया जाता था ।[4]

आयात-निर्यात की जाने वाली वस्तुए

राज्य म ग्रफीम कपास तम्बाकू, तिल सरसो, घी खालें, लकडी के खिलौने कासे के बतन मोम शहद लाख ग्रादि क साथ जीवित भेडें बकरिया ग्रौर बकरे ग्रन्य राज्यो को भेजे जाते थे । ग्रायात किये जान वाली वस्तुग्रो म जयपुर से कपडा चीनी मिट्टी का सामान, खाडसारी शक्कर मीनाकारी का सामान, सीसा हाथी दांत जोधपुर राज्य के पाली से लोई (कम्बलें) हाजी (खाने का सोडा) पचभद्रा स नमक सिरोही राज्य से तलवारें छुरिया,

---

1 एनाल्स भा 1 पृ 514-515, वी वि , पृ ,1712 उ ई , भा 2 पृ 680

2 उपरोक्त, पृ 554-555, मेवाड रेजीडेन्सी, पृ 55

3 उपरोक्त पृ 561

4 गजेटियर रिपोर्ट ग्रॉफ मवाड (ह ग्र), प 140 141

कटारी, कोटा राज्य से अनाज, वंधेज के कपड़े, बूंदी राज्य से कपड़े आदि मंगवाये जाते रहे थे।[1] भावलपुर से कांच का सामान, मजीठ अलरग, सूखे मेवे, मालवा से सीसा, छीट के कपड़े, तिलहन व तम्बाकू का आयात किया जाता था।[2] गुजरात राज्य के पाटन से रेशमी वस्त्र सूरत और बड़ौदा से सोना-चांदी तथा अन्य जवाहरात अहमदाबाद से वस्त्र चावल, बम्बई से नारियल इत्र एव सुगन्धित तेल, उत्तर प्रान्त में बनारस से काम की हुई जरदोजी तथा कसीदे की साड़ियां, कानपुर से तेल चावल और धातु के बरतन आदि का राज्य में लिये क्रय किया जाता रहा था।[3] बुरहानपुर से बहुमूल्य कपड़े, सारगपुर से पगड़ियाँ औरंगाबाद से कुसुमल का कपड़ा, कश्मीर से ऊनी वस्त्र, मुल्तान से छींट अबलक घोड़े सौदागरों द्वारा मेवाड़ में लाये जाते थे।[4] किन्तु उपरोक्त आयात 18 वीं शती के पश्चात् तक अभिजात्य वर्ग के उपभोग हेतु आवश्यकतानुसार किया जाता था। जन-साधारण के उपभोग का अधिकतर सामान राज्य में आत्मनिर्भर-उत्पादन द्वारा पूर्त कर लिया जाता था। मराठा अतिक्रमण के प्रभावत आंशिक आयात निर्यात भी लगभग बन्द हो गया था।[5] 19 वीं शती में शनै शनै व्यापार की स्थिति सुधरने के परिणामस्वरूप बाह्य राज्यों में जयपुर जोधपुर, कोटा, बूंदी ब्रिटिश क्षेत्र अजमेर कानपुर, सूरत, बम्बई आदि से तांबा, पीतल सोना-चांदी, नारियल, कांच का सामान दाल, अनाज, सूखे

---

1 ब रि—परगना बही वि स 1787 (1730) बस्ता 1 एनाल्स भा 2 पृ 812-813

2 भीलवाड़ा से मोहन राम दुरगादास का जयपुर के शाह जीवराज मोहन राम को वि स 1824 (1764 ई) का पत्र, मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन—फाइल 70-74 बस्ता 4, एनाल्स, उपरोक्त, ममोयस आफ सेन्ट्रल इण्डिया, भा 2 पृ 63-64, वटे—मेवाड़, पृ 69

3 जगविलास (ह प्र), पत्र 21-22, वाराणसी विलास (ह प्र), पृ 7-8, विलास पृ 157-161, श्यामलदास कलेक्शन नगीनाबाड़ी की रोजनामचा की चौपड़ी वि स 1820 (1763 ई), क्र 212, नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 7, पृ 41-44

4 उपरोक्त, श्यामलदास कलेक्शन—बही उपरोक्त, वि स 1856 (1799 ई), क्र 1327

5 एनाल्स, भा 1, पृ 554-555, भा 3 पृ 1736-1738

मेवे सीसा मलमल के कपड़े रेशम के कपड़े, चन्दन, शक्कर मिट्टी का तेल, पशुओं मे घोड़े ऊँट, हाथी, बैल, गाय आदि का आयात और कपास तम्बाकू अफीम, खालें, लकड़ी और लकड़ी के खिलौने, चित्रकारी, जड़ाऊ आभूषण, भरत (कांसे) के बर्तनों का निर्यात किया जाने लगा था।[1]

अफीम एव नमक के व्यापार का समझौता

18 वी शती तक मेवाड में अमल कही जाने वाली अफीम तथा लूण (नमक) का उत्पादन राज्य की आवश्यकता अनुसार किया जाता रहा था।[2] किन्तु मेवाड ईस्ट इण्डिया कम्पनी में मध्य सरक्षण सधि 1818 ई के पश्चात् कम्पनी का ध्यान राज्य के अफीम उत्पादन की ओर अग्रसर होने लगा। इसका मुख्य कारण चीन के साथ कम्पनी का अफीम-व्यापार रहा था।[3] कम्पनी सरकार के अधिकृत भारतीय प्रान्तों के अफीम-उत्पादन तथा व्यापार पर कम्पनी का आर्थिक एकाधिकार चल रहा था।[4] किन्तु राजपूताना के अफीम उत्पादन द्वारा इस एकाधिकारिक कम्पनी व्यापार को हानि की आशका तथा राजपूताने से होने वाली तस्करी के प्रति भय था।[5] अत कम्पनी ने इसी दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए 1825-26 ई मे मेवाड सरकार से एक आर्थिक समझौता किया जिसके अनुसार 50 हजार रुपया कलदार वार्षिक ठेके पर राज्य के अफीम-व्यापार का ठेका कम्पनी को प्रदान किया गया।[6] किन्तु मेवाड की राजस्व मुकातदारी प्रणाली ने कम्पनी

---

1 ब रि —खत बही, वि स 1906 (1849 ई), बस्ता 13, एनाल्स, भा 2 पृ 813, ग्रटे—मेवाड प 69, गजेटियर रिपोर्ट ऑफ मेवाड (हि प्र), प 139 140, मेवाड रेजीडेन्सी प 56, टेरीफ महसूल-दाण राज्य उदयपुर मेवाड।

2 एनाल्स भा 3, प 1664-1671

3 रमेशदत्त—दी इकानोमिक हिस्ट्री ग्राफ इण्डिया भा 2, प 73

4 बगाल बिहार तथा उत्तर प्रान्त यहाँ की अफीम को बगाली—अफीम' कहा जाता था।

5 मेवाड प्रतापगढ डूगरपुर बासवाड़ा झालावाड, कोटा, बूदी और टोंक—यहाँ की अफीम मालवी अफीम' कहलाती थी।

6 पो क, 11 मार्च 1831, न 46-48, पूर्व आधुनिक राजस्थान पृ 276-277

मे उपरोक्त ठेके मे हानि की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। किसान द्वारा अफीम उत्पादन का सही मूल्यांकन नहीं बताया जाता था, इस प्रकार शेष छुपाई गई अफीम को ऊँचे भावों म तस्करी म बेचा जाता था। इसके अतिरिक्त कोईभी व्यापारी अफीम का अनु-ठेका प्राप्त करने को लालायित नहीं रहता था क्योंकि मेवाड से बम्बई का माग मालवा और गुजरात होकर जाता था जहां स्थान स्थान पर व्यापारियों को चु गी देनी पड़ती थी।[1] इसके साथ ही यह माग अत्यधिक लम्बा और कष्टसाध्य था। अत कम्पनी द्वारा 1830 ई म अनुज्ञा पत्र (लाइसेंस) देने का तरीका अपनाया गया। फिर भी कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सका इसलिये कम्पनी ने इसके निर्यात शुल्क पर राज्य से समझौता किया।[2] राज्य से बाहर जाने वाली अफीम पर इस समझौते के अनुसार 140 पौंड या 63 किलोग्राम अफीम की एक पेटी पर 175 रु चु गी शुल्क कम्पनी सरकार द्वारा लिया जाने लगा था।[3] यह चु गी शुल्क 19 वी शताब्दी के अन्त तक चीन को भेजी जाने वाली अफीम पर प्रति 63 कि ग्रा 600 रुपया कलदार तथा ब्रिटिश भारत में विक्रय हेतु निर्यात की जाने वाली अफीम पर 700 रुपया तक बढ़ा दिया गया था।[4]

1868 ई तक ब्रिटिश भारत की ताज सरकार ने भू पू कम्पनी सरकार की अफीम व्यवस्था को चलने दिया था। किन्तु इस समय म डूगरपुर-अहमदाबाद की नवीन और बम्बई जाने हेतु निकटतम मार्ग खुल गया था। अत इस माग से अधिक तस्करी की सम्भावना को देखते हुए चित्तौड का डिपो 1869 ई म उदयपुर लाया गया। अमल की चौकी (अमल का काटा) स्थापित की गई।[5] इस चौकी पर अफीम लाने तथा ले जाने पर मेवाड सरकार द्वारा 20% तथा 48% की दर से चु गी वसूल की जाती थी।[6]

---

1 मेवाड रेजीड सी पृ 44, दी इकोनोमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया, भा 2, पृ 73
2 पो क 11 माच 1831, न '46 48 पूव आधुनिक राजस्थान, पृ 277
3 जाजवाट—ए डिक्शनरी ऑफ इकोनोमिक प्रोडक्टस आफ इण्डिया (1892), खड 6, पृ 94
4 मेवाड रेजीडे सी पृ 75
5 पो क, 21 जनवरी 1869 नं 380-382 राजपूताना एज सी रिपोट 1870-71, वो वि पृ 2088, 2094 95
6 मेवाड रेजीड सी, पृ 75

नवम्बर 1883 ई में यह कांटा पुन उदयपुर से चित्तौड स्थानान्तरित किया गया क्योंकि उदयपुर अहमदाबाद मार्ग पर विभिन्न ठिकानो के ठाकुर तथा भीलो द्वारा अलग से बोलाई और राहदरी वसूल की जाती थी अत यह अफीम बम्बई म बगाली अफीम से महगी पडती थी। फिर इस समय तक अजमेर मालवा रेल खुल जाने से अफीम को रेल द्वारा सुरक्षित बम्बई पहुचाया जा सकता था।[1] राज्य से अफीम का औसत 1870 ई से 1900 ई तक 3,845 पटी रहा था। जिसमें 3 602 पेटी चीन, 171 पटी ब्रिटिश भारत में भेजी गई और 72 पेटी चु गी मुक्त राज्य प्रयोग हेतु रखी गई थी। इस व्यापार द्वारा ब्रिटिश भारतीय सरकार को 35 4 लाख से 21 8 लाख औसत चु गी लाभ प्राप्त हुआ था जब कि मेवाड सरकार को 3 लाख से 2 लाख औसत चु गी प्राप्त हुई थी।[2]

अफीम के अतिरिक्त राज्यावश्यकता के अनुसार स्थान स्थान पर खार-पानी से नमक बनाया जाता था।[3] ब्रिटिश भारत सरकार अपने आर्थिक लाभ के लिये राजपूताने के समस्त लवण-उत्पादक क्षेत्र पर व्यापारिक नियन्त्रण चाहती थी।[4] अत 14 फरवरी 1878 को वायसराय समिति का सदस्य मिस्टर ए सी ह्यूम, और मेवाड के पोलिटिकल एजेन्ट ले कनल इम्पा राणा सज्जनसिंह से राजनगर मे मिले तथा नमक के सम्बन्ध में वार्तालाप किया।[5] लगभग एक वर्ष तक लगातार ब्रिटिश सरकार के प्रयत्नो के पश्चात् 12 फरवरी 1879 ई को ब्रिटिश भारत सरकार तथा मेवाड के

---

1 पो क दिसम्बर 1883, न 12-14, मेवाड रेजीडे सी पृ 75
2 मवाड रेजीडेन्सी उपरोक्त।
3 मेवाड में खारी नदी से उदयपुर के मध्य तक नमक बनाया जाता था (पो क अप्रेल 1880 न 60 87)। तालाब के क्यारो मे पानी भर सुखाया जाने पर 'खार की परत बन जाती थी। यह नमक 'खारी कहलाता था। उदयपुर सभाग म पानी के लवण मात्रा का अनुमान पानी भरे हुए बान्टी सुराही व अन्य बतनो पर जमे लवण से आंकी जा सकती है। यह जमाव 24 घण्टे म बन जाता है।
4 दी इकोनोमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया भा 2 पृ 393-394
5 राणा की ओर से प्रधान मेहता पन्नालाल और कविराजा श्यामलदास ने इसमें भाग लिया था।—वी वि, पृ 2194, मवाड का राज्य प्रबन्ध पृ 81

मध्य नमक के व्यापार का समझौता किया गया।[1] इस समझौते के अनुसार मेवाड़ राज्य में नमक बनाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा बाह्य एवं आन्तरिक चुंगी अधिकार ब्रिटिश सरकार ने सुरक्षित कर लिए। अधिकारों की हानि के बदले में 2900 रु कलदार तथा चुंगी हानि की पूर्ति हेतु 35000 रुपया कलदार ब्रिटिश सरकार ने मेवाड़ राज्य को देना स्वीकार किया। राणा के निजी व्यय हेतु 1 हजार मन नमक निःशुल्क तथा राज्य-व्यापार हेतु 1,25 000 मन नमक आधी या पचास ½ प्रतिशत चुंगी पर भेजना मान लिया गया था।[2] किन्तु 3-4 माह में ही निःशुल्क तथा अर्द्ध शुल्क के नमक का मेवाड़ में निर्यात करने की हिसाबी कठिनाइयों के कारण इस समझौते में आंशिक परिवर्तन किया गया।[3] इसमें तय किया गया कि ब्रिटिश सरकार सम्पूर्ण निर्यात किए गए नमक की चुंगी लेगी और हानि-पूर्ति हेतु 20 04,150 रुपया कलदार प्रति वर्ष मेवाड़ राज्य को दिया जायगा। इस राशि से 27000 रुपया कलदार प्रति वर्ष जागीर नमक की हानीत जागीरदारों को प्रदान किया जायगा।[4] इस प्रकार राज्य को हानीत आमदनी प्राप्त होने लग गई किन्तु नमक मूल्य बढ़ते रहने से चुंगी के रूप में व्यापारी और अन्य की दृष्टि से जनसाधारण को हानि होने लगी थी। इस प्रकार व्यापारियों द्वारा नमक व्यापार कम कर दिया गया और जनता को नमक ऊँचे मूल्यों पर मिलने लगा।[5] अब राणा ने नमक के व्यापारियों को राज्य में नमक-भण्डार तथा व्यापार के लिए साधारण ब्याज पर आर्थिक सहायता प्रदान कर व्यापारियों को नमक व्यापार की ओर प्रेरित करते हुए ऊँचे मूल्य को घटाने का प्रयास किया और इसके साथ ही राज्य में आयात किये गए नमक पर मेवाड़ द्वारा प्राप्त की जाने वाली चुंगी समाप्त कर दी।[6] जनता को नमक सुलभता पूर्वक उपलब्ध कराने के लिये प्रत्येक परगने में राज्य की ओर से नमक-डिपो प्रारम्भ किये गये। इस प्रकार नमक के बढ़ते मूल्य को रोकने, व्यापारियों को नमक व्यापार में आर्थिक सहायता तथा

---

1 *पो क अप्रल 1880, न 60 87 ट्रिटीज—एगेंजमेन्ट खण्ड 3,* पृ 38 39

2 पो क, अप्रैल 1880, न 60 87, उ ई, भा 2, पृ 816

3 उपरोक्त।

4 उपरोक्त, मेवाड़ रेजीडेंसी, पृ 75-76

5 उ ई भा 2 पृ 813, मेवाड़ का राज्य प्रबन्ध, पृ 82

6 मेवाड़ रेजीडेंसी, पृ 29, उ ई, भा 2, पृ उपरोक्त।

जनसाधारण के लिए राजकीय नमक डिपो खोल कर राणा द्वारा नमक-वितरण की सुव्यवस्था स्थापित की गई थी।[1]

समझौतों का आर्थिक परिणाम

राज्य में अफीम उत्पादन की प्रक्रिया अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने हेतु, होती चली गई थी। जहां 18 वीं शताब्दी मे अफीम की खेती का प्रसार नगण्य था वहां 19 वीं शताब्दी मे किसानो द्वारा अधिकतर अफीम की खेती प्रारम्भ कर दी गई थी। इस प्रकार बढ़ती हुई नशीली खेती ने राज्य में अन्न-उत्पादन को हानि प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया था। अन्नदाता खेत अफीम से भर कर राज्य मे अन्न अकाल की स्थिति बनाने लगे थे।[2] 1870 ई के अकाल मे राज्य के अन्न-भण्डार तक खाली थे जब कि राज्य के भू-राजस्व का मुख्य साधन जिन्स रहा था। अफीम की खेती के अप्रत्यक्ष प्रभाव से अनाज-भाव भी प्रभावित हुए, उदाहरणार्थ—जहां 18 वीं शताब्दी के मराठा-अतिक्रमण काल में गेहू का बाजार भाव 7 सेर प्रति रुपया मध्यांक था वहां 19 वीं शताब्दी के शान्तिकाल मे 5 सेर प्रति रुपया मध्यांक हो गया था।[3]

ब्रिटिश भारत की सरकार द्वारा 63 किग्रा अफीम पर 600 से 700 रुपया वसूल करना और मेवाड़ को इसके स्थान पर 48% चुगी ग्रहण करने का अधिकार प्रदान करना ब्रिटिश भारतीय सरकार की आर्थिक लोलुपता एव शोषण को प्रकट करता है। मेवाड की राजस्व हानि का प्रमाणीकरण इससे किया जा सकता है कि उसे 48% चुगी आय में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा स्थापित अमल की कोठी और तुलाई काटे की व्यवस्था का भार भी वहन करना पड़ता था।[4]

नमक के समझौते के फलत राज्य मे नमक बनाने वाले तो बिलकुल बेकार हो गये थे। नमक लाने-लेजाने वाले बनजारा लोगो के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन नष्ट हो गया तथा उन्हे जीविका के अन्य साधन ढूढने पड़े।

---

1 पो क, अप्रेल 1881, न 25-39, मेवाड एजेंसी रिपोर्ट, 1880-81 ई।

2 पृथ्वीसिंह महता—हमारा राजस्थान, पृ 227

3 वी वि पृ 1744, मेवाड़ हाल (अप्र) रजिस्टर न 1932

4 राजपूताना एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट 1870 ई, 1872-73 ई, वी वि, पृ 2094-2095, 2118

इस कारण वे चोरी छुपे तस्करी करने की ओर प्रेरित हुए। उनके चोरी छुपे माल लाने का प्रभाव राज्य की अन्य वांछित चुंगी पर पड़ने लगा था। इसी प्रकार नमक समझौते का प्रभाव व्यापारियों पर भी पड़ा और उन्होंने नमक के व्यापार के प्रति उदासीनता दिखाना प्रारम्भ कर दिया था। राज्य द्वारा आर्थिक सहायता आदि द्वारा भी कोई प्रभावकारी असर उत्पन्न नहीं किया जा सका था। एक प्रकार से तथ्यत उपरोक्त दोनों समझौते ब्रिटिश आर्थिक लाभ और मेवाड़ की आर्थिक हानि के मध्य किये गये समझौते थे। इनका मेवाड़ के लिए कोई लाभकारी प्रभाव नहीं रहा था।

व्यापारिक यातायात व्यवस्था

1861 ई के पश्चात् राज्य में पक्के मार्ग बनने प्रारम्भ हो गये थे किन्तु 19 वीं शताब्दी के पश्चात् भी इनके निर्माण की गति मन्द रही थी। 1881 ई के पश्चात् से 19 वीं शताब्दी के अन्त तक राज्य के पूर्वी एवं मध्यवर्ती भाग में दो रेल लाइन बन जाने के कारण वाणिज्य-व्यापार रेलों द्वारा भी प्रारम्भ हो गया था किन्तु समुचित सड़क यातायात के अभाव-स्वरूप इसका लाभदायक फल प्राप्त नहीं हुआ था। इस प्रकार आलोच्यकाल में व्यापारिक यातायात का मुख्य साधन कच्चे एवं पथरीले मार्ग रहे थे। इन मार्गों द्वारा बनजारों द्वारा बैलों और भैंसों, गाडुलिया लुहारों द्वारा बैलगाड़ियों, रेबारी लोग ऊंटों द्वारा कुम्हार व धोबी द्वारा खच्चरों गधों पर माल लाने-लेजाने का कार्य किया जाता रहा था। पहाड़ी चढ़ाइयों तथा मालवाहक पशुओं द्वारा ऐसी राहों को पार नहीं करने की अवस्था में माल आदमी की पीठ पर आता जाता था।[1] लम्बी दूरी पर माल ढुलाई का कार्य चारण, बनजारा तथा गाडुलिया लुहार द्वारा सम्पन्न होता था। यह जातियां लड़ाकू और बहादुर होती थी अत संकट का सामना करने में समर्थ रहती थी। चारण जाति को समाज में ब्राह्मणिक सम्मान प्राप्त था अत उनके काफिले को लूटना पाप माना जाता था। यह व्यापारिक काफिले बैलों के झुण्ड पर माल लाद कर चलते थे जिसे बालद कहा जाता था। एक बालद (टांडा) में एक से एक हजार तक बैल होते थे।[2] व्यापारी और यात्री

---

1 शाहपुरा राज्य की ख्यात खण्ड 2 पृ 30-31, खण्ड 3, पृ 63, सो ला मी रा पृ 329

2 बीजा सोरठ री वात (ह प्र), पत्र 49, मधुमालती (ह प्र), पत्र 257, पद 99, एना स, भा 3, पृ 1657

लोग रात्रि मे यात्रा नही करते थे। इनकी यात्रा के मार्ग पर स्थित गांवों, धर्मशालाओं या धर्मशालाओं म यह लोग रात्रि विश्राम करते चलते थे। मार्ग की लम्बी यात्रा मे धार्मिक स्थलो छायागार स्थानो जहां कुए बावडियां बनी होतीं अपना खाना बनाते खाते तथा दैनिक विश्राम करते चलते थे। मार्गावस्थित सभी बावडियों के किनारे पशु के पेय हेतु प्याउए बनी हुई थीं।[1] ऊंटों का काफिला एक दिन म 22 मील का मार्ग और घोडो का काफिला एक दिन में 50 मील पार कर लेता था। बैलगाडी, गधे, खच्चर आदि एक दिन में 25 से 30 मील तक का रास्ता तय कर लेते थे।[2] इस प्रकार यात्रा के लिए घोडा और व्यापार के लिए बलगाडी और बालद उपयुक्त रहती थी। अभिजात्य एव सम्पन्न वर्ग के लोग पालकियो व बग्गिया द्वारा आरामदायक यात्रा करते थे।[3] 19 वीं शताब्दी क उत्तरार्द्ध म चित्तोड से उदयपुर तक यात्रियों को लाने-लेजाने हेतु 'मलकाट' चलाने का ठेका सेठ जुहारमल बाफना को दिया गया था किन्तु इसमे किराया अधिक लगने के कारण यह काट जन-साधारण के लिए अनुपयोगी था। अन्य कारणों के साथ साथ इस कारण भी सेठ को आर्थिक क्षति उठानी पडी अ तत इसका चलना बन्द कर दिया गया था।[4]

18 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म अतिक्रमण की परिस्थितियो तथा केन्द्रिय शक्ति की ढुल-मुल नीति के परिणाम स्वरूप यात्रियो और व्यापारियों का अपनी सुरक्षार्थ जागीर क्षेत्रो म जागीरदारो को रखवाली तथा बोलाई नामक राहदरी (मार्ग-शुल्क) देना पडता था।[5] यद्यपि ब्रिटिश सरक्षण काल में इन शुल्को की समाप्ति तथा व्यापारियों की सुरक्षा का नि शुल्क

---

1 एनाल्स भा 3 पृ 1622, 1658 1731 तथा द्रष्टव्य—आवास-निवास अध्याय।

2 टाड द्वारा बूदी यात्रा के समयाकन राणा जवानसिंह की अजमेर यात्रा का दुर्गे अ तराल व ट्रेवल्स इन सेन्ट्रल इण्डिया पृ 138 से उद्धृत।

3 अप रामायण (ह चि अ) पत्र 30-31, शाहपुरा राज्य की ख्यात खण्ड 2, पृ 40, वी वि, पृ 2097

4 उ ई, भा 2, पृ 843-844

5 एनाल्स भा 1, पृ 521 वी वि, पृ 1236, गुप्ता एव माथुर—बनेडा सग्रहालय के अभिलेख, पृ 13-14, इण्डिया एण्ड इटस नटिव प्रिन्सेस पृ 138

दायित्व जागीरदारों के कन्धे में शामिल कर दिया गया था फिर भी 20 वीं शताब्दी के पूर्व तक जागीरदार इन यमाधिकृत अधिकारों का उपभोग करते रहे थे।[1] भील मीणा क्षेत्र के पहाड़ी विकट उदयपुर से डूंगरपुर और मारवाड़ जाने वाले मार्गों पर बगैर बलाई लिए कोई भी व्यापारिक अथवा यात्रिक काफिला सुरक्षित आवागमन नहीं कर सकता था। 1864 65 ई में मेवाड़ की यात्रा करने वाले फ्रांसीसी यात्री रूसलेंग ने अपनी डायरी में लिखा कि भील क्षेत्र में राहदारी चुकाये बिना यात्री एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता था। स्वयं डायरी लेखक ने डूंगरपुर से उदयपुर तक आने के लिए एक पैसा प्रति चार मील के दिया था।[2] मराठा अतिक्रमण काल में मार्ग का सुर्रा रात यात्रा बीमा 8% तथा प्रति बैल मास पर 3 रुपया 8 आना व्यापारिक माल बीमा लिया जाता था किन्तु शान्ति-काल में यह बीमा 6-7% घट गया था।[3] मार्गों पर पुल-व्यवस्था के अभाव के फलस्वरूप वर्षा के दिनों में मार्ग अवरुद्ध हो जाया करते थे परन्तु आवश्यक होने पर कीर नामक जाति के लोग नदी पार कराने उतराई नामक शुल्क प्राप्त कर लोगों को सुरक्षित नदी पार उतार देते थे। यह शुल्क कितना लिया जाता था इसके लिखित प्रमाणाभाव से 20 वीं शती के उत्तरार्द्ध में प्रति व्यक्ति एक पैसा के लौकिक नियम को तत्कालीन व्यवस्था में स्थापित किया जा सकता है।

चुंगी व्यवस्था

व्यापारिक माल की आमद और निकास (आयात व निर्यात) पर व्यापारियों को दाण, किराया एवं मापा नामक शुल्क राज्य को देना पड़ता था।

---

1 एनाल्स, भा 1, पृ 564, ट्रिटीज—एंगेजमेंट, खण्ड 3, पृ 43 44 व रि—राणा शम्भुसिंह का परवाना, वि स 1922 (1866 ई), मसल वही, बस्ता 3, पो क, 26 अगस्त 1848, न 26। ऊपरी तौर पर समझौते का दिखावा करते हुए जागीरदार लोग अप्रत्यक्ष अपनी जागीरों में बगर रखवाली दिए आने जाने वाले काफिलों को अपने आदमियों से लुटवा देते थे। इस प्रकार की कार्यवाहियाँ 19 वीं शताब्दी के पश्चात् भी चलती रही थीं।

2 ट्रेवल्स इन सेण्ट्रल इण्डिया, पृ 137 139

3 एनाल्स भा 1, पृ 555 561, भा 3, पृ 1688, वी वि, पृ 1744, उपरोक्त।

एक गांव स दूसरे गांव माल लाने-लेजाने पर ग्राम पचायतो द्वारा मापा' लिया जाता रहा था। यद्यपि दाण और बिस्वा का अधिकार राणा को ही था कि तु 18 वीं शती के कालातिक्रमण के फलत विशिष्ट स य योग्यता प्रदर्शित करने वाला को क्षत्रिय दाण के अधिकार प्रदान किये गये थे।[1] 1818 ई के पश्चात् इन अधिकारों को केन्द्राधिकृत करने का प्रयत्न करते हुए खालसा एव अ य क्षेत्रो के सायर (चु गी) का ठेका सेठ जोरावरमल बाफना को दिया गया था।[2] सायर के ठेकेदारी की यह प्रथा राणा स्वरूप-सिंह तक चलती रही थी। इसके पश्चात् ठेके की सायर व्यवस्था तोड कर स्थान स्थान पर राज्य के दाणी-चोतरे स्थापित किये गय थे जिनकी कुल सख्या 75 से 80 के लगभग रही थी।[3] रेल लाइन बन जाने के पश्चात् प्रत्यक रल्वे-स्टशन पर एक दाणी घर बनाया गया जहाँ रेल्व से भेजे जाने वाले माल अथवा लाये जान पर चु गी ली जाती थी। दाणी घरो म नियुक्त दाणी और हरकारे का मासिक वेतन क्रमश 4 रुपया और 1 रुपया रखा गया था जो कि 1920 ई म 10 रुपया तथा 6 रुपया बढाया गया था।[4] दाणी चातरा पर चु गी नगा की गिनती अनाज के तोल और पशु गणना पर ली जाती थी उदाहरणार्थ सलुम्बर दाणी चोतरे की उपलब्ध दाण-मिसलो[5] के अनुसार जावद तथा अहमदाबाद के कपडे की एक पाटी (3 मण) पर 1 रुपया 14 आना पैसार (आमद) लिया जाता था जब कि निसार (निकास) पर प्रति पोटी 15 आना तेल प्रति पोटी 5 आना घी प्रति पोटी 15 आना धान पर प्रति ऊ ट बोझ 1 आना 1 पैसा खांड गुड पर प्र ऊ ट बो 1 रुपया 14 आना, रुई तथा ऊन पर प्र ऊ ट बो 8 आना

---

1 एनाल्स, भा 1, पृ 168, 236 शाहपुरा राज्य की ख्यात खण्ड 3 पृ 63 सलक्शन फ्राम दी बनेडा आर्काइव्ज भा 2, पत्र 4-5

2 ब रि — परगणा वही वि स 1901-1919 (1844-1862 ई) बस्ता 2, बी वि पृ 1942, 2204

3 ब रि — वही वि स 1924 (1867 इ), बस्ता 3, बी वि, पृ 2202

4 वणमहल रिकाड — रोकड खच बही, वि स 1921 (1864 ई) तथा वि स 1977 (1920 ई) दाण कस्टम फाइल बस्ता 1 एव 2

5 दाण कस्टम फाइल, बस्ता 1

श्रौर 2 रुपया लिया जाता था। 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे वस्तु के मूल्यानुसार आयात शुल्क लिया जाने लगा जसे बारीक एव बहुमूल्य कपडे पर प्रति रुपया 1 आना मोटे कपड़े पर दो पैसा तेल पर प्रति मरण 20 रुपया घी पर प्रति मरण 10 रुपया गुड-शक्कर पर प्रति मरण 8 आना व 1 रुपया, ऊन पर प्रति रुपया 14 आना लिया जाने लगा था।[1] इस विवरण से स्पष्ट होता है कि राज्य द्वारा निर्यात से अधिक आयात होता था इसीलिए आयात शुल्क निर्यात शुल्क से अधिक लिया जाता था। 19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध से लगातार आयात शुल्क बढते बढते 20 वी शताब्दी में तिगुणे हो गये थे। इसका मुख्य कारण 1881-82 ई मे नमक व्यापार सक्ट के समय से राज्य द्वारा अफीम तम्बाकू, महुआ, गांजा कपडा, रेशम खांड कपास लकडी तथा लोहे के अतिरिक्त अन्य वस्तुओ पर चु गी समाप्त करना था।[2] पुण्यार्थ धर्मार्थ लडकी के विवाह तथा मत्युभोज मे प्रयुक्त की जाने वाली वस्तुओ पर शुल्क (चु गी) माफ रहती थी।[3] राज्य म अधिक से अधिक आयात को बढावा देने तथा आर्थिक लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से आयात माल की कुल चु गी का ½ भाग माफी देने की प्रथा भी प्रचलित रही थी। चु गी घर पर दाणी लागत नामक दाणी-शुल्क 1 पसा प्रति रुपया लिये जाने के साथ साथ सामान की तुलाई और ढुलाई का व्यय माल मालिक को वहन करना पडता था।[4]

उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करता है कि राज्य म, उद्योग वाणिज्य तथा व्यापार की स्थिति मराठा अतिक्रमण काल म सुरक्षा अभाव के फलस्वरूप पल्लवित नही रहा वहा 19 वीं शताब्दी म सडक यातायात की सुव्यवस्था क अभाव में विदेशी व्यापारी राज्य की ओर अधिक आकर्षित नही हुए थे। यद्यपि कनल टाड ने बाहर से व्यापारियो को निमन्त्रित कर राज्य म बसने तथा उन्हे चु गी मे रियायत दिलान का प्रयत्न किया था कि तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी और बाद म ब्रिटिश भारत की सरकार द्वारा अधिक आर्थिक लाभ अर्जित करने की प्रवत्ति के परिणामत मेवाड राज्य भी आर्थिक उत्पादन

---

1 टेरीफ महसूलदाण राज्य उदयपुर मेवाड, सन् 1922-23 ई ।

2 मवाड रनीडे सी पृ 29 उ ई भा 2 पृ 817, मेवाड का राज्य प्रब ध प 82

3 दाण कस्टम फाइल, उपरोक्त, मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन फाइल 61 बस्ता 3

4 मेहता सग्रामसिंह कलक्शन फाइल/बस्ता—उपरोक्त।

बनाने और व्यापार को प्रश्रय देने के प्रति उदासीन रहा था। फिर राज्य की आत्मनिर्भर आर्थिक व्यवस्था के कारण आयात व्यापार का विकास असम्भव था। निर्यात व्यापार पर कपास और अफीम के अतिरिक्त शेष पर चुंगी की दरें ऊँची तथा कठोर नियन्त्रण की स्थिति के कारण इस क्षेत्र में भी प्रगति नहीं हो सकी थी। 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक राज्य के उद्योग वाणिज्य एवं व्यापार ग्राम्य-आर्थिक व्यवस्थाओं से लिप्त रहे थे।

हुंडी और टीप प्रथा

वाणिज्य व्यापार में लेन देन का आधार परम्परा से मुद्रा अथवा वस्तु विनिमय रहा था। किन्तु इनके स्थान पर हुंडी और टीप द्वारा भी व्यापारिक सौदे किये जाते थे। 18 वीं शताब्दी में ऐसी हुंडियां राज्य की जमानत पर भुगतान की जाती थीं।[1] मराठा-अतिक्रमण काल में तो राज्य की देनदारियां को हुंडियों द्वारा ही चुकाया जाता रहा था।[2] इस काल में अधिकतर हुंडियां पंडित सदाशिव गोविन्दराव माधोजी शिवाजी रघुनाथ नारजी गंगाधर बालदेव बहिरजीताकपीर भाला जालिमसिंग तालामिया, सेठ गोकुलदास शाह सतीदास आदि के नाम लिखी हुई मिलती है जो कि हुंडी का रुपया राज्य और व्यक्ति की जमीन-जायदाद गिरवी रख कर भुगतान करते थे। यह भुगत-राशि गिरवी रखी गई भूमि अथवा जायदाद के उत्पादन और उपार्जन द्वारा वसूल किया जाता था।[3] इसी प्रकार राज्य के आन्तरिक लेन देन में 'टीप' पर रुपया लिया और दिया जाता था।[4]

---

1 वि स 1793 (1737 ई) चैत्र सुदि 1 की धाभाई नगा द्वारा जयपुर के दीवान विद्याधर को लिखी 600 रुपये की हुंडी वि स 1802 (1745 ई) मगसर सुदि की पचोली देवकरण द्वारा शाहपुरा राजा उम्मेदसिंह को भेजी गई हुंडी—शाहपुरा राज्य की ख्यात, खण्ड 2, पृ 122-23 एनाल्स, भा 1 पृ 520

2 सलेक्शन फ्राम बनेड़ा आर्काइव्ज भा 2 पत्र 30 नाथूलाल व्यास संग्रह, रजि न 2, पृ 238-241

3 सलेक्शन फ्राम बनेड़ा आर्काइव्ज भा 2 पत्र 27, एनाल्स, भा 1 पृ 524

4 ब रि—खतावणी बही वि स 1917 (1860 ई) शाहपुरा की ख्यात खण्ड 2, पृ 123 वो वि पृ 1838-1839 कोठारी प 33। राज्याधिकारियों व कर्मचारियों की यात्रा के समय या मासिक-

स्थानीय सेठ साहूकार राज्य की दुकानो तथा मन्दिर के धर्माधिकारियो के पास रुपया जमा कराने तथा आवश्यकतानुसार निकालने के लिए आधुनिक बैंक जैसी व्यवस्था प्रचलित रही थी। जमाकर्त्ता एसी जमा की टीप लिख कर देता था। ऐसी टीपो म रकम और ब्याज अथवा उस रकम का प्रयोजन लिखा रहता था।[1]

बैंकिंग प्रणाली के रूप म उधार लेन-देन का व्यवसाय राज्य सेठ साहूकार तथा आर्थिक सम्पन्न लोग करते थे।[2] ऐसा लेन देन राज्य, व्यक्ति अथवा जायदाद की जमानत पर किया जाता था।[3] यदि बंधक रखी गई जायदाद पर कोई आय होती तो मूल रकम का ब्याज नहीं लिया जाता था।[4] कि तु इस जायदाद म कृषि भूमि सम्मिलित नही मानी जाती थी।

ब्याज की दर

राज्य मे ब्याज की दर का कोई निश्चित नियम नही था। रुपया आनो अर्थात् 1 रुपये पर 1 आना स एक रुपये पर 8 आना की दर स दोवन्द-

---

वत्ति हेतु राज्य द्वारा कच्ची या पक्की चिटठी (टीप) दी जाती थी जिसके आधार पर बालेटीया (किराणा व्यापारी) सामान प्रदान करता था।—नाथूलाल व्यास सग्रह, रजि न 1, पृ 7

1 वि स 1928 (1871 ई) म कोठारी केशरसिह न पारख गोवद्ध नदास की पेडी पर 1500 रुपया प्रति सैंकडा 8 आना ब्याज की दर से जमा कराये थे। इस रकम का वार्षिक ब्याज 90 रुपया को सदाव्रत के प्रयोजनाथ परमेश्वर (एकलिंग जी) के मन्दिर म देते रहने की टीप लिखी गई थी।—कोठारी पृ 33

2 19 वी शताब्दी के उत्तराद्ध म राणा स्वरूपसिह द्वारा कोठारी केशरसिह की अध्यक्षता म लक्ष्मीदास-गणेशदास नामक रावली दुकान खोली गई थी जो मेवाड राज्य के प्रथम आधुनिक बकों का प्रतिरूप थी। इसके द्वारा सरकारी ब्याज पर लेन दन किया जाता था।—बी वि प 1927 कोठारी, प 13

3 नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 1 प 8 वि स 1807 (1750 ई) वशाख सुदि 3 का इकरारनामा वि स 1911 (1854 ई), आषाढ सुदि 9 का खत, बी वि प 1838-1839

4 नाथूलाल व्यास—उपरोक्त रजि न 13, प 26 28। इसके लिए 'गेणे गलत्याणा' श द का प्रयोग किया जाता था।—कोठारी प 33

मिहचन्द का चक्रवर्ती ब्याज भी प्रचलित रहा था।[1] किन्तु साहूकारी ब्याज प्रति 100 रुपया 4 आना से 12 आना माहवार कहा जाता था।[2] अधिकतर ब्याज की वसूली फसल कटने के समय तथा उद्योगकर्मियों से उत्पादन बिक्री के काल में की जाती थी। ब्याज लेने देने का ढंग बढ़ोतरी (गुणांक-चक्रवर्ती) काट पर आधारित रहता था। इस काट में मूल रकम ब्याज जोड़ कर लिखी जाती थी तथा ब्याज पर ब्याज चढ़ाया जाता था। इस ब्याज प्रणाली द्वारा कर्जदार हमेशा कर्जदार बना रहता था और वह साहूकार के चंगुल से पीढ़ी दर पीढ़ी स्वतन्त्र नहीं हो पाता था। 20 वीं शताब्दी तक कर्जदारी के वातावरण में जागीरदारों द्वारा अपनी जागीरें तक बन्धक रखी जाने लगी थी। अतः इस कलंक को समाप्त करने के लिए जागीर बंधक रखने पर रोक लगा कर आदेश प्रसारित किये गये थे।[3]

मुद्रा और माप तोल

वाणिज्य व्यापार को बनाये रखने तथा राज्य के लेन-देन का माध्यम सिक्के थे किन्तु आधुनिक काल के जैसे सम्पूर्ण आर्थिक जीवन का व्यवहार मात्र सिक्कों पर आधारित नहीं रहा था। राज्य कर्मचारियों, सेवकों तथा दासों को अधिकतर अन्न आदि के साथ साथ नाम मात्र के सिक्के दिये जाते थे। भूमि व्यवस्था अध्याय में स्पष्ट हो चुका है कि जीविका का मुख्य साधन भू वृत्ति रहा था। साधारण जनता में लेन-देन का आधार वस्तु-विनिमय रहा था। इस प्रकार सिक्का आलोच्य काल में व्यापार एवं बाह्य लेन देन का मुख्य माध्यम रहा था। जब कि आन्तरिक व्यापार में प्रचलित मुद्रा के साथ साथ मुद्रा के मूल्यांकन से मूल्यांकित कौड़ियों का प्रचलन 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक प्रचलित रहा था।[4]

---

1 वी वि प 2113

2 नाथूलाल व्यास संग्रह रजि न 12 प 59, रजि न 13, प 31 ब रि—श्री एकलिंगजी रा भण्डार री खत खात्री वि स 1919 (1862 ई) बस्ता 2 मेहता सग्रामसिंह कलेक्शन फाइल 169 बस्ता 12 वी वि प 1938-1939 कोठारी प उपरोक्त।

3 सरक्यूलर रजिस्टर स्टेट महकमा खास भा 1 पृ 227-247 एहकामाती रजि न 1 एव 2 सरक्यूलर न 252 23656 पृ 267-268, 298

4 कोठारी, प 12। मवाड म 20 भागो के परिमाण अधिक प्रचलित रहे

18 वीं शताब्दी के पूर्व म राज्य की टकसाल चित्तोड में विद्यमान थी।[1] चित्तोड की टकसाल से प्रथमत अकबर के नाम स सिक्क ढाले गये थे। यह सिक्के मुगल बादशाह जहांगीर से औरंगजेब तक प्रत्येक बादशाही के नामो मे परिवर्तित कर दिये जाते रहे थे।[2] इन सिक्को को 'सिक्का-एलची कहा जाता था। औरंगजेब के मरने के पश्चात् मुगल साम्राज्य निर्बल होने लगा था अत राजपूताने के अन्य राज्यों की तरह मेवाड में भी मेवाड राज्य के सिक्के ढालने हेतु चित्तोड की टकसाल के साथ साथ वि स 1770 (1714 ई) मे फरुखसियर की नाम मात्र की आज्ञा द्वारा उदयपुर मे एक अन्य टकसाल खोली गई। इस टकसाल म सुनार तथा कसारा जाति के व्यक्तियो को नियुक्त किया गया। यह लोग उमरडा नामक गाव मे चादी और तांबे के सिक्के ढाल कर राज्य को प्रदान करते थे।[3] भीलवाडा की टकसाल 17 वीं शताब्दी पूर्व मे स्थानीय वाणिज्य व्यापार के लेन-देन हेतु भीलवाडी सिक्के ढालती थी। 18 वीं शताब्दी म भीलवाडा के सिक्के भी प्रचलित रहे थे। उपरोक्त तीनो टकसालो से ढलने वाले सिक्को पर शाह आलम (दूसरे) का नाम खुदा रहता था। इस कारण इन्ह आलमशाही' सिक्के भी कहा जाता था।[4] राणा सग्रामसिंह द्वितीय के काल म इन आलमशाही सिक्कों के स्थान पर कम चादी के मेवाडी सिक्के ढालने का

थे। इसके अनुसार अनुमान किया जा सकता है कि 20 भाग = 1 कौडी, तथा 20 कौडी का आधा दाम दो आधा दाम = एक रुपया रहा होगा। मुद्रा के लिए नाणा शब्द का प्रयोग आज भी उदयपुर सभाग म प्रचलित है जिसका अर्थ द्रव्य एव वस्तु होता है। अत इस आधार पर स्पष्ट होने लगता है कि कौडी प्रचलन का आधार वस्तु विनिमय पर आधारित रहा था। सर जान माल्कम ने 4 कौडी = 1 गण्डा 3 गण्डा = एक दमडी, दो दमडी = एक छदाम, दो छदाम = 1 रुपया (अधेला), 4 छदाम का एक रुपया अथवा 96 कौडी लिखा है)—मेमोयस भा 2 पृ 70

1 वब कृत राजपूताने के सिक्के (अनु एव सम्पादक—मागीलाल व्यास), पृ 11, मेवाड का राज्य-प्रब ध, पृ 26
2 मेवाड का राज्य प्रब ध पृ उपरोक्त।
3 वब कृत राजपूताना के सिक्के, पृ 18
4 द रि—वि स 1811 (1754 ई) का रहन नामा—नकल बही, बस्ता 5, वब कृत राजपूताना के सिक्के, पृ 27

कार्य प्रारम्भ किया गया था। इन परिवर्तित सिक्कों को टकसाल और मात्रा के अनुसार चित्तौड़ी और उदयपुरी कहा जाता था। चित्तौड़ी सिक्के 125=100, आलमशाही तथा उदयपुरी सिक्कों का मूल्य चित्तौड़ी से कम रहा था।[1] राणा अरिसिंह के काल मे आन्तरिक अशान्ति, अकाल और मराठा अतिक्रमण काल के फलस्वरूप सिक्कों में कमी होने लगी थी। राज्य में चान्दी का उत्पादन गिरने आयात रुक जाने के कारण राज्य-कोषागार मे सग्रहित चांदी द्वारा नवीन सिक्के ढाले गये। यह अरसीशाही सिक्के—एक चित्तौड़ी सिक्के=1रुपया 4 आना 6 पैसा मूल्य के रहे थे।[2] राणा भीमसिंह के समय मे मराठा लोग अपनी बकाया और अन्य राशि सालीमशाही रुपए के मूल्याधार पर करने लगे थे। यह रुपया चित्तौड़ी 1 रुपया 8 आना के मूल्य का था। अत राज्य की आर्थिक कठिनाई को हल करने को सालीमशाही रुपये के बराबर मूल्य वाला 'चांदोड़ा सिक्का ढाला गया था। इस प्रकार 1818 ई तक राज्य मे विभिन्न प्रकार के सिक्के प्रचलित रहे थे जिनकी जन साधारण उपयोग हेतु सुलभ मात्रा नहीं थी। इन प्रचलित सिक्कों की स्थिति एव वजन निम्न प्रकार से रहा था।[3]

रुपया या सिक्के का नाम	वजन			चांदी		तांबा	अन्य धातु
	माशा	रत्ति	या ग्रेन	माशा	रत्ति	माशा	रत्ति
1 एलची	11	4	×	10	$\frac{3}{4}$	1	$3\frac{1}{4}$
2 अरसीशाही	10	$6\frac{1}{2}$	×	8	$4\frac{1}{2}$	2	2
3 चित्तौड़ी	11	4	×	8	$7\frac{1}{2}$	2	$4\frac{1}{2}$
4 उदयपुरी	11	$3\frac{1}{2}$	×	8	$4\frac{1}{2}$	1	$7\frac{1}{2}$
5 सालीमशाही	11	4	×	9	2	2	$1\frac{1}{2}$
6 चांदोड़ी	11	4	×	7	$\frac{1}{2}$	4	$3\frac{1}{2}$
7 भीलाड़ी[4]	×	×	170	×	×	×	×

---

1 रोशनलाल साभर—कोइंस आफ मेवाड पृ 75 76

2 उपरोक्त।

3 ए जी डेविडसन डिप्टी कमिश्नर द्वारा प्रेषित सूची 1864 ई—अजमेर कमिश्नरी रिकॉर्ड एव वेब कृत राजपूताना के सिक्के से सग्रहित।

4 1870 ई मे इसका प्रचलन बन्द कर दिया गया था। यह 84 00 ब्रिटिश कल्दार बराबर 100 रुपया तथा एक उदयपुरी बराबर 1 रुपया 2 आना 6 पाई था।—वेब कृत राजपूताना के सिक्के, पृ 17

उपरोक्त तांबे के सिक्कों के अतिरिक्त छोटे सिक्कों म त्रिशूलिया, ढींगला[1] तथा भीलाड़ी तांबे के सिक्के भी प्रचलित रह थ। इसी प्रकार 1805 1870 ई तक सलूम्बर जागीर द्वारा पद्मशाही' ढींगला तथा 1799 ई मे भीण्डर जागीर में महाराजा जोरावरसिंह द्वारा भीण्डरिया' चलाया गया था। इन सिक्का की मान्यता मात्र जागीर लेन-देन तक सिमित रही थी।[2] रोशनलाल सांभर ने मेवाड़ की मुद्राओ म महताशाही' मुद्रा के प्रचलन का उल्लेख किया है[3] किन्तु यह मुद्रा अधिक प्राप्त नही है। अत अनुमान किया जा सकता है कि मराठा अतिक्रमण काल म किसी महता प्रधान द्वारा चलाई गई होगी। राणा स्वरूपसिंह के शासन काल म प्रचलित और प्राप्त मुद्रा का पुनर्मूल्यांकन कर वनानिक सिक्का ढालन का प्रयत्न प्रारम्भ किया गया। ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति प्राप्त कर स्वरूपशाही स्वर्ण व रजत मुद्रा राज्य म ढाली जाने लगी थी। राणा भीमसिंह कालीन चांदोड़ी सोने तथा चादी के सिक्कों को नवीन रूप मे ढाला गया जिनका वजन 116 तथा 168 ग्रेन रखा गया था।[4] इन सिक्कों म 6 भाग चादी तथा 2 भाग तांबा मिश्रित रहता था। स्वरूपशाही चांदी का सिक्का 170 ग्रेन क लगभग वजन का था जिसम लगभग 7 भाग चांदी तथा 2 भाग तांबा मिला हुआ रहता था। इन चान्दी के सिक्को के साथ 169 ग्रेन शुद्ध सोने की मुद्राए भो 1851-52 ई म ढाली गई थीं।[5] यह स्वर्ण मुद्राए मात्र शुभ काय म पूजन मे रखने राज्य कोष की जमा पूजी के रूप मे प्रयुक्त होती थीं। इस जमा क आधार पर उतने ही मूल्य के चांदी के सिक्क ढाले जाते थे। इस समय मे ही ब्रिटिश भारत सरकार के सिक्को के प्रतिरूप छोटे सिक्को म आना दा आना चार आना व आठ आना के सिक्के ढाले जाने लगे थे। इस प्रकार राणा स्वरूपसिंह के उत्तरार्द्ध म शासन काल से राज्य का हिसाब किताब रखने मे अत्यधिक सुविधा होने

---

1 एक चित्तोड़ी रुपया बराबर 192 ढींगला प्रचलित थे।—सो ला मी रा, पृ 335

2 वैब कृत राजपूताना के सिक्के, पृ 22-23

3 उपरोक्त, पृ 183

4 सोने के सिक्क का तोल 7 माशा था जिसमे $3\frac{1}{2}$ माशा 1 रत्ति सोना $2\frac{5}{8}$ माशा 1 रत्ति चान्दी तथा $\frac{1}{2}$ माशा तांबा मिश्रित रहता था।—वैब कृत राजपूताना के सिक्के पृ 12, 16

5 उपरोक्त पृ 13, 17

लगी थी। ब्रिटिश भारत सरकार के सिक्के भी राज्य मे वैधानिक मान्यता-प्राप्त थे। इन सिक्को को कल्दार कहा जाता था। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मेवाड़ में सिक्कों का भुगतान कल्दार सिक्को के मूल्य द्वारा किया जाता था।[1] दोनों सिक्कों के मूल्यान्तर को बट्टा कहा जाता था। इस बट्टे का आधार सिक्को से चादी की मात्रा का परिमापन होना था। दोनो सिक्को का अन्तर निम्न रहा था।[2] 19 वी शताब्दी के पश्चात्

मेवाड़ी सिक्का एक पर		कल्दार मूल्य			
		रु	आ	पाई	ढींगला
1 चित्तोडी रजत मुद्रा		X	12	3	2
2 उदयपुरी ,, ,,		X	12	3	X
3 चादोड़ी ,, ,,		X	9	9	X
4 स्वरूपशाही ,,		X	13	6	X
5 भीलाडी ,		1	2	6	उदयपुरी
6 त्रिशूलिया		X	X	2	X
7 भीलाडी ढींगला		X	X	6	उदयपुरी
8 पदमशाही ढींगला		X	X	2	उदयपुरी
9 भीण्डरिया ,		X	X	4	उदयपुरी

1928 ई म राणा भूपालसिंह द्वारा नवीन सिक्के प्रचलित करने के उपरान्त राज्य के विभिन्न प्रचलित प्राचीन सिक्को को बन्द कर दिया गया था।[3]

राज्य मे विभिन्न प्रकार के सिक्को का प्रचलन स्पष्ट करता है कि राणाओ मे वैज्ञानिक सिक्का के प्रचलन मे कोई रुचि नही रही थी। इस अरुचि का सभावित कारण राज्य की आत्मनिभर आर्थिक व्यवस्था वस्तु विनिमय की परम्परा तथा जन-जीवन पर ग्राम्य वातावरण का प्रभाव कहा जा सकता है। राज्य द्वारा व्यक्ति को अधिकतर उपजाऊ या कृषि योग्य भूमि अनाज कपडा तथा अन्य वस्तुओं में उसकी पारिश्रमिकी और पारितोषिकी प्रदान की जाती रही थी अत बाह्य आर्थिक विनिमय के अतिरिक्त

1 उदयपुरी 2¾ रुपया बराबर 2 रुपया कल्दार के रूप म ब्रिटिश खिराज लिया जाता रहा था।—चारण रामनाथ रत्नू—इतिहास राजस्थान पृ 72

2 वेब कृत राजपूताना के सिक्के म सकलित।

3 मेवाड का राज्य प्रबन्ध पृ 27

मुद्रा की जन साधारण में इतनी आवश्यकता ही नही रहती थी। यद्यपि 19 वी शताब्दी के छ दशक पश्चात् सडक निर्माण रेल लाइन निर्माण तथा राजकीय भवन निर्माण का भुगतान तथा राजस्व का परिमापन मुद्रा मे होने लगा था किन्तु यह केवल नाम मात्र का रहा था अन्यथा अधिकतर चुकारा एव वसूली जिन्सो म ही प्रचलित रही थी।[1] विभिन्न प्रकार की मुद्राओ तथा शुद्ध सोने, चादी व तावे की मुद्राओं का दुष्परिणाम होता था कि सकट के समय अथवा धातु के भाव अधिक हो जाने पर लोग इन मुद्राओ को गला कर शुद्ध धातु को बने भावो पर बेच कर लाभ कमाने की ओर अग्रसर हो जाते थे। आलोच्यकाल मे टकसाल से कितने रुपये ढाले जाते रहे थे? इसका कोई निश्चित हिसाब नही था। तावे के सिक्को का कोई निश्चित रूप नही था इसलिए छोटे छोटे चौकोर आकार वाले तावे के ढीगले कोई भी गढ सकता था। इस प्रकार मुद्रा की अनिश्चित अवस्था ने राज्य की आर्थिक स्थिति को चलाय भर रखा था। इसका परिणाम था कि राज्य की आय शातिकाल मे अच्छी होते हुए भी राजकोष समद्ध कभी नही रहा था। इसके समानान्तर वस्तु विनिमय प्रणाली की आर्थिक व्यवस्था के कारण राज्य के भू उत्पादन द्वारा राज्य भण्डार समद्ध रहे थे।

माप तोल

सपूर्ण अध्ययन काल म राज्य के माप तोल का आधार परम्परा से चली आ रही परिमापन प्रणाली रहा था। इन परिमापनो मे गहराई नापने के लिए साधारणत व्यक्ति के अगुल, घुटने आदमी की लम्बाई हाथी की ऊँचाई आदि की अनुमानित प्रणाली प्रयोग मे लाई जाती थी।[2] दूरी नापने के लिय छोटी से छोटी इकाई पावण्डा' थी। पावण्डा तथा अगुल का अ तर ज्ञात नहीं होने के कारण हम यहा अगुल की इकाई से मापन प्रणाली उद्ध त करते हैं जो कि मेवाड मे 19 वी शताब्दी के उत्तराद्ध मे प्रचलित रही थी।[3]

---

1 इसका प्रमाणीकरण 19 वी शताब्दी की खच बहियो द्वारा होता है। —बख्शी खाना रिकाड ।

2 एक अगुल = तीन भिरवा होता था। इसी प्रकार 5 अगुल = 1 बालिश्त, 5 बालिस्त = एक घोडा 2 घोड = 1 आदमी 2 आदमी का एक हाथी आका जाता रहा था।

3 क्वायदा माफी रियासत मेवाड पृ 12। इसमें 82-83 हाथ की एक

28 अगुल = 1 हाथ
84 हाथ = 1 डोरी
50 डोरी = 1 कोस (2 मील)

बहुमूल्य, सूक्ष्म तथा औषधि आदि तोलने के लिये 5 मूग = 1 रत्ति, 8 रत्ति = 1 माशा व 12 माशा = 1 तोला से वस्तु-वजन किया जाता रहा था। 80 तोला = एक छटाक पक्का बगाली[1] अथवा 100 तोला = 1 छटांक कच्चा के अनुसार भारी वजन को तोलने के लिए निम्न परिमापन विद्यमान थे।

16 छटाक बगाली	= 1 पाव	= 80 तोला
20 छटाक कच्चा	= 1 पाव	= 100 तोला
2 पाव	= 1 अधसेर	
2 अधसेर	= 1 सेर[2]	
5 सेर	= 1 धडी (ताकडी)	
4 धडी	= 1 मन कच्चा	
12 मन	= 1 माणी	

हिसाब किताब करने हेतु रुपये पैसो के चार भाग का प्रचलन रहा था उदाहरणाथ पाव ($\frac{1}{4}$) आधा ($\frac{1}{2}$) पूण ($\frac{1}{3}$) तथा पूरा (।) जि ह साकेतिक अथ मे ।, ।। ।।। तथा 1 लिखा जाता था। पूण इकाई के पश्चात् अश इकाई लिखन के लिए नाप मे s चि ह तथा रुपया-पैसा मे 0) चि ह का

डोरी लिखी है। 20 वी शती के भू ब न्दोबस्त मे प्रचलित भू माप के अनुसार 1 डोरी का अलग अलग नाप प्रचलित माना जाता है। जागीर क्षेत्र में 52½ फुट खालसा मे 132 फुट तथा माफी मे 162½ फुट का नाप प्रचलित रहा था। इसके अतिरिक्त डोरी का नाप बीघा के अनुसार 20 बिस्वासी = 1 बिस्वा 20 बिस्वा = 1 डोरी मानी जाती थी। 1 डोरी एक बीघा तथा एक बीघा 17 बिस्वा का एक एकड नाप आज भी प्रचलित है। इसी प्रकार एक हल = 50 बीघा प्रचलित रहा था।

1 पक्के तोल का अथ ब्रिटिश भारत सरकार के मानक तथा कच्चे का अथ मेवाड राज्य के मानक तोल से लिया जाता था (मेवाड का राज्य प्रब ध पृ 101)। इसके पूव कच्चा सेर 54 रुपया चित्तौडी तथा पक्का 108 रुपया चित्तौडी से आका जाता था (वही पृ 132)।

2 कच्चा सेर 50 = पक्का सेर 40 का एक मन होता था।

प्रयोग होता था, जसे कि 1 सेर एक पाव, एक छटांक को 1 ऽ। व 1 रुपया 5 आना 2 पाई को 1) । ॥ लिखा जाता था।

सचार व्यवस्था

व्यापार-वाणिज्य के सदभ में आलोच्यकालीन सचार व्यवस्था का अव लोकन करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि वाणिज्य व्यापार के साथ ही सामाजिक सम्ब धो को बनाये रखने तथा अन्य स्थानो की घटना विवरण जानने की मानव-उत्सुकता की तुष्टि सचार साधनो द्वारा हो सकती है। 18 वीं सदी के मेवाड मे समाचारो का आदान-प्रदान करने के लिए आधुनिक डाक-व्यवस्था जसी कोई प्रणाली विद्यमान नही थी। जन साधारण म जातियो के अपन अपने नाई सेवक चारण या भाट ही पारिवारिक सदेशो को इधर उधर ले जाते थे। ऐसी सदेश प्रक्रिया अधिकतर मौखिक होती थी। राज्य काय के लिए पदल जि ह कि दौडायत, ऊ ट सवार साहीवाल तथा घुड सवार रखे जाते थे जो राज्य-सूचनाओ और वार्ताओ को मौखिक रूप मे इधर उधर पहुचाते थे।[1] मौखिक डाक व्यवस्था के प्रचलन के पष्ठ मे तत्कालीन अराजक एव सशयात्मक राजनीतिक वातावरण की स्थिति को उत्तरदायी कहा जा सकता है। 19 वी शताब्दा क पूर्वार्द्ध तक उपरोक्त रूढिगत व्यवस्था म बग्गी द्वारा डाक (सूचना) लाने ले जाने की नवीन व्यवस्था प्रारम्भ की गई।[2] इस समय तक लिखित सूचना भेजने का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। कि तु राणा स्वरूपसिंह के शासन काल तक जन साधारण की सूचना विनिमय की कोई राज्य-व्यवस्था नही थी। यद्यपि उक्त राणा ने नियमित राजकीय डाक लाने ले जाने हेतु 'बामणी डाक नामक व्यवस्था प्रारम्भ कर दी थी।[3]

---

1 डा दशरथ ज्योति पुस्तकालय बीकानेर सग्रहित—वि स 1865 (1808 ई) भादवा वदि 9 वि स 1877 (1820 ई) आषाढ वदि 11 तथा वि स 1878 (1821 ई) आषाढ सुदि 9 के परवाने। व्यापारिक पत्र माल वाहनो अथवा यात्रियों के साथ भेजे जात थ। —शाहपुरा राज्य की ख्यात खण्ड 2 पृ 125-126 132 खण्ड 3 पृ 54, नाथूलाल व्यास सग्रह रजि न 2 पृ 109

2 सहीवाला, भा 1 पृ 55 भा 2, पृ 4-5 23

3 बही रोजनामचा देवस्थान वि स 1927-1930 (1870 1874 ई), न 9 व 17- देवस्थान रिकाड—रा रा अ बीकानेर, मवाड का राज्य प्रब ध, पृ 99

बामणी डाक व्यवस्था

यह व्यवस्था सम्भवत बंगाल मे प्रचलित हरकारा डाक व्यवस्था से प्रभावित होकर राज्य मे प्रचलित की गई थी। इसका नाम बामणी-डाक क्या रखा गया? इसका कोई स्पष्ट कारण उल्लेखित नही मिलता है। किन्तु मेवाड राज्य म ब्राह्मणो क प्रति आदर और दया भाव की लोक अभिधारणा से प्रेरित इस व्यवस्था म ब्राह्मणो को रखा जाना ही सभावित कारण कहा जा सकता है। ब्राह्मण लोगो को मारना या लूटना पाप काय मान जाने की स्थिति मे इनके द्वारा रुपया पैसा एव चिट्ठी पत्री भेजना अन्य जातियो की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रहता था इसलिए भी ब्राह्मण को इस व्यवस्था का उत्तरदायित्व प्रदान करना द्वितीय कारण माना जा सकता है। इस डाक व्यवस्था को राणा शम्भूसिंह क शासन काल में जन-साधारण के उपयोग हेतु खोल दिया गया था। इस व्यवस्था म ब्राह्मण व्यक्ति को वार्षिक डाक ठेका प्रदान किया जाता था। सन् 1873 ई म यह ठेका 1920 रुपया म प्रदान किया गया था।[1] यदि ठेकेदार को इसमे घाटा या हानि होती तो राज्य की ओर से उस इसकी पूर्ति हेतु आर्थिक अनुदान दिया जाता था। 20 वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इस व्यवस्था का वार्षिक व्यय 12000 रुपया रहा था।[2] डाक का ठेका लेने वाल व्यक्ति को डाक व्यवस्था बनाये रखने के लिए स्वय के हरकार रखन पडते थे। 19 वी शताब्दी क उत्तरार्द्ध मे इस डाक व्यवस्था के अन्तगत 60 हरकार काय करत थे, जिनका मासिक वेतन 4 रुपया था। जन साधारण से प्रति पत्र 2 पैसा लिया जाता था जिसका परिक्षेत्र मेवाड राज्य था। किन्तु बाहर भेजी जाने वाली डाक पर अलग से प्रति कोस की दूरी पर पैसा लिया जाता था।

20 वीं शताब्दी के एक दशक तक बामणी डाक नियमित रूप से प्रत्येक परगन के मुख्यालय तक जाती थी। इस डाक व्यवस्था क लिय कोई डाक-घर नहीं थे अपितु ठेकेदार का घर एव हरकारे लोग चलते-फिरत डाक घर थे।[3]

आंग्ल सरकार ने 1865 ई मे ही राज्य की रेजीडेन्सी पर डाक-घर स्थापित कर लिया था। इसके साथ ही नसीराबाद खेरवाडा, कोटडा छावनी पर छावनी के डाक-घर खुल हुए थे। किन्तु इनमे ब्रिटिश भारत सर-

---

1 उपरोक्त—बही वि स 1930 न 17

2 मेवाड का राज्य प्रब ध उपरोक्त पृ।

3 मेवाड रजीडेन्सी, पृ 59, मेवाड का राज्य-प्रब ध पृ 99

कार, एजेन्टों तथा राज्य कमचारियों के समाचार आते जाते थे। रेल्वे लाइन खुल जाने के पश्चात् प्रत्येक रेल-स्टेशन पर आंग्ल प्रशासन ने एक एक डाक-घर तथा तार घर जन-साधारण के उपयोग हेतु खोल दिय थे। 19 वी शती के अन्त तक जन-साधारण की सूचना नियमित तथा व्यवस्थित रूप स आने-जाने लग गई थी। इस प्रकार 20 वी सदी के प्रथम दशक तक आंग्ल पद्धति पर काय करने वाले डाकघर तथा तारघर की सख्या क्रमश 36 तथा 20 रही थी। यह सेवाए राज्य तथा जन साधारण क लिए पूर्णत खुली हुई थीं।[1]

1 उपरोक्त, उ ई, भा 2, पृ 16

। उपसंहार

सामाजिक आर्थिक परिवर्तन

पष्ठ अध्ययन मेवाड़ के एक विशिष्ट समय के इतिहास का अवलोकन है। वस्तुत यह काल समाज और सास्कृतिक व्यवस्थाओ मे परिवतन की दृष्टि से सक्रमण काल कहा जा सकता है। मेवाड के चारो ओर छाई राजनीतिक शक्तियो मे से मुगल शक्ति का पतन हो गया था। मराठा अतिक्रमणो ने राजनीतिक अराजकता को उत्पन्न कर दिया था। इसी के फलस्वरूप 19 वी शताब्दी मे ब्रिटिश प्रशासन का प्रभाव शनै शनै बढने लगा था। यह युग वह युग भी था जिसम विज्ञान और आधुनिक उपकरणो का प्रभाव भी फैलने लगा था और समाज मे विचारो के परिवतन की प्रक्रियाए उपस्थित होने लगी थी। आज के सदभ में यदि देखा जाय तो बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका है। सत्ता का आलोच्यकालीन स्वरूप भी बदल गया है। इस दृष्टिकोण से अध्ययनगत इतिहास एक विशिष्ट समाज का सास्कृतिक परिपक्ष लिये सामाजिक-आर्थिक इतिहास कहा जा सकता है। सम्पूर्ण विवेचन एक विशेष भौगोलिक-राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित है और इसीलिये यह सम्पूर्ण राजस्थान की अवस्थाओ का परिचायक नही है, फिर भी समग्र जीवन दशन के लिए कतिपय धाराए अवश्य ऐसी है जो समस्त राजस्थान की परिस्थितियो के सदभ मे देखी जा सकती हैं जिनम परम्परा, प्रथा और रूढिया उल्लेखनीय हैं। चू कि मेवाड इन विशेषताओ का मुख्य सग्रहालय रहा था[1] इसी कारण जब जब भी ब्रिटिश भारत सरकार के तत्वो न मेवाड की सामाजिक आर्थिक प्रवत्तियो मे तीव्र हस्तक्षेप किया तब तब मेवाड के शासक से प्रजा तक ने ऐसी स्थितियों को मनत अगीकार नहीं किया था। इसलिए भी सम्पूर्ण अध्ययनकाल में समस्त जीवन रूढिगत समाज के रूप मे दिखलाई देता है। कि तु इसका मतलब यह भी नही है कि समाज मे कुछ भी परिवतन नही हुए। वातावरण जन्य परिस्थितियो, मराठा और ब्रिटिश शक्तिया और

---

1 मुस्लिम भारत की ग्रामीण व्यवस्था (मोरलण्ड, हि दी अनवाद), पृ 8 ए ब्रीफ हिस्ट्री एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन आफ मेवाड (टी विजयराघवा चार्य) प्रेफस नोट पृ 1

काल की आवश्यकताओं से जन जीवन के शीर्षस्थ भाग पर प्रहार किये थे फलत इसका प्रभाव सम्पूर्ण नहीं तो आंशिक रूप मे समाज पर पड़ा। मेवाड़ की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के प्रधान तत्त्व मे राज्य शासक की शक्तियों का विकेन्द्रित होना ऐसे ही प्रहारों का परिणाम था।

आलोच्यकाल के पूर्व सामाजिक-राजनीतिक दृष्टि से मेवाड़ का सर्वप्रभु-स्वामी राज्य का शासक 'राणा' था। किन्तु अध्ययनकालीन परिस्थितियों में मराठा और ब्रिटिश शक्ति द्वारा किय गये राजनीतिक-सामाजिकार्थिक अतिक्रमणों और हस्तक्षेपों[1] ने राणा को 'राज्य-स्वामी' के रूप मे सम्प्रभुताश्रित-शासक बना दिया था। फिर भी समाज की रूढ़ियां परम्पराओं, नैतिक आदर्शों, लोकाचरणों और धार्मिक विश्वासों ने मराठा एवं राणा, बाद मे अंग्रेज तथा राणा के मध्य विकेन्द्रित प्रभुसत्ता के संतुलन को असंतुलित नहीं होने दिया था। राणा के पद प्रतिष्ठा मान-सम्मान का निर्वाह लोक-भावना मे प्रतिष्ठित रहा था। किन्तु इस शक्ति विकेन्द्रीकरण का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षत सामाजिक-राजनीतिक कारकों के साथ-साथ सामाजिक आर्थिक परिवर्तन म परिलक्षित होता है।

सामाजिक आर्थिक राजनीतिक अधिकृतियां सामन्तवादी ढांचे म निबद्ध रही थीं। वह अधिकृतियां समाज के सभी तत्त्वों पर छाई हुई थीं।[2] एक ओर यह राणा और उसके कुल के लोगों के मध्य राजनीतिक तथा सामाजिकार्थिक सम्बन्धों को बनाये रखती थीं तो दूसरी ओर राज्य-व्यवस्था के प्रबन्ध के साथ साथ परिवार के मुखियाओं जातियों जाति पंचायतों ग्राम-पंचायतों जागीर व्यवस्थाओं, जजमानी प्रथाओं, आवास निवास, व्यापार-वाणिज्य नियन्त्रण तथा शिक्षा आदि की सामाजिकार्थिक व्यवस्थाओं का अप्रत्यक्षत संचालन भी करती थीं।[3] मराठों के अतिक्रमण ने सामन्तशाही के सामाजिक राजनीतिक जीवन को भी विशृंखलित किया फलत इसम स्वच्छन्दात्मक प्रवृत्तियां उत्पन्न होती चली गई थीं। किन्तु 19 वीं शताब्दी में ब्रिटिश प्रशासन की कार्यवाहियों ने इस स्थिति पर नियन्त्रण कर इसको

---

1 अध्याय 1—भौगोलिक तथ्य (संदर्भ—क्षेत्र एवं क्षेत्रफल), अध्याय 2—सामन्तशाही (संदर्भ—आर्थिक सहायता जागीर क्षति, सैनिक कार्य), अध्याय 3—भूमि व्यवस्था (संदर्भ—मुकाता प्रथा), अध्याय 5—परिवार विवाह एवं प्रथाएं (संदर्भ—खोल प्रथा)।

2 टाड—एनाल्स, भा 1, पृ 153

3 द्रष्टव्य—अध्याय 2 3, 5, 6 7 तथा 8

अपने ढंग से व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया था।[1] ऐसे ही प्रयत्नो का परिणाम था कि 'राज्य सचालक पारस्परिक साझेदारी' की साम न्ती व्यवस्था नौकरशाही के रूप म परिवर्तित होती चली गई थी।[2] स्वाभाविक रूप से समाज पर इसका प्रभाव पड़ा। 18 वीं सदी तक साम न्त सगठन मे राजनीतिक-आर्थिक दृष्टि से राजपूतो की प्रभु जाति के रूप मे प्रमुख भूमिका रहती थी किन्तु 19 वी सदी मे वैश्य-महाजन जाति का प्रभुत्व पनपता चला गया था।[3] सदी के अन्त तक साम त व्यवस्था के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक इकाइयो पर राजपूत साम न्तो की अपेक्षा इस नवीन महाजन वग का प्राधान्य स्थापित हो गया था।

साम तशाही मे राजपूत जाति द्वारा किये जाने वाले शासन-सन्य-सेवा के काय स्वामि-भक्ति और लोकादश की भावना से गु थे हुए होते थे। इसके बदले मे राजपूता को आर्थिक पूर्ति और प्रशासनिक व्यवस्था हतु छोटी बडी जागीरे प्रदान की जाती थी। ऐसी प्रहित-जागीरो पर जागीरदारों के विभिन्न सामाजिकार्थिक तथा राजनीतिक अधिकार एव कत्तव्य होते थे।[4] मराठा अतिक्रमण काल मे सनिक सेवा का 'उत्सर्गिक काय जागीरदारो की गुटबन्दियो और निजी स्वार्थों के फलस्वरूप जागीर-अधिकारा में अनियमित वद्धि तथा पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता की ओर अग्रसर होने लगा था। इसलिये राणा द्वारा सनिक-कार्यों हतु मुस्लिम जाति को प्रोत्साहित करना पड़ा था।[5] इस प्रकार आलोच्यकाल क पूव राजपूत जाति के सन्य-एकाधिकार को 18 वी सदी मे मुस्लिम जाति द्वारा विभाजित कर दिया गया था।[6] मेवाड ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरक्षण सधि 1818 ई के पश्चात्

---

1 अध्याय 2—साम तशाही पृ 40 41 43 45-46, 60, अध्याय 3—भूमि व्यवस्था, पृ 73 74

2 उपरोक्त—साम तशाही पृ 45

3 गोपाल व्यास— मेवाड के साम न्तशाही समाज की सामाजिक आर्थिक स्थिति, द्रष्टव्य—शोध पत्रिका, वष 32/अक 1, पृ 52-60, अध्याय 4—जातियाँ एव व्यवसाय पृ 111-112

4 द्रष्टव्य—अध्याय 2—साम न्तशाही, अध्याय 3—भूमि व्यवस्था, अध्याय 8—उद्योग वाणिज्य एव व्यापार।

5 साम तशाही पृ 31 द्रष्टव्य—परिशिष्ट 5—पट्टा चित्र, जातियाँ एव व्यवसाय, पृ 134

6 सन्य सेवा म राजपूतों के अतिरिक्त चारण जाति (जातियाँ एव व्यव-

आंग्ल प्रशासन ने जागीरदारों द्वारा अधिग्रहित अनियमित अधिकारों को कम अथवा समाप्त करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया।[1] यद्यपि इन प्रयत्नों का क्रियात्मक प्रवाह अत्यन्त शिथिलता लिये हुए था फिर भी अंग्रेजों ने ब्रिटिश पद्धति पर आधारित तीन सैनिक छावनियां राज्य में स्थापित कीं[2] तथा इनमें आदिम जन-जाति के लोगों (भील मेर और मीणा) को भर्ती करना शुरू किया।[3] राज्य की केन्द्रीय सेना को भी पाश्चात्य ढंग से गठित करने तथा उसमें विभिन्न पल्टनों के सेनानायकों के रूप में राजपूत नायकत्व-अधिकारों को नष्ट किये जाने से, सामन्ती सेना का महत्त्व बिलकुल ही समाप्त हो गया था। इन परिस्थितियों ने राजपूत जाति के लोगों को मात्र कृषि-कार्य करने पर बाध्य कर दिया परिणामतः 19 वीं सदी में सिरमों जागीरों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई।[4] भील, मेर मीणा आदिम जातियों की सेना में स्थान देने से इस जाति की उच्छृंखल प्रवृत्तियों पर सामाजिक आर्थिक नियंत्रण स्थापित करने में राज्य को सहायता प्राप्त हुई।[5]

जागीरों के जागीरदार कई राजकीय, आर्थिक कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों से प्रतिबद्ध थे किन्तु 18 वीं सदी की राजनीतिक परिस्थितियों ने ऐसी प्रतिबद्धताओं को निर्बल बना दिया था। स्वाभाविक रूप से इसका प्रभाव राज्य की अर्थ-व्यवस्था पर भी पड़ने लगा। राज्य और जागीर के मध्य निर्बल हुए आर्थिक सम्बन्धों को निश्चित स्थिति में पहुंचाने का प्रयत्न भी 1818 ई. के पश्चात् आंग्ल-प्रशासन द्वारा प्रारम्भ हुआ, इस हेतु ब्रिटिश भारत सरकार के एजेन्टों ने जागीरदारों से कई समझौते किये।[6] परिणामस्वरूप 19 वीं शताब्दी के अन्त तक सम्पूर्ण राज्य की जागीर आय का वास्तविक आकलन तथा शासक और जागीरदारों के मध्य सामाजिकार्थिक

साथ पृ. 118 के लोग भी रहे थे किन्तु राजपूत लोगों की तुलना में इनकी स्थिति नगण्य रही थी।

1 साम तशाही पृ. 40-41 43-46, उद्योग वाणिज्य व्यापार पृ. 269, *279*

2 उदयपुर के उत्तर पूर्व में नसीराबाद, दक्षिण में खेरवाड़ा तथा पश्चिम में कोटड़ा नामक स्थान।

3 जातियां एवं व्यवसाय पृ. 130 132

4 उपरोक्त, पृ. 106

5 उपरोक्त, पृ. 129-133

6 ट्रिटीज—एगेजमेन्ट खण्ड 3, पृ. 43-54 (सम्बन्धित धाराएं)।

वाद विवादो का निपटारा हो गया था।[1] इसके कारण राज्य की बिगडती प्रब न्यवस्था म सुधार होने लगा। मराठो द्वारा प्रतिक्रमण-ऋण के बदले रखी गई बधक भूमि क्षेत्रो को 'मुकाते' प्रथवा 'इजारे' पर प्रदान करने की न्यवस्था[2] ने किसानो तथा अन्य कर-प्रदाताओ को कृषि-व्यवसाय के प्रति उदासीन बनाना प्रारम्भ कर दिया था। इस राजस्व प्रणाली के उन्मूलन के प्रति प्राग्ल सरकार द्वारा कोई अधिक रुचि प्रदर्शित नही करने के फलत साहूकारो तथा सटोरियो का शक्तिशाली मध्यस्थ वग पनपा जो कि प्रजा, जागीरदारो तथा राणा की आर्थिक आय का दोहन करने लगा था।[3]

मुकातादारी व्यवस्था ने समाज मे जहा नवीन आर्थिक वग का सूत्रपात किया वहा राजस्व परम्परा को विकृत किया। सामाजिक आर्थिक उपहार की श्रेणी म लाग बाग तथा बैठ-बेगार नामक अनियमित कराधन आलोच्य-काल के पूव शासक जागीरदारो तथा प्रजा के मध्य पारस्परिक आदर, हार्दिक प्रेम तथा देशभक्ति के सम्बन्धो को प्रकट करते थे।[4] मराठाकाल म यही सम्बन्ध मुकातादारी के प्रभाव स अनियन्त्रित आर्थिक व्यवहारो के रूप मे जनता का बोझ बन कर बढने लगे थे। 19 वी शताब्दी सरक्षण काल के मध्य दशक के पश्चात् ब्रिटिश भारत सरकार द्वारा किये गये भूमि सुधारो के प्रयत्न स्वरूप राज्य मे भूमि-बन्दोबस्त योजना बनाई गई। 1893 ई म मेवाड भूमि बन्दोबस्त के परिणामत नकद राजस्व की व्यवस्था[5] ने प्रजा का ध्यान लाग-बाग के औचित्य और अनौचित्य की ओर आकर्षित करना शुरू कर दिया। इस प्रकार बन्दोबस्त की इस आग्ल प्रणाली ने राजस्व-वसूली की मनमानियो को नियन्त्रित करने, वसूली मे जाति भेद समाप्त करने तथा मुकाता व इजारा न्यवस्था को निवल करने मे हाथ बटाया। इसीलिये 20 वीं सदी के चतुथ दशक तक लाग-बाग, मुकाता व इजारा प्रथाए राज्य मे अन्तिम सासें लेने लग गई थी।

ब्रिटिश प्रशासन द्वारा किये गये आर्थिक सुधारो की शृखला म सवप्रथम राणा स्वरूपसिंह के शासन काल म 4 अक्तूबर 1849 ई से राज्य के हिसाब-किताब कमचारियो के वेतन तथा राजस्व वसूली म वैज्ञानिक

---

1 सामन्तशाही पृ 40-46 भूमि न्यवस्था, पृ 60
2 भूमि व्यवस्था पृ 67-71
3 उपरोक्त।
4 उपरोक्त पृ 78-79
5 उपरोक्त, पृ 74-78

मुद्रा का प्रचलन,[1] 'रावली दुकान' के नाम से प्रथम राजकीय बैंक का खोला जाना[2] आदि मेवाड़ में आधुनिक विकास के प्रारम्भिक चरण थे। मुद्रा प्रचलन का प्रत्यक्ष प्रभाव 'बेठ बेगार' तथा 'पावणदारी प्रथा' पर पड़ा और यह वेतन अथवा दैनिकी के रूप में निश्चित होने लगी। इसके फलस्वरूप राज्य के अनेक बेठ बेगार करने वाले स्त्री पुरुष मजदूरों की श्रेणी में आ गये।[3] *व्यक्तिगत बैंकों के प्रभाव को क्षीण करने तथा मनमाने ब्याज दरों के* प्रचलन से जनता को राहत पहुंचाने का प्रयास रावली-दुकान द्वारा शुरू हुआ।

18 वीं शताब्दी में व्यापारिक काल के आयात निर्यात पर व्यापारियों से 'दाण', 'बिस्वा' और 'मापा' नामक वाणिज्य कर तथा राहदारी नामक मार्ग-शुल्क जागीरदारों द्वारा वसूल किये जाने लगे थे। केप्टन टाड द्वारा 1819 ई. में खालसा (केन्द्राधीन भू क्षेत्र) तथा जागीर के चुंगी का ठेका सेठ जोरावरमल बापना को प्रदान कर राज्य की चुंगी-व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयास किया गया।[4] इन्हीं प्रयत्नों के विकास के फलत राणा स्वरूपसिंह के काल में सायर-व्यवस्था तोड़कर (1854 55 ई.) दाणी-चोतरे स्थापित हुए। प्रत्येक चातर पर एक दाणी तथा एक बलाई (चपड़ासी) वेतन पर नियुक्त किया गया।[5] इसी काल में पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल जार्ज लारेंस ने राज्य में कानून तथा न्याय व्यवस्था में सुधार के प्रयत्न प्रारम्भ किये[6] किन्तु इसका मूर्त रूप राणा शम्भुसिंह के शासन काल (1861-1874 ई.) में दिखलाई देता है।[7]

---

1 वि. स. 1906 (1849 ई.) कार्तिक कृष्णा 2 का पत्र (कर्नल राबिंसन द्वारा राणा को)—ब. रि.—बही, वि. स. 1919, बस्ता 2
2 वी. वि. पृ. 1927 कोठारी पृ. 13
3 जागीर क्षेत्रों में इस व्यवस्था में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ था — भूमि व्यवस्था पृ. 124
4 ट्रिटीज—एंगेजमेन्ट खण्ड 3, पृ. 43-45, धारा 3, पृ. 49 54, धारा 11 ब. रि.—बही, वि. स. 1901-1919 (1844-1862 ई.) बस्ता 2 वी. वि., पृ. 1942 2204
5 ब. रि.—बही, वि. स. 1924 (1867 ई.) बस्ता 3 वी. वि., पृ. 2202
6 ट्रिटीज—एंगेजमेन्ट खण्ड 3, पृ. 50 धारा 14-17 तथा 19-21 (यह न्याय व्यवस्था मनोनीत पंच निर्णय तथा सामाजिक धार्मिक नियमों पर आधारित रही थी)।
7 उपरोक्त पृ. 36-37 उ. ई., भा. 2, पृ. 788

राणा शम्भुसिंह के अवयस्क होने के कारण रीजेंसी कौंसिल (पचसरी) के अध्यक्ष और पोलिटिकल एजेंट कर्नल ईडन को अप्रत्यक्ष सम्पूर्ण राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे। अत उसने प्रशासनिक क्षेत्र म प्रत्यक्ष हस्तक्षेप कर रूढिगत प्रशासन व्यवस्था का दफ्तरीकरण प्रारम्भ किया। कौंसिल के स्थान पर 'अहलियान श्री दरबार राज्य मेवाड नामक कचहरी (1863 ई) स्थापित कर राज्य म कानून व्यवस्था तथा प्रशासनिक सुधारो को कठोरता से लागू किया गया।[1] 1862 ई म प्रथम सावजनिक दवाखाना खोला गया जिसे 1864 ई म सावजनिक अस्पताल मे परिवर्तित कर बीमारो की भर्तिया तथा परीक्षण का काय प्रारम्भ हुआ। इसी समय म व्यवस्थित पुलिस सेवा और जेल-प्रब ध द्वारा समाज-कल्याण की आधुनिक पद्धतिया प्रचलित की गइ।[2] कनल ईडन की इन दूरदशनाधुनिक कार्यवाहियों को मेवाड के परम्परावादी रूढिगत समाज ने सामाजिकार्थित हितों पर हस्तक्षेप[3] की दृष्टि से देखा, फलस्वरूप जन-चेतना की सामूहिक अभिव्यक्ति 30 माच 1864 ई को जन हडताल के रूप म प्रदर्शित हुई।[4] इसीलिय समय और परिस्थिति के अनुसार जन-भावना के रौद्र रूप को देखते हुए पुलिस तथा न्याय सम्बन्धी सुधारों म से कतिपय सुधार स्थगित कर दिये गये।[5] फिर भी इन सुधारों ने जन जागृति का प्रादुर्भाव किया, साथ ही प्रजा की धार्मिक भावना को लौकिक धम के प्रति प्रेरित करन का माग दिखलाया।

---

1 फो पो क' दिसम्बर 1863, स 43-47 उ ई, भा 2 पृ 793

2 व रि—वही, वि स 1921 (1864 ई) बस्ता 3 उ ई उपरोक्त पृ 790-92

3 राणा स्वरूपसिंह ने अपनी मृत्यु के पूव स्वमोक्ष हेतु दान पुण्याथ कुछ राशि रखी थी। राणा की मृत्यु के पश्चात् राणा की विधवा रानी ईसे रूढियाई धर्म दान मे व्यय करना चाहती थीं कि तु ईडन का प्रयोग स्कूल तथा अस्पताल-निर्माण मे करना चाहता था (फो पो क, अगस्त 21 1865, स 206-96), इसी प्रकार बालक राणा शम्भुसिंह पर ईडन का अकुश (फो पो क, मई 1862, स 181-184), राणा की आण (शपथ) को समाप्त करने के आदेश आदि (फो पो क, जुलाई 1864 स 30 42)

4 फो पो कन्सलटेशन, जुलाई 1864, स 30-42 वी वि, पृ 2069

5 उपरोक्त।

इसके अतिरिक्त मुगल प्रशासन की भी परम्परा, लोक भावना तथा परिस्थितियो के प्रतिकूल शीघ्रता नहीं करने का सबक मिला।

राणा शम्भुसिंह की इच्छा से मेवाड के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट लेफ्टीनेन्ट कर्नल निक्सन ने 1870 ई मे ब्रिटिश भारत सरकार के कानूनों, हिन्दू धर्म शास्त्र की व्याख्याओ तथा स्थानीय परम्पराओं पर आधारित न्याय-नियमो का प्रचलन किया।[1] *सभवत इस प्रेरणा के पृष्ठ मे तत्कालीन भारतीय* गवनर जनरल तथा वायसराय लार्ड मेयो और राणा के मध्य अजमेर दरबार (अक्तूबर 22, 1870 ई) म हुए राजनीतिक वार्तालाप का हाथ रहा हो।[2] मेवाड म भी परम्परागत पचायत व्यवस्था के स्थान पर दीवानी तथा फौजदारी अदालतों की स्थापना हुई तथा दण्ड विधान के अन्तर्गत शारीरिक दण्ड-प्रक्रिया को कम से कम और आर्थिक दण्ड की प्रणाली को अधिक अपनाने पर बल दिया गया।[3] 1873 ई में स्टाम्प व रजिस्ट्री अधिनियम लागू कर स्टाम्प विभाग की स्थापना की गई। इसके साथ ही 'खास कचहरी' के स्थान पर[4] महकमाखास का गठन किया गया जो कि राणा सज्जनसिंह के शासन काल (1874-1884 ई) म इजलासखास *(1877 से 1880 ई) के नाम से और बाद में इसके पुनर्गठित रूप मे* महकमाखास (प्रशासनिक प्रब ध विभाग) और महद्राज सभा (याय एव कानूनी व्यवस्था विभाग) के नाम से जाना गया था। महद्राज सभा को भी प्रब ध और प्रशासनिक यवस्था की दृष्टि से दो भागो—इजलास खास तथा इजलास मामूली मे वर्गीकृत कर प्रशासन और न्याय यवस्था का आधुनिकीकरण किया गया।[5] राज्य व्यवस्थापन दृष्टि से राज्य को 11 जिला तथा

---

1 फो पो कन्सलटेशन मई 1870, स 119-122

2 लार्ड मेयो (1869 72 ई) ने भारत मे सावजनिक काय विभाग और रेलो की सुव्यवस्था सिंचाई साधनो म वद्धि का काय शिक्षा प्रसार आदि के साथ कानून तथा कारागार व्यवस्था मे सुधार किये। भारत मे जनगणना का जन्म इसी के काल म हुआ था। ऐसे सुधारक न राणा को भी परामश दिया होगा।

3 फो पो कन्सलटेशन मई 1870 स 119-122

4 1865 ई म राणा शम्भुसिंह द्वारा राज्याधिकार प्राप्त करने के पश्चात् अहलियान श्री दरबार राज्य मेवाड को भग कर इस कचहरी की स्थापना की गई थी।—उ ई, भा 2 पृ 793

5 फो पो कन्सलटेशन मई 1905, स 66-67

7 परगना में बाँट कर प्रत्येक क्षेत्र में हाकिमो (जिलाधीशो) की नियुक्तिया कर दी गइ । राज्य क प्रशासन नियम को कवायद इ तजाम मुल्क मेवाड न 1' के नाम से लागू किया गया । इन सभी सुधारात्मक परिवतना के परिणामस्वरूप राज्य की अनियमित तथा परम्परावादी लोक-प्रवत्तियो पर प्रशानिक निय त्रण प्रारम्भ हुआ । वैधानिक प्रशासन को चलाने के लिये बाह्य क्षत्र से योग्य प्रगतिशोल एव शिक्षित व्यक्तियो को राज्य मे नियुक्तिया प्रदान की गई फलत अ य जातियों मे मुख्य रूप से सिख और इसाई जाति इसी काल की देन कही जा सकती है ।[1] प्रशासनिक निय त्रणो के कारण सामुदायिक निणयों तथा केन्द्रीय पचायत व्यवस्था शनै शनै शक्तिविहीन होने लगी[2] और समाज मे जातिगत याय यवस्था का भय मिटने लगा । हम से तुम' की ओर अग्रसर होती लोक-भावना की पृष्ठभूमि का निर्माण इसी का एक परिणाम था ।[3] इतना होने पर भी यह सुधार रूढिवादी समाज म क्रातिकारी सामाजिक परिवतन के आधार कहे जा सकते हैं ।

यातायात एव सचार व्यवस्था तालाबा का प्रब ध, उनमे नहरीकरण, खान खनिज आदि की व्यवस्था 18 वी सदी के अतिक्रमण काल म अ यवस्थित हो गये थ अथवा प्राचीन पद्धतियो मे प्रचलित थे ।[4] इनके निर्माण, पुनर्निर्माण सुव्यवस्था और विकास हेतु प्राथमिक दृष्टि से 19 वीं शता दी के उत्तराद्ध में ध्यान दिया गया । राज्य म अकाल-महामारी के प्रकोपो के निदान हेतु आवश्यक था कि जन-जीवन की मानसिक जडता के दृष्टिकोण को दविक प्रसाद से हटा कर मानव-श्रम की ओर परिवर्तित किया जाय । फिर ब्रिटिश भारत में होने वाले सामाजिक आर्थिक अधिकारो का प्रभाव मवाड पर भी पडना स्वाभाविक था । अत राणा शम्भुसिह के काल मे हुए प्रशासनिक सुधारो म सावजनिक काय हेतु कमठाणा का विभाग (महकमा) खोला गया ।[5] इस महकमे के अ तगत यातायात विकास हेतु सडक निर्माण लोक काय हतु सराय तथा भवन निर्माण और मरम्मत के काय सम्मिलित किय गये । 1880 ई के पश्चात् इस विभाग म तालावा की खुदाई एव

---

1 जातिया एव व्यवसाय पृ 112 137
2 अध्याय 6—ग्रामीण एव नगरीय क्षेत्रा मे जन-जीवन पृ 218
3 परिवार, विवाह एव प्रथाए पृ 144
4 अध्याय 1—भौगोलिक तथ्य द्रष्ट य—सिचाई साधन जलवायु, खान एव खनिज, यातायात माग आदि ।
5 आधुनिक सावजनिक निर्माण विभाग का तात्कालिक स्वरूप ।

इसके अतिरिक्त आंग्ल प्रशासन की भी परम्परा, लोक भावना तथा परिस्थितियों के प्रतिकूल शीघ्रता नहीं करने का सबक मिला।

राणा शम्भुसिंह की इच्छा से मेवाड के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट लेफ्टीनेंट कर्नल निक्सन ने 1870 ई म ब्रिटिश भारत सरकार के कानूनो, हिन्दू धर्म शास्त्र की व्याख्या तथा स्थानीय परम्पराओं पर आधारित न्याय-नियमों का प्रचलन किया।[1] सभवत इस प्रेरणा के पृष्ठ म तत्कालीन भारतीय गवनर जनरल तथा वायसराय लार्ड मेयो और राणा के मध्य अजमेर दरबार (अक्तूबर 22, 1870 ई) मे हुए राजनीतिक वार्तालाप का हाथ रहा हो।[2] मेवाड म भी परम्परागत पचायत व्यवस्था के स्थान पर दीवानी तथा फौजदारी अदालतों की स्थापना हुई तथा दण्ड विधान के अन्तर्गत शारीरिक दण्ड-प्रक्रिया को कम से कम और आर्थिक दण्ड की प्रणाली को अधिक अपनाने पर बल दिया गया।[3] 1873 ई मे स्टाम्प व रजिस्ट्री अधिनियम लागू कर स्टाम्प विभाग की स्थापना की गई। इसके साथ ही 'खास कचहरी' के स्थान पर[4] महकमाखास का गठन किया गया जो कि राणा सज्जनसिंह के शासन काल (1874-1884 ई) में इजलासखास (1877 स 1880 ई) के नाम से और बाद मे इसके पुनर्गठित रूप म महकमाखास (प्रशासनिक प्रबध विभाग) और महद्राज सभा (न्याय एव कानूनी व्यवस्था विभाग) के नाम से जाना गया था। महद्राज सभा को भी प्रबध और प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से दो भागों—इजलास खास तथा इजलास मामूली में वर्गीकृत कर प्रशासन और न्याय व्यवस्था का आधुनिकीकरण किया गया।[5] राज्य-व्यवस्थापन दृष्टि से राज्य को 11 जिलो तथा

---

1 फो पो कन्सलटेशन मई 1870, स 119-122

2 लार्ड मेयो (1869-72 ई) ने भारत मे सार्वजनिक कार्य विभाग और रेलो की सुव्यवस्था सिंचाई-साधनो मे वृद्धि का कार्य शिक्षा प्रसार आदि के साथ कानून तथा कारागार व्यवस्था मे सुधार किये। भारत मे जनगणना का जन्म इसी के काल म हुआ था। ऐसे सुधारक ने राणा को भी परामर्श दिया होगा।

3 फो पो कन्सलटेशन मई 1870 स 119 122

4 1865 ई म राणा शम्भुसिंह द्वारा राज्याधिकार प्राप्त करने के पश्चात् अहलियान श्री दरबार राज्य मेवाड को भग कर इस कचहरी की स्थापना की गई थी।—उ ई, भा 2, पृ 793

5 फो पो कन्सलटेशन मई 1905, स 66-67

व्यवस्था, नहर निर्माण तथा प्रबन्ध के कार्य प्रारम्भ किये।[1] इसी वर्ष राज्य भूमि पर बी बी एण्ड सी आई रेल लाइन बिछाई गई। 20 वीं सदी के प्रारम्भिक दशक तक राज्य की दो रेल लाइनों ने उदयपुर के पूर्वी तथा मध्य भाग को रेल-यातायात का लाभ प्रदान करना शुरू कर दिया था।[2] खान एवं खनिज की खुदाई के प्रयत्न अत्यधिक उत्साही नहीं थे फिर भी इनके आर्थिक महत्त्व ने राज्य का ध्यान इस ओर शनैः शनैः आकर्षित किया था।[3] आंग्ल प्रशासन के विचारों से सहमत हो राज्य में विकास हेतु किये गये इन आधुनिक प्रयत्नों का लाभ सामाजिक-आर्थिक उन्नति, प्राकृतिक विपदाओं पर मानवी विजय रूढिवादी बन्द समाज का खुले समाज की ओर अग्रसर होने तथा लोक कल्याण और लोक राहत के राज्यादर्श में दिखलाई देने लगा था। यातायात और संचार साधनों ने जातिवादी ऊंच नीच की भावना को नमनीय बनाना शुरू किया तो जाति स्तरीकरण की व्यवस्था में आंशिक परिवर्तन उपस्थित किया अकाल तथा महामारी का निदान सम्भव हुआ तो उत्पादन पर मुनाफा अर्जित करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी बेरोजगारी की समस्या का समाधान होने लगा तो कई वंश-परम्परागत पतक व्यवसाय तथा कुटीर उद्योग धन्धे ठप्प भी हुए और सामाजिक जीवन में संयुक्त परिवारों का व्यक्तिवादी परिवारों के रूप में विघटन प्रारम्भ होने लगा था।[4] यद्यपि नवीन दृष्टिकोणों तथा आधुनिक प्रवाह की तीव्रता पर जनशंका के विचारों ने अंकुश बनाये रखा फिर भी आंग्ल प्रशासन का प्रयत्न मेवाड़ को पाश्च्यातीकरण तथा आधुनिकीकरण की ओर निरन्तर ठेलता रहा था।[5]

---

1 भौगोलिक तथ्य मेवाड़ एजेंसी रिपोर्ट, 1870 से 1882 ई।

2 भौगोलिक तथ्य, पृ 20 21

3 फो पो (इ ए) अगस्त 1918, स 16 44, अगस्त 1919 स 160-161, भौगोलिक तथ्य पृ 16-18

4 अध्याय 1—भौगोलिक तथ्य अध्याय 4—जातियाँ एवं व्यवसाय, पृ 103 125 अध्याय 5—परिवार विवाह एवं प्रथाएं पृ 143-144 अध्याय 6—ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में जीवन, पृ 209, अध्याय 8—उद्योग, वाणिज्य एवं व्यापार पृ 266 67, 271, 277-78

5 फो पो (सीक्रेट) क सलटेशन, मई 1917, स 104 मार्च 1920, सं 7 राजपूताना एजेंसी रिकार्डस 1921, स 69, लिस्ट 1 सोमरसेट—इण्डियन स्टेटस, पृ 19-20

राज्य की पुरातन शिक्षा प्रणाली में पाठशाला, मदरसों तथा मठों की भारतीय पद्धति 19 वीं शताब्दी तक चलती रही थी। 1863 ई का वर्ष मेवाड में पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित स्कूली शिक्षा के प्रादुर्भाव का वर्ष था। पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल ईडन के प्रयत्नों के फलस्वरूप शम्भु-रत्न पाठशाला की स्थापना हुई थी।[1] इसके पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में स्कूली-शिक्षा का विकास होता रहा था। शताब्दी के अन्त तक एक अपर हाई स्कूल एक लोअर हाई स्कूल आठ अपर तथा बत्तीस लोअर प्राइमरी स्कूल खुले हुए थे।[2] 1866 ई मे मेजर निक्सन ने स्त्री-शिक्षा हेतु एक कन्या पाठशाला प्रारम्भ कराई जिसमें स्त्रियोचित सामान्य ज्ञान की व्यवस्था था।[3] 1885 ई में इसे क्रमोन्नत कर मिडिल स्कूल बनाया गया किन्तु पर्दा प्रथा बाल विवाह की रूढिगत प्रथाओं स्त्री के प्रति सामाजिक दृष्टिकोणों तथा सामन्तिक नियन्त्रणों ने स्त्री-शिक्षा को अधिक विकासशील नहीं होने दिया।[4] राज्य मे स्त्री जाति के प्रति सामाजिक दृष्टिकोणों को कतिपय रूप से बदलने में यह लघु प्रयास बहुत बडे कार्य थे। शिक्षा की इन प्रसारात्मक स्थितियों ने मेवाड के जन-जीवन की चेतना को चाहे मन्थर गति से प्रभावित किया हो किन्तु आधुनिक शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर इनका महत्त्व कम नहीं था। इसी का परिणाम था कि 20 वीं सदी के दो दशक पश्चात् भारत मे राष्ट्रीय आन्दोलन की कार्यवाहियों और इच्छा का प्रचार-प्रसार मेवाड की जन जागति मे प्रवेश प्राप्त कर सका था। शिक्षा के माध्यम से बाह्य ज्ञान के प्रवेश का फल था कि राज्य में सज्जन कीर्त्ति सुधारक नाम का एक साप्ताहिक राज्य-पत्र प्रकाशित होने लगा। राजकीय मुद्रणालय हेतु सज्जन यन्त्रालय पुस्तकालय के रूप मे सज्जन विलास आदि प्रवृत्तियां राणा सज्जनसिंह तथा पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल वाल्टर के संयुक्त प्रयास से प्रारम्भ की गई।[5] 1880 ई मे प्रथम बार जनगणना विभाग की स्थापना द्वारा गणना कार्य आरम्भ किया गया। उदयपुर नगर मे म्युनिसिपल बोर्ड की स्थापना कर नगर सफाई और रोशनी का प्रबन्ध, आधुनिक ढंग के बाग में गुलाब बाग और उसमे लोक मनोरंजनार्थ अजायबघर जन्तुघर, पागलो के

---

1 अध्याय 7—शिक्षा प्रचलन और प्रबन्ध, पृ 251-252
2 उपरोक्त, पृ 256
3 उपरोक्त पृ 255
4 उपरोक्त।
5 उ ई, भा 2 पृ 828 829

व्यवस्था, नहर निर्माण तथा प्रबंध के कार्य प्रारम्भ किये।[1] इसी वर्ष राज्य भूमि पर बी बी एण्ड सी आई रेल लाइन बिछाई गई। 20 वीं सदी के प्रारम्भिक दशक तक राज्य की दो रेल लाइनों ने उदयपुर के पूर्वी तथा मध्य भाग को रेल-यातायात का लाभ प्रदान करना शुरू कर दिया था।[2] खान एवं खनिज की खुदाई के प्रयत्न अत्यधिक उत्साही नहीं थे फिर भी इनके आर्थिक महत्व ने राज्य का ध्यान इस ओर शनैः शनैः आकर्षित किया था।[3] आंग्ल प्रशासन के विचारों से सहमत हो राज्य के विकास हेतु किये गये इन आधुनिक प्रयत्नों का लाभ सामाजिक आर्थिक उन्नति, प्राकृतिक विपदाओं पर मानवी विजय, रूढ़िवादी बन्द समाज का खुले समाज की ओर अग्रसर होने तथा लोक कल्याण और लोक राहत के राज्यादेश में दिखलाई देने लगा था। यातायात और संचार साधनों ने जातिवादी ऊंच नीच की भावना को नमनीय बनाना शुरू किया तो जाति स्तरीकरण की अवस्था में आंशिक परिवर्तन उपस्थित किया। अकाल तथा महामारी का निदान सम्भव हुआ तो उत्पादन पर मुनाफा अर्जित करने की प्रवृत्ति भी बढ़ी बेरोजगारी की समस्या का समाधान होने लगा तो कई वंश-परम्परागत पैतृक व्यवसाय तथा कुटीर उद्योग धन्धे ठप्प भी हुए और सामाजिक जीवन में संयुक्त परिवारों का व्यक्तिवादी परिवारों के रूप में विघटन प्रारम्भ होने लगा था।[4] यद्यपि नवीन दृष्टिकोणों तथा आधुनिक प्रवाह की तीव्रता पर जनशंका के विचारों ने अंकुश बनाये रखा फिर भी आंग्ल प्रशासन का प्रयत्न मेवाड़ का पाश्च्यातीकरण तथा आधुनिकीकरण की ओर निरन्तर ठेलता रहा था।[5]

---

1 भौगोलिक तथ्य मेवाड़ एजेंसी रिपोर्ट, 1870 से 1882 ई।
2 भौगोलिक तथ्य पृ 20 21
3 फो पो (इ ट) अगस्त 1918 सं 16 44, अगस्त 1919, स 160-161 भौगोलिक तथ्य पृ 16-18
4 अध्याय 1—भौगोलिक तथ्य, अध्याय 4—जातियाँ एवं व्यवसाय पृ 103 125 अध्याय 5—परिवार विवाह एवं प्रथाएं पृ 143 144 अध्याय 6—ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में जीवन, पृ 209, अध्याय 8—उद्योग, वाणिज्य एवं व्यापार, पृ 266 67, 271, 277-78
5 फो पो (सीक्रेट) कन्सलटेशन, मई 1917, स 104 मार्च 1920, स 7 राजपूताना एजेन्सी रिकार्ड्स 1921, स 69, लिस्ट 1 सोमरसेट—इण्डियन स्टेट्स, पृ 19-20

राज्य की पुरातन शिक्षा प्रणाली मे पाठशाला मदरसों तथा मठो की भारतीय पद्धति 19 वी शताब्दी तक चलती रही थी। 1863 ई का वष मेवाड मे पाश्चात्य प्रणाली पर आधारित स्कूली शिक्षा के प्रादुर्भाव का वष था। पोलिटिकल एजेन्ट कनल ईडन के प्रयत्नो के फलस्वरूप शम्भु-रत्न पाठशाला की स्थापना हुई थी।[1] इसके पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र मे स्कूली-शिक्षा का विकास होता रहा था। शताब्दी के अन्त तक एक अपर हाई स्कूल एक लोअर हाई स्कूल, आठ अपर तथा बत्तीस लोअर प्राइमरी स्कूल खुल हुए थे।[2] 1866 ई मे मेजर निक्सन ने स्त्री-शिक्षा हेतु एक कन्या पाठशाला प्रारम्भ कराई जिसमे स्त्रियोचित सामान्य ज्ञान की व्यवस्था था।[3] 1885 ई म इसे क्रमोन्नत कर मिडिल स्कूल बनाया गया किन्तु पर्दा प्रथा बाल विवाह की रूढिगत प्रथाओ स्त्री के प्रति सामाजिक दृष्टिकोणो तथा सामतिक नियत्रणों ने स्त्री-शिक्षा को अधिक विकासशील नही होने दिया।[4] राज्य मे स्त्री जाति के प्रति सामाजिक दृष्टिकोणो को कतिपय रूप से बदलने म यह लघु प्रयास बहुत बडे काय थे। शिक्षा की इन प्रसारात्मक स्थितिया ने मेवाड के जन जीवन की चेतना को चाहे म थर गति स प्रभावित किया हो किन्तु आधुनिक शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर इनका महत्त्व कम नहीं था। इसी का परिणाम था कि 20 वीं सदी क दो दशक पश्चात् भारत मे राष्ट्रीय आ दोलन की कायवाहियो और इच्छा का प्रचार-प्रसार मवाड की जन जागति म प्रवेश प्राप्त कर सका था। शिक्षा के माध्यम से बाह्य ज्ञान के प्रवेश का फल था कि राज्य म सज्जन कीत्ति सुधारक नाम का एक साप्ताहिक राज्य पत्र प्रकाशित होन लगा। राजकीय मुद्रणालय हेतु सज्जन यत्रालय पुस्तकालय के रूप म सज्जन विलास आदि प्रवत्तिया राणा सज्जनसिह तथा पोलिटिकल एजेन्ट कनल वाल्टर के सयुक्त प्रयास स प्रारम्भ की गई।[5] 1880 ई म प्रथम बार जनगणना विभाग की स्थापना द्वारा गणना काय आरम्भ किया गया। उदयपुर नगर म म्युनिसिपल बोड की स्थापना कर नगर सफाई और रोशनी का प्रब ध, आधुनिक ढग के बाग म गुलाब बाग और उसम लोक मनोरजनाथ अजायबघर जन्तुघर पागला के

---

1 अध्याय 7—शिक्षा प्रचलन और प्रबन्ध, पृ 251-252
2 उपरोक्त, पृ 256
3 उपरोक्त पृ 255
4 उपरोक्त।
5 उ ई, भा 2 पृ 828 829

सरक्षणाथ पागलखाना, अनाथो के पालनाथ अनाथालय आदि लोक कल्याण-कारी राज्यादश के काय राणा सज्जनसिंह के काल मे प्रचलित हुए थे। वसे भारतीय इतिहास मे यह काल (1880 1884 ई) लाड रिपन का काल था। लाड रिपन स्वय उदार एव सुधारवादी वायसराय था अत उसके द्वारा किये गये सुधारो का अपरोक्ष प्रभाव भी मवाड के स्थानीय स्वायत्त शासन के गठन, कर सम्ब धी सुधार, शिक्षा तथा भूमि सुधार पर पडना स्वाभाविक था।

1880 ई म राज्य के कुटीर उद्योग की श्रेणी म मशीनी उद्योग की स्थापना हुई। प्रमुख व्यापारिक के द्र भीलवाडा म कपास तथा ऊन ओटने का कारखाना चालू हुआ।[1] 1909 ई मे कपासन तथा गुलाबपुरा, 20 वी सदी के दूसरे दशक मे चित्तौड, छोटी सादडी तथा 1941 तक राज्य में कुल 11 कपास ओटने तथा गाठें बाधने के कारखाने खुल गये थे।[2] यान्त्रिक औद्योगीकरण न स्थानीय जुलाहा, बलाई-रेगर जाट भणवा आदि जातियो के कुटीर उद्योगो को अवनत किया वहा हस्तकला उद्योग म यत्राश्रय और पतक उद्योगो के स्थान पर उद्योगो का सामाजिक सामा यीकरण के रूप मे प्रादुर्भाव किया। प्रदेश उद्योग म यन्त्रिक प्रवेश राज्य की ग्राम्याय व्यवस्था के द्वार पर मशीनी-आगमन और शहरी अथ व्यवस्था की प्रथम सूचना थी।

सामाजिक जीवन मे व्याप्त अधविश्वासो और कुरीतियो म सती प्रथा, बाल विवाह बाल हत्या बहु-विवाह दास दासी क्रय विक्रय, त्याग प्रथा डायन प्रथा आदि[3] को समाप्त करन के लिए आग्ल प्रशासन ने प्रथमत प्रयास किये। विभिन्न समझौतो, सामाजिकार्थिक नियमो तथा दण्ड विधानो द्वारा सामाजिक पतन को प्रदर्शित करन वाले व्यवहारो के उ मूलन हेतु कायवाहिया भी की।[4] इसके फलस्वरूप कई कुरीतिया पर वधानिक निय त्रण अवश्य प्राप्त हो गया यद्यपि प्रगतिशील चेतना के प्रभाव मे रूढिवादी विश्वास पूर्णरूप से समाप्त नही हुए थे।[5] सामाजिक धार्मिक सुधारो की इन

---

1 अध्याय 8—उद्योग, वाणिज्य एव व्यापार, पृ 262
2 मवाड का राज्य-प्रबन्ध, पृ 135
3 अध्याय 5—परिवार, विवाह एव प्रथाएँ, पृ 172-188
4 उपरोक्त।
5 उपरोक्त।

कायवाहियों मे आग्ल प्रशासन के साथ-साथ तत्कालीन भारत मे फल रहे आय समाज आ दोलन और वाल्टर कृत राजपूत हितकारिणी सभा ने भी सुधारात्मक प्रभावो को उत्पन्न किया था।[1] इस प्रकार सामाजिक-धार्मिक विश्वासों पर होने वाले प्रहारो के फलस्वरूप सामाजिक मान्यताओं, स्त्रियो की दशा तथा मानवी दृष्टिकोणो म स्वाभाविक सुधारात्मक परिवतन आने लगा।

साधन-सम्पन्न तथा अभिजात्य वग मे पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने रहन सहन तथा खान पान मे कुछ परिवतन किये थे।[2] फिर डाकखानो, रेल्वे तथा दफ्तरो म काम करने वाले लोगो में पेंट कोट पहनना बाह्य खाद्य सामग्री खाना, टेबुल कुर्सी का प्रयोग, बूट का प्रयोग जेब मे घडी रखना दाढी मूछो को साफ रखना, हैट पहनना घरो को आधुनिक ढग से बनाना आदि कई पाश्चात्याचरणों ने प्रवेश प्राप्त कर लिया था। समाज के प्राचीन सस्कारो तथा तौर तरीको में म थर परिवतन आधुनिकीकरण को बढाने लगा था।

आधुनिकीकरण की मथर गति जातियो की आ तरिक स्थिति तथा उनम स्थित सामाजिक आर्थिक व्यवहारो पर पाश्चात्य प्रगति का प्रभाव नही के बराबर पडा क्योकि सामाजिक दण्ड विधान की व्यवस्थाओ का नियत्रण सामुदायिक व्यवस्था पर आधारित था जिसका सतुलन जात पचायतो और चोखला पचायता द्वारा सचालित होता था। अ तत उल्लिखित परिवतनो का प्रारम्भिक प्रभाव के रूप म ही अकित किया जा सकता है। इन परिवतना की प्रक्रियात्मक गति बहुत धीमी रही थी। इसीलिये यह परिवतन मेवाड के सामाजिकार्थिक जीवन के क द्र मे नही अपितु परिधि पर दिखलाई देते हैं। इस दृष्टिकोण से परिवतना का अभिमुख वत्ताकार अ तमु खी था न कि प्रत्यक्ष अ तमु खी रेखाकार। इन परिवतनो का उल्लेख शोध विषय से पर है।

---

1 के एम सक्सेना—राजस्थान म राजनतिक जन जागरण, पृ 46 47
2 अध्याय 6—ग्रामीण एव नगरीयक्षत्रा में जन-जीवन पृ 206, 209, 226-229

परिशिष्ट 1

पट्टा प्रतिलिपी

॥ श्री रामो जयति ॥

श्री गणेसजी प्रसादातू ।   श्री एकलिंगजी प्रसादातू ।

भालो

सही

'म्हाराजाधिराज म्हाराणाजी श्री   आदेशातू बाबा मानसिंग सवदानसीघोत क्स्य 1 ≡ अप्रमाम सीगोली प्रगणे माडलगढ रे ऊपत रपय्या 7500) हाल ऊपत रु 2900) रेखटका 4800) म्हे थने पटे मह्या हुवो हे सो अमल करने चाकरी रा असवार 212 पाली वदूका 24 सो आदी चाकरी की यवज चढुदरा रुपय्या चारसो सेतालीस छे आना तो रोकड भडार साल द्र साल भर पा जा जे अर आदी चाकरी सदरूप 6 असवार पाली वन्दूका 12 थी हुकुम परवाण देस परदेस आछ्या घोडा रजपुत पाली वदूका थी सवा वदगी की दा जा ज

परिशिष्ट 2

श्रावण वीद 6, वि सं 1781 (1724 ई) का सुरह लेख

सूरज　　　　　　　　गाय बच्छ　　　　　　　　चन्द्र

स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सग्रामसिहजी आदेशात् प्रथम दुवे पचोली विसनदास भट देवाराम अपरञ्च ब्रह्मपुरी रायश्री निवास री मांहे ब्राह्मणे हुक्म थी घर मांड्या जणरी धरती तथा माहोमाह बामण घर वेचे जीरी जगात तथा लगत विलगत भट देवराम ह स्वस्ति भणावे दीधी अवे ब्रह्मपुरी थी मणोवातरी दरबार री आडीरी चोलण नही व्हे, अब कोई कामदार तथा कोटवाल ओरही कोई चोलण करे, तीह श्री एकलिगजी पोहे बामण घर वेचे तो न्यात रा न्यातहें बेचे तीन वरण ने वेचवा पावे नही ब्रह्मपुरी मे कोटवाल नहीं आवे, राते चोरी सारू जावता सारू आवे, इसो हुक्म हो X X X रायश्री निवासरी पुलाथी ताल.वरा तलावरा ओटा थी गोलेरा अखाडा विच ब्राह्मणा रा घर है यारी सब लागत छूट रो हुक्म है।

सकेतिका

ए रि	*एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट*
ब रि	बख्शीखाना रिकार्ड
फो सी क	फारेन सीक्रेट कसलटेशन
ग्र क्र	ग्र थ क्रमाक
गहलोत, राज इति	जगदीशसिंह गहलोत कृत राजपूताने का इतिहास
ह प्र	हस्तलिखित प्रतिलिपि अप्रकाशित
ह चि ग्र	हस्तलिखित चित्रित ग्र थ
कोठारी	*कोठारी श्री बलवन्तसिंहजी का जीवन चरित्र*
मेवाड रेजी॰ सी	प्रसकीन, मेवाड रेजीडे सी
पो क	पोलिटिकल कसलटेशन
रा रा ग्र	राजस्थान राज्य ग्रभिलखागार
रा ग्र	राष्ट्रीय ग्रभिलेखागार
रा ए रि	*राजपूताना एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट रिकोर्ड*
सहीवाला	जीवन चरित्र सहीवाला ग्रजु नसिहजी
शुक्ला	>सुदी>सुद
कृष्णा	>बुदी>वद
सो ला मि रा	*साशियल लाइफ इन मिडीवल राजस्थान*
टॉड—एनाल्स, एनाल्स	एनाल्स एण्ड ए टीक्वेटीज ग्राफ राजस्थान
उ ई	ग्रोझा—उदयपुर राज्य का इतिहास
वी वि	श्यामलदास—वीर विनोद
यटे—मेवाड	यटे—गजेटियर ग्राफ मेवाड

शोध प्रबन्ध मे प्रयुक्त एतिह्य—शब्दावली तथा अर्थ

(अ)

अमाणा —वर्षा पर आश्रित भूमि।

(आ)

आण —शपथ।

आघण —गाव के परकोटा के अन्दर वाली कृषि भूमि।

आकडा कूडा —गहरा कुआ।

आटा साटा —विवाह विनिमय की एक प्रथा।

(इ ई)

इनामिया माफी —पुरस्कार स्वरूप प्रदत्त राजस्व मुक्त भूमि।

(उ, ऊ)

उद्दरणक —भू ग्रहिता।

उपत, उपज —उत्पादन।

(ओ)

ओल —पक्ति।

(क)

कलेवा —कृषि उत्पादन पर लिया जाने वाला प्रथम शुल्क।

कटका-बटका —खेत की क्यारी की इकाई।

कालबेलिया —सपेर की जाति।

कूड निवाण —बैलो से सिचाई किये जाने वाला कुआ।

कूता बराड —कूता करने वाले राज्य कर्मचारी को देय उपहार।

कुवर मटका —द्रव्य उत्पादन पर लिये जाने वाला राज्येतर अधिकारी हेतु शुल्क।

केल खूट —घर तथा पशु गणना मे प्रयुक्त इकाई।

कैद —जागीरदार की मृत्यु के पश्चात तथा नवीन उत्तराधिकारी को मान्यता प्रदान करने के समयान्तर जागीर की स्थिति।

कोथल बरडा —व्यापारियो से लिया जाने वाला राजकीय शुल्क।

कूपा —फसल पकने पर खडी फसल का लिये जाने वाला राजकीय उपहार।

सकेतिका

ए रि	एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट
ब रि	बक्शीखाना रिकोड
फो सी क	फारेन सीक्रेट कसलटेशन
ग्र क्र	ग्रथ क्रमाक
गहलोत, राज इति	जगदीशसिंह गहलोत कृत राजपूताने का इतिहास
ह प्र	हस्तलिखित प्रतिलिपि प्रप्रकाशित
ह चि ग्र	हस्तलिखित चित्रित ग्र थ
कोठारी	कोठारी श्री बलवतसिंहजी का जीवन चरित्र
मेवाड रेजीडे सी	प्रसकीन, मेवाड रेजीडे सी
पो क	पोलिटिकल कसलटेशन
रा रा प्र	राजस्थान राज्य प्रभिलखागार
रा प्र	राष्ट्रीय प्रभिलेखागार
रा ए रि	राजपूताना एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट रिकोड
सहीवाला	जीवन चरित्र सहीवाला प्रजु र्नसिहजी
शुक्ला	>सुदी>सुद
कृष्णा	>ुदी>वद
सो ला मि रा	सोशियल लाइफ इन मिडीवल राजस्थान
टॉड—एनाल्स एनाल्स	एनाल्स एण्ड एटीक्वेटीज आफ राजस्थान
उ ई	ओभा—उदयपुर राज्य का इतिहास
वी वि	श्यामलदास—वीर विनोद
यटे—मवाड	यटे—गजेटियर आफ मेवाड

शोध प्रबन्ध मे प्रयुक्त एतिह्य—शब्दावली तथा अर्थ

(अ)

अमाणा —वर्षा पर आश्रित भूमि।

(आ)

आण —शपथ।

आघण —गाव के परकोटो के अन्दर वाली कृषि भूमि।

आकडा-कूडा —गहरा कुआ।

आटा हाट —विवाह विनिमय की एक प्रथा।

(इ ई)

इनामिया माफी —पुरस्कार स्वरूप प्रदत्त राजस्व मुक्त भूमि।

(उ, ऊ)

उदुदरणक —भू ग्रहिना।

उपत उपज —उत्पादन।

(ओ)

ओल —पक्ति।

(क)

कलेवा —कृषि उत्पादन पर लिया जान वाला प्रथम शुल्क।

कटका-बटका —खेत की क्यारी की इकाई।

कालबलिया —सपेरे की जाति।

कूड निवाण —बलो से सिचाई किये जाने वाला कुआ।

कूता बराड —कूता करने वाले राज्य कमचारी को देय उपहार।

कुवर मटका —द्रव्य उत्पादन पर लिये जान वाला राज्येतर अधिकारी हेतु शुल्क।

खेल खूट —घर तथा पशु गणना मे प्रयुक्त इकाई।

कैद —जागीरदार की मृत्यु के पश्चात तथा नवीन उत्तराधिकारी को मान्यता प्रदान करन क समयान्तर जागीर की स्थिति।

कोथल बरडा —व्यापारियो से लिया जान वाला राजकीय शुल्क।

कूपा —फसल पकन पर खडी फसल का लिय जान वाला राजकीय उपहार।

(ख)

खड लाकड	—ईंधन का शुल्क।
खालसा	—केन्द्राधीन भू क्षेत्र।
खडणी	—समझौते के अनुसार समयोपरान्त मुक्त कराधन पर अतिरिक्त कर।
खिराज	—ब्रिटिश सरकार को दिया जाने वाला राज्य के राजस्व का हिस्सा।
खुंची	—फसल पकने पर लिया जाने वाला उपहार।

(ग)

ग्रास	—1-मात भाग के रूप म प्राप्त भूमि। 2 मेवाड राज्य के दक्षिणी-पश्चिमी पर्वतीय भाग में राज्य प्रदत्त जागीर भूमि।
ग्रासीया	—ग्रास-धारक।
घुगरी	—अन्न उत्पादन का अंश जो राज्य कर्मचारियों द्वारा कमीशन के रूप मे लिया जाता था।
गोल के सरदार	—तृतीय श्रेणी के राजपूत सामन्त एव शासक की स्थायी सेना के सैनिक सरदार।
गोरमा	—गाव के पास वाली भूमि।

(घ)

घोडा-बराड	—राजकीय घोडा की रसद खर्च हेतु लिया जाने वाला शुल्क।

(च)

चर्णोट	—चरागाह के लिए प्रयुक्त भूमि।
चदावल	—सेना का अंतिम (रक्षक) भाग।
चाकरी	—सैनिक सेवा।
चाकराना माफी	—राज्य सेवा निमित्त प्रदान की गई राजस्व मुक्त जमीन।
चाही	—तालाब और कुओ से सिंचित भूमि।
चौथ	—उपज का $\frac{1}{4}$ भाग।

(छ)

छटूद	—भू-राजस्व का $\frac{1}{6}$ भाग (समयानुसार यह भाग घटता बढता रहा था किन्तु यह परम्पराई व्यवहार म छटूद ही कहलाता रहा था)।

(ज)

जब्ति	—जब्त करना, जागीर भूमि का खालसा के अन्तर्गत करने की प्रक्रिया।
जागीर	—राज्य प्रदत्त भूमि क्षेत्र तथा वशानुगत धति।
जागेरी	—शासक के पत्नी, पुत्र, माता की निजी भूमि।
जुहार	—कुशल-क्षेम।

(ट, ठ, ड ढ)

टांका	—राजस्व के सूक्ष्म अश को कर के रूप म प्राप्त करने की प्रक्रिया।
ठाठ	—राज्य प्रबन्ध।
ठीकाना	—निश्चित क्षेत्र का मुख्य स्थान।
डडोत	—दण्डवत् प्रणाम।
ढाणी	—ऊट पालक रेबारी जाति के गांव की भूमि।

(त, द, ध, न)

ताजिम	—सम्मान।
तीजा	—उपज का $\frac{1}{3}$ भाग।
तल पाली	—तेल उत्पादन करने की घाणी का शुल्क।
दसूध	—उपज का $\frac{1}{10}$ भाग।
दस्तक	—राज्याज्ञा की पूर्ति हेतु दबाव पर किय गये व्यय की क्षतिपूर्ति।
दाण	—चुगी।
दोनणी चवणी	—कृषि पर लिया जाने वाला प्रांशिक शुल्क।
दीवाण	—राज्य का प्रधान मेवाड़ के शासक राणा की उपाधि।
धनक	—भू-प्रदाता।
धणी	—स्वामी।
धारणा	—राज्याज्ञा को पालन करने का एक प्रशासनिक उपाय।
धावाई	—धाय भाई।
धौंस	—राज्याज्ञा पालनार्थ राज्य का प्रांशिक दबाव।
नजर	—भेंट।
नाल	—दो पर्वतों के मध्य संग प्राकृतिक मार्ग।
नाता कांवनी	—पुनर्विवाह पर लिया जाने वाला राजकीय कर।

(ख)

खड लाकड —ईंधन का शुल्क।

खालसा —मेवाड़ाधीन भू क्षेत्र।

खडणी —समझौते के अनुसार समयोपरान्त मुक्त कराधन पर अतिरिक्त कर।

खिराज —ब्रिटिश सरकार को दिया जाने वाला राज्य के राजस्व का हिस्सा।

खुंची —फसल पकने पर लिया जाने वाला उपहार।

(ग)

ग्रास —1-भात-भाग के रूप में प्राप्त भूमि।
2-मेवाड राज्य के दक्षिणी-पश्चिमी पर्वतीय भाग मे राज्य प्रदत्त जागीर भूमि।

ग्रासीया —ग्रास धारक।

गुगरी —अन्न-उत्पादन का अंश जो राज्य कर्मचारियो द्वारा कमीशन के रूप मे लिया जाता था।

गोल के सरदार —तृतीय श्रेणी के राजपूत सामन्त एवं शासक की स्थायी सेना के सैनिक सरदार।

गोरमा —गाव के पास वाली भूमि।

(घ)

घोडा बराड —राजकीय घोडा की रसद खर्च हेतु लिया जाने वाला शुल्क।

(च)

चर्णोट —चरागाह के लिए प्रयुक्त भूमि।

चदावल —सेना का अंतिम (रक्षक) भाग।

चाकरी —सैनिक सेवा।

चाकराना माफी —राज्य सेवा निमित्त प्रदान की गई राजस्व मुक्त जमीन।

चाही —तालाब और कुओं से सिंचित भूमि।

चौथ —उपज का $\frac{1}{4}$ भाग।

(छ)

छटूंद —भू-राजस्व का $\frac{1}{6}$ भाग (समयानुसार यह भाग घटता बढ़ता रहा था किन्तु यह परम्पराई व्यवहार मे छटूंद ही कहलाता रहा था)।

(ज)

जब्ति	—जब्त करना, जागीर भूमि का खालसा के अ तगत करने की प्रक्रिया।
जागीर	—राज्य प्रदत्त भूमि क्षत्र तथा वशानुगत धति।
जागेरी	—शासक के पत्नी, पुत्र, माता की निजी भूमि।
जुहार	—कुशल-क्षेम।

(ट, ठ, ड, ढ)

टाका	—राजस्व के सूक्ष्म अश को कर के रूप मे प्राप्त करने की प्रक्रिया।
ठाठ	—राज्य प्रब ध।
ठीकाना	—निश्चित क्षेत्र का मुख्य स्थान।
डडोत	—दण्डवत् प्रणाम।
ढाणी	—ऊट पालक रेबारी जाति के गांव की भूमि।

(त, द, ध, न)

ताजिम	—सम्मान।
तीजा	—उपज का $\frac{1}{3}$ भाग।
तेल पाली	—तेल उत्पादन करने की घाणी का शुल्क।
दसू ध	—उपज का $\frac{1}{10}$ भाग।
दस्तक	—राज्याना की पूर्ति हेतु दबाव पर किय गये व्यय की क्षतिपूर्ति।
दाण	—चु गी।
दानणी चवणी	—कृषि पर लिया जाने वाला मासिक शुल्क।
दीवाण	—राज्य का प्रधान, मेवाड के शासक राणा की उपाधि।
धनक	—भू-प्रदाता।
धणी	—स्वामी।
धारण	—रा याना को पालन करने का एक प्रशासनिक उपाय।
धाबाई	—धाय भाई।
धौस	—रा याना पालनाथ राज्य का मार्थिक दबाव।
नजर	—भेंट।
नाल	—दो पवता के मध्य तग प्राकृतिक माग।
नाता कागली	—पुनर्विवाह पर लिया जान वाला राज्याहार।

(न)

नत	—उत्तरदायित्व निर्वाह हेतु लिया दिया जाने वाला द्रव्य।
नेग	—परम्परागत लिया दिया जाने वाला द्रव्य।

(प)

पड़त	—बंजर भूमि।
पहरावणी	—पहिनने के वस्त्र, सामाजिक संस्कारों पर लिया दिया जाने वाला परिधान।
पंद्रही	—जाति व्यवसाय पर लिया जाने वाला मराठी कर, (इन्हीं करों के अन्तर्गत 'बराड' द्रष्टव्य है)
पीवल	—तालाब अथवा कुआ से सिंचित भूमि।
पूंछी	—उपज का $\frac{1}{5}$ भाग।
पेशकसी	—अग्रिम राशि मुक्ति की प्रक्रिया।
पेटीया	—खाने का कच्चा सामान।
पड़ी-बराड	—साहूकारी कार्य पर लिया जाने वाला शुल्क।
पोटी	—भारवाहक बैल पर रखा हुआ भार।

(फ)

फला	—वन्य बस्तियां भीलों का निवास।
फहरिस्त	—सूचि।
फाड़ा	—विभाजन (घर या खेत का पारस्परिक बटवारा)
फौज खर्च	—विदेशी फौजों की महमाननवाजी हेतु दिया गया द्रव्य।
फौज बराड	—फौज व्यवस्था हेतु लिया जाने वाला शुल्क।

(ब)

बसी	—राजपूत मुखिया के भाई या वंश के गांव की भूमि।
बराड	—मराठाकालीन कराधन (शुल्क)
बत्तीस के सरदार	—द्वितीय श्रेणी के सामन्त।
बरानी	—वर्षा पर आश्रित भूमि (अमाणा)
बाड़ी	—बागवानी हेतु प्रयुक्त भूमि (वाड़ी)
बापी	—पतक भूमि।
बालद	—बैलों का झुण्ड।
बालदीया	—बैल पालने वाली एक जाति जो कच्चे मार्गों पर माल-यातायात करती थी।

बीड	—घास-उत्पादन हेतु प्रयुक्त भूमि।
बिस्वा	—एक बीघे का $\frac{1}{20}$ भाग।
बीगोडी	—प्रति बीघा लिया जाने वाला नक्द राजस्व।
बजारा	—मिश्रित (हाख) फसल।
बेठ बेगार	—शारीरिक सेवा के रूप में लिया जाने वाला बाधित शुल्क जो प्राचीनकाल में 'विस्टी' के रूप में प्रचलित रहा था।
ब्याह चवरी	—शादी पर लिया जाने वाला उपहार।

(भ)

भदर	—वहिस्कृत।
भाजगड	—मुख्य परामर्शदाता।
भाग	—राजस्व हिस्सा जो राजपूत कृषकों से लिया जाता था।
भम	— वंशानुगत भूमि (बपौती)
भोग	—राजस्व जो प्रजा से लिया जाता था।
भोमिया	—भोम धारक लोग।
भोम	—बलिदान निमित्त प्राप्त भूमि।
भोम बराड	—भोम जागीर पर लिया जाने वाला शुल्क।
भोई बराड	—माली जाति से लिया जाने वाला व्यावसायिक शुल्क।

(म)

मजमानी	—महमानदारी शुल्क।
मगरा	—पहाडी स्थान या भूमि।
माल	—मैदानी भूमि (माल टी)
मापा	—पदार्थ के परिमाण पर लिया जाने वाला शुल्क।
मापला	—मरहठावों द्वारा लिया जाने वाला 'कर'।
माफी	—राजस्व मुक्त भूमि।
मुजरा	—प्रणाम।
मुण्डकटी	—उत्सर्ग हेतु प्रदत्त भूमि (भोम)
मुत्सद्दी खर्च	—कार्यालय खर्च।
मेर मरजाद	—जातिगत मर्यादा।
मोटी	—बडी (मोटी मोटी)

(र, ल, व)

[illegible] —सम्पत्ति सुरक्षाय लिया जाने वाला 'कर'

[illegible] —कन्या गमन पर लिया जाने वाला उपहार।

[illegible] —चुंगी नागरिक 'कर'

[illegible] —गालक पत्नी, पुत्र माता की निजी जमीन।

[illegible] —पद नियम या रीति जो शुल्क रूप मे प्रचलित रहा था।

[illegible] —निरजाऊ पथरीली भूमि।

रेख —जागीर की वार्षिक आय पर राज्य निर्धारित सैन्य शुल्क।

रेखवाला —रसद की मांग।

मादड़ु —लिया जाने वाला निश्चित द्रव्य।

लाग-बाग —परम्पराई सामाजिक आर्थिक उपहार।

लिलदा —हर चन।

साडी —छोटी (मोगी लोडी)

वेश —पहिनने का कपड़ा, सामाजिक-संस्कारो पर दिया जाने वाला परिधान।

(श ष स)

इजारा —सरक्षण राज्य म विशेष अधिकार के रूप म प्रदान किया जाता था।

दस्तखत —धार्मिक संस्थाओं को प्रदत्त भूमि अनुदान।

मही —स्वीकृति राज्य के आदेशों पर लगाई जाने वाली स्वीकृति का मोहर।

सरनार —सम्मान हेतु प्रयुक्त उद्बोधन जाति विशेष।

सहरी —गली।

सुरह —धार्मिक प्रशस्ति।

सेरण —एक मन पर एक सेर का राजस्व।

सोलह के सरदार —प्रथम श्रेणी के सामंत

(ह)

हलोटी सिगाटी —हल बल पर लिया जाने वाला कर।

हवाला —धाबाई गुजर जाति के गांव की भूमि।

हरावल —सेना का अग्रिम भाग, सैन्य मुख।

हाट —बाजार।

—खेतीहर मजदूर।

लेखक परिचय

डॉ गापान व्याम

ज म	जून 26 1946 ई उन्यपुर (राज)
शिक्षा	एम ए (इनिहाम, ममाज शास्त्र, हि न्दी माहित्य), श्राई जी डी पी एच डी
अध्ययन	उन्यपुर विश्वविद्यालय एव अली ग न मुस्लिम विश्वविद्यालय
सम्प्रति	राजस्थान कॉलेज शिक्षा सेवा के अन्तगत राजकीय महाविद्यालय डू गरपुर (राज) के स्नानकोत्तर इतिहास विभाग म प्रवक्ता
स्थाई आवास	16, राधेश्याम गली ब्रह्मपान उदयपुर (राज)
प्रकाशित ग्र न्य	(1) सुल्तान गयासुद्दीन बलबन का युग
	(2) राजस्थान के इनिहाम के स्रात
	(3) विश्व का इतिहास
	(4) प्राचीन भारत
	(5) पूव मध्यकालीन मवाड (मप्रस्य)
अ न्य	(1) युग-बिन्दु एव फुटपाथ पर नग पाव (कविता-सकलन)
	(2) इतिहास विषय पर वतमान तक 20 शोध-पत्रों का प्रकाशन
सदस्य	(1) भारतीय इतिहास कांग्रेस
	(2) राजस्थान इतिहास कांग्रेस